कुण्डलिनी विज्ञान
एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान
पुस्तक~5
कुंडलिनी योग बनाम संभोग आधारित गुह्य तंत्र योग
प्रेमयोगी वज्र

कुण्डलिनी विज्ञान

एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान- 5

लेखक- प्रेमयोगी वज्र

2025

पुस्तक परिचय

यह पुस्तक कुण्डलिनी विज्ञान शृंखला का पाँचवाँ भाग मतलब (पुस्तक- 5) है। इसके पहले के चार भाग (पुस्तक -1,2,3,4) भी उपलब्ध है। यह ब्लॉग-पोस्टों का संकलित रूप है। इन पोस्टों को प्रेमयोगी वज्र ने लिखा है, जो एक रहस्यवादी योगी हैं। वह प्रबुद्ध है और साथ ही उसकी कुंडलिनी भी जागृत है। ये सभी पोस्टें कुंडलिनी से संबंधित हैं। एक पोस्ट एक अध्याय से मेल खाती है। प्रेमयोगी वज्र 4 साल पहले से, तब से कुंडलिनी के बारे में लिख रहे हैं, जब उनकी कुंडलिनी एक साल के लंबे कुंडलिनी योग ध्यान के बाद जागृत हुई थी। पुस्तक को वर्तमान तिथि तक कुंडलिनी विचारों या पोस्टों के साथ अद्यतन या अपडेट किया गया है। वह यह देखकर चकित हो गया कि कहीं भी कुंडलिनी का उल्लेख या वर्णन पूरी तरह से नहीं किया गया है। यहां तक कि कुंडलिनी को ठीक से परिभाषित भी नहीं किया गया था। उन्होंने कुंडलिनी जागरण के कई अनुभवों को खोजा और पढ़ा, लेकिन उन्हें वास्तविक और पूर्ण रूप में कोई नहीं मिला। यद्यपि उन्होंने पतंजलि योग सूत्र में कुंडलिनी के समतुल्य समाधि का उल्लेख पाया है, लेकिन इसका रहस्यवादी और प्राचीन तरीके से वर्णन किया गया है, जिसे आम जनता के लिए समझा जाना मुश्किल है। इसलिए इन कमियों से प्रेरित होकर, उन्होंने कुण्डलिनी से सम्बंधित हर चीज को जमीनी स्तर पर, सत्य, अनुभवात्मक, वैज्ञानिक, मूल, व्यावहारिक और सहज ज्ञान युक्त रखने के लिए बहुत सरल या बचकाने तरीके से कुंडलिनी के बारे में समझने और लिखने का फैसला किया। इस अद्भुत पुस्तक की उत्पत्ति के परिणामस्वरूप रहस्यात्मक कुण्डलिनी की लिए वास्तविक, ईमानदार और मानवीय प्रयास हुआ। इसीलिए यह पुस्तक कुण्डलिनी साधकों के लिए वरदान के रूप में प्रतीत होती है। चूँकि चकाचौंध पैदा करने वाली स्क्रीनों पर एक साथ इतने सारे ब्लॉग पोस्टों को पढ़ना सहज नहीं है , इसलिए उन पोस्टों को एक किंडल ई-बुक के रूप में प्रस्तुत किया गया, जो पढ़ने में आरामदायक और आनंददायक है। नतीजतन, यह पूरी तरह से आशा की जाती है कि पाठकों को यह पुस्तक आध्यात्मिक रूप से उत्थान करने वाली, सत्य की खोज करने वाली, और अत्यधिक आनंद देने वाली लगेगी।

लेखक परिचय

प्रेमयोगी वज्र का जन्म वर्ष 1975 में भारत के हिमाचल प्रान्त की एक सुन्दर व कटोरानुमा घाटी में बसे एक छोटे से गाँव में हुआ था। वह स्वाभाविक रूप से लेखन, दर्शन, आध्यात्मिकता, योग, लोक-व्यवहार, व्यावहारिक विज्ञान और पर्यटन के शौक़ीन हैं। उन्होंने पशुपालन व पशु चिकित्सा के क्षेत्र में भी प्रशंसनीय काम किया है। वह पोलीहाऊस खेती, जैविक खेती, वैज्ञानिक और पानी की बचत युक्त सिंचाई, वर्षाजल संग्रहण, किचन गार्डनिंग, गाय पालन, वर्मीकम्पोस्टिंग, वैबसाईट डिवेलपमेंट, स्वयंप्रकाशन, संगीत मतलब (विशेषतः बांसुरी वादन) और गायन के भी शौक़ीन हैं। लगभग इन सभी विषयों पर उन्होंने दस के करीब पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनका वर्णन एमाजोन ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट demystifyingkundalini.com पर भी उपलब्ध है। वे थोड़े समय के लिए एक वैदिक पुजारी भी रहे थे, जब वे लोगों के घरों में अपने वैदिक पुरोहित दादा जी की सहायता से धार्मिक अनुष्ठान किया करते थे। उन्हें कुछ उन्नत आध्यात्मिक अनुभव मतलब (आत्मज्ञान और कुण्डलिनी जागरण) प्राप्त हुए हैं। उनके अनोखे अनुभवों सहित उनकी आत्मकथा विशेष रूप से "शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र मतलब (एक योगी की प्रेमकथा)" पुस्तक में साझा की गई है। यह पुस्तक उनके जीवन की सबसे प्रमुख और महत्त्वाकांक्षी पुस्तक है। इस पुस्तक में उनके जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण 25 सालों का जीवन दर्शन समाया हुआ है। इस पुस्तक के लिए उन्होंने बहुत मेहनत की है। एमाजोन डॉट इन पर एक गुणवत्तापूर्ण व निष्पक्षतापूर्ण समीक्षा में इस पुस्तक को पांच सितारा, सर्वश्रेष्ठ, सबके द्वारा अवश्य पढ़ी जाने योग्य व अति उत्तम मतलब (एक्सेलेंट) पुस्तक के रूप में समीक्षित किया गया है। गूगल प्ले बुक की समीक्षा में भी इस पुस्तक को फाईव स्टार मिले थे, और इस पुस्तक को अच्छा मतलब (कूल) व गुणवत्तापूर्ण आंका गया था। इस पुस्तक का अंग्रेजी में मिलान "Love story of a Yogi- what Patanjali says" पुस्तक है। प्रेमयोगी वज्र एक रहस्यमयी व्यक्ति है। वह एक बहुरूपिए की तरह है, जिसका अपना कोई निर्धारित रूप नहीं होता। उसका वास्तविक रूप उसके मन में लग रही समाधि के आकार-प्रकार पर निर्भर करता है, बाहर से वह चाहे कैसा भी दिखे। वह आत्मज्ञानी मतलब (एनलाईटनड) भी है, और उसकी कुण्डलिनी भी जागृत हो चुकी है। उसे आत्मज्ञान की अनुभूति प्राकृतिक रूप से या प्रेमयोग से हुई थी, और कुण्डलिनी जागरण की अनुभूति कृत्रिम रूप से या कुण्डलिनी योग से हुई। प्राकृतिक समाधि के समय उसे सांकेतिक व समवाही तंत्रयोग की सहायता मिली, जबकि कृत्रिम समाधि के समय पूर्ण व विषमवाही तंत्रयोग की सहायता उसे उसके अपने प्रयासों के अधिकाँश योगदान से प्राप्त हुई।

अधिक जानकारी के लिए, कृपया निम्नांकित स्थान पर देखें-

https://demystifyingkundalini.com/

वैधानिक टिप्पणी मतलब (लीगल डिस्क्लेमर) ~

यह पुस्तक एक प्रकार का आध्यात्मिक-भौतिक मिश्रण से जुड़ा हुआ मिथक कथाओं या घटनाओं का साहित्य है , जो फिक्शन विज्ञान से मिलता-जुलता है। इसको किसी पूर्वनिर्मित साहित्यिक रचना की नक़ल करके नहीं बनाया गया है। फिर भी यदि यह किसी पूर्वनिर्मित रचना से समानता रखती है, तो यह केवल मात्र एक संयोग ही है। इसे किसी भी दूसरी धारणाओं को ठेस पहुंचाने के लिए नहीं बनाया गया है। पाठक इसको पढ़ने से उत्पन्न ऐसी-वैसी परिस्थिति के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे। हम वकील नहीं हैं। यह पुस्तक व इसमें लिखी गई जानकारियाँ केवल शिक्षा के प्रचार के नाते प्रदान की गई हैं, और आपके न्यायिक सलाहकार द्वारा प्रदत्त किसी भी वैधानिक सलाह का स्थान नहीं ले सकतीं। छपाई के समय इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि इस पुस्तक में दी गई सभी जानकारियाँ सही हों व पाठकों के लिए उपयोगी हों, फिर भी यह बहुत गहरा प्रयास नहीं है। इसलिए इससे किसी प्रकार की हानि होने पर पुस्तक-प्रस्तुतिकर्ता अपनी जिम्मेदारी व जवाबदेही को पूर्णतया अस्वीकार करते हैं। पाठकगण अपनी पसंद, काम व उनके परिणामों के लिए स्वयं जिम्मेदार हैं। उन्हें इससे सम्बंधित किसी प्रकार का संदेह होने पर अपने न्यायिक-सलाहकार से संपर्क करना चाहिए।

कुंडलिनी योग प्रकृति को पुरुष की तरफ धकेलता है

दोस्तों! मिथक कल्पनाओं का आकर्षण हमेशा से रहा है। यह मानव मनोविज्ञान है जो मिथकों से बड़ा प्रभावित होता है। पुराने युग में भी विद्वान लोगों को छोड़कर आम लोग सीधे तौर पर दर्शन को ज्यादा महत्व नहीं देते थे। दर्शन उन्हें उबाऊ लगते थे। इसीलिए ऋषियों ने सत्य दर्शन पर आधारित मिथक कथाओं की रचना की जिनसे वेद पुराण भरे पड़े हैं। आज भी लोग टाइम ट्रेवल , स्पेस ट्रैवल आदि वैज्ञानिक सिद्धांतों से जुड़ी मिथक कथाओं के दीवाने हैं। इनसे मीडिया भरा पड़ा है। युग बदलता है पर मानव मनोविज्ञान वही रहता है। इसलिए सत्य को जगत में फैलाने के लिए दो किस्म के लोगों का परस्पर सहयोग अपेक्षित होता है। एक वह जो प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर सिद्धांत को प्रस्तुत करता है, और दूसरा वह जो उस पर आधारित मिथक कथाएं बनाता है। हो सकता है कि इस वेबसाइट के शास्त्र आधारित अध्यात्मवैज्ञानिक सिद्धांत भी कभी युगानुरूप मिथक कथाओं के रूप में उभरें।

आजकल के सुविधापूर्ण और वैज्ञानिक युग में लोगों के पास किसी भी विषय को विस्तार से समझने के लिए पर्याप्त समय और बल उपलब्ध है। पहले ऐसा नहीं था। एक बार महात्मा बुद्ध के एक शिष्य ने उनसे पूछा कि यह सांसारिक जन्ममरण रूपी दुख शुरु कैसे होता है। तो महात्मा बुद्ध ने कहा कि इसको जानने में समय बर्बाद करने की जरूरत नहीं है। बस इतना समझो कि इस दुख का अंत किया जा सकता है और उसके लिए प्रयास करो। आजकल लोगों के पास ब्लैकहोल और टाइम मशीन को समझने के लिए तो पर्याप्त समय है, पर उस आध्यात्मिक दर्शन को समझने के लिए नहीं है, जो मानव जीवन के मुख्य लक्ष्य से जुड़ा हुआ है। यह एक विडंबना ही है।

मित्रो, हम जिस चर्चा को छेड़े हुए हैं, वह पूरी तरह से शास्त्र सम्मत है। इसलिए यह प्रामाणिक भी मानी जा सकती है। यह कोई ख्याली पुलाव नहीं है। वैदिक सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति और पुरुष दो अजर अमर और सर्वव्यापी तत्त्व हैं। शुद्ध पुरुष तो कभी सृष्टि को चला ही नहीं सकता क्योंकि वह तो पूर्ण परमात्मा है। उसकी संसार में प्रवृत्ति ही नहीं होती। लोक में भी अक्सर देखा जाता है कि जो संत पूर्ण समाधि में स्थित होता है, उसकी संसार में कोई प्रवृत्ति नहीं होती। बेशक उसमें प्रेरक शक्ति होती है। लोग उससे प्रेरणा लेकर या कहो उसकी तरह पूर्ण बनने के लिए बड़े -बड़े और अच्छे-अच्छे सांसारिक काम और आचरण करते हैं। परमात्मा के मामले में भी ऐसा ही होता है। उससे प्रकृति को विकास करने की अर्थात उसके जैसा पूर्ण बनने की प्रेरणा मिलती रहती है। इसी से सृष्टि के सभी काम चलायमान रहते हैं। काम करने वाली तो प्रकृति होती है। सृष्टि से काम कराने वाली प्रकृति है, तो शरीर से काम करवाने वाला अहंकार या जीवात्मा है।

लोग बोलते हैं कि सृष्टि के सभी काम अंधेरे में हो रहे हैं, मतलब उन्हें करने वाली कोई प्रकाशमय चेतना शक्ति नहीं है। बात सही भी है और गलत भी। देखा जाए तो वही अंधेरा तो काम करवा

रहा है। पर इसमें प्रकाश का अप्रत्यक्ष योगदान भी होता है। अंधेरा किसके लिए काम करवा रहा है। अंधेरा प्रकाश के लिए काम करवा रहा है। प्रकृति पुरुष के लिए काम करवा रही है। पुरुष ही प्रकृति को खींच रहा है। अहंकार निरंकार के लिए काम करवा रहा है। जीवात्मा परमात्मा के लिए काम करवा रहा है। परमात्मा ही जीवात्मा को खींच रहा है। जीवात्मा तो कभी परमात्मा बन जाएगा। तो क्या प्रकृति भी कभी पुरुष बनेगी। अगर एक जीवात्मा परमात्मा बनेगा तो दूसरा जीवात्मा फिर पैदा हो जाएगा। अगर प्रकृति पुरुष बनेगी तो दूसरी प्रकृति कहां से आएगी क्योंकि प्रकृति तो एक ही है। जीवात्मा अनेक हैं। जब नई प्रकृति नहीं बनेगी तो सृष्टि भी थम जाएगी। जीवात्मा भी प्रकृति से ही बनते रहते हैं।

जीवात्मा प्रकृति और पुरुष का मिश्रण है। अगर प्रकृति पुरुष बन गई तो नए जीव भी पैदा नहीं हो पाएंगे, क्योंकि जीवात्मा ही नहीं बनेगी। मतलब प्रकृति कभी पुरुष में नहीं मिलती। या अगर मिलती है तो नई प्रकृति फिर से बन कर तैयार हो जाती है। कुंडलिनी योग तो है ही प्रकृति को पुरुष की तरफ अंतिम और निर्णायक धक्का देने के लिए। पर बनेगी कैसे। इसका हम अगली पोस्ट में विस्तार से विश्लेषण करेंगे।

कुंडलिनी जागरण से पुरुष की प्रकृति तक की यात्रा पूरी होती है

दोस्तों यह पोस्ट थोड़ी लंबी लग सकती है, पर इसमें सृष्टि का बहुत बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। बात हो रही थी कि जिस तरह पुरुष मतलब प्रकाश हर जगह और हर समय मौजूद है, उसी तरह मूल प्रकृति मतलब अंधेरा भी है। अगर मूल प्रकृति ना होती तो सृष्टि ही ना होती। पुरुष तो बिल्कुल निश्चेष्ट है क्योंकि वह अपनी अभौतिक आत्मा में पूर्ण है जिससे उसे किसी भी चीज की जरूरत ही नहीं है। जीवाणु को या चींटी को भी प्रकृति ही चलाती है, और बड़े-बड़े ग्रहों और नक्षत्रों को भी वही प्रकृति चलाती है। पुरुष तो एक लक्ष्य है, प्रकृति जिसे पाने की कोशिश करती है। उसी कोशिश में उससे सृष्टि के सारे काम संपन्न होते हैं। हालांकि हाथी, बंदर, मनुष्य जैसे विकसित प्राणी के शरीर को भी प्रकृति ही चलाती है। पर यहां एक विशेषता है। इनको चलाने में जीवात्मा नाम की एक दूसरी प्रकृति भी मदद करती है। जीवात्मा इन प्राणियों के जीवन के अनुभवों से संबंधित सभी सूचनाओं को भंडारित करके रखने का काम करती है। इससे इन्हें चलाना और ज्यादा निपुणता युक्त और आसान हो जाता है। यूं कहो कि मूल प्रकृति ही विकसित होकर कालांतर में जीवात्मा बन जाती है।

मूल प्रकृति मूल पुरुष की छाया है। इसलिए इसमें शुद्ध अंधेरे के सिवाय कुछ नहीं है। इसमें पुरुष की तरह ही संसार का कोई नामोनिशान नहीं है। पर मूल प्रकृति जीवात्मा तब बनती है, जब एक अनुभव करने वाले मस्तिष्क को धारण करने वाला जीव बनता है। वह जिन सांसारिक विषयों को अनुभव करता है, वह भी उससे जुड़ी मूल प्रकृति में सूक्ष्म कोड के रूप में जमा होने लगते हैं। इससे उसे पुरुष तक जल्दी पहुंचने में बहुत मदद मिलती है। हालांकि पहले वाली शुद्ध मूल प्रकृति भी अपनी जगह पर वैसी ही बनी रहती है, क्योंकि वह पुरुष की तरह अजर, अमर है।

जैसे आदमी सहित हर एक जीव के जीवन की परछाई उसकी जीवात्मा के रूप में बनी है, उसी तरह परम पुरुष की भी जरूर होगी। पुरुष की उसी परछाई को प्रकृति कहा गया है। यह सत्य नहीं पर आभासी है। वैसे ही जैसे पेड़ की छाया सत्य नहीं पर आभासी है। किसी पेड़ की छांव बिल्कुल उस पेड़ की तरह होती है। सिर्फ एक फर्क के साथ कि वह अंधेरमयी या काली होती है। इसी तरह प्रकृति भी बिल्कुल पुरुष की तरह अनादि, अनंत, अजर, अमर और सर्वव्यापक है। केवल यही फर्क है कि उसमें पुरुष की तरह प्रकाश नहीं होता। क्योंकि वह पुरुष की आभासी छाया है।

जब सृष्टि बनना शुरू होती है, तो सबसे पहले निर्मित सबसे छोटा मूल कण अपने को उन्नत करने की कोशिश करता हुआ आगे से आगे बढ़ने लगता है। उसे आगे बढ़ने की शक्ति मूल प्रकृति से मिलती है। मतलब मूल प्रकृति उस कण की आत्मा के रूप में है। वैसे तो मूल प्रकृति आनंद के रास्ते ही पुरुष तक पहुंच सकती है, क्योंकि पूर्ण आनंद ही पुरुष का असली रूप है। पर अपना आनंद बढ़ाने के लिए उसे पहले अपने सृष्टिरूपी शरीर की सत्ता बढ़ानी होगी। क्योंकि यदि

विभिन्न कणों का आपस में खूनी संघर्ष होता रहा, तो ग्रह, सूर्य आदि पिंड कैसे बनेंगे? यदि इन पिंडों का आपस में और अंदरूनी खूनी संघर्ष चलता रहा तो पृथ्वी जैसा शांत और स्थिर ग्रह कैसे बनेगा। अगर पृथ्वी पर डायनासोरों जैसे जीवो का खूनी विध्वंस जारी रहा तो मनुष्य जैसा तीव्र बुद्धि वाला व विकसित प्राणी कैसे बनेगा। जब तक जीव में अनुभव करने वाला मस्तिष्क नहीं बना, तब तक प्रकृति सत्ता के लालच में सृष्टि का विकास करती रही। सत्ता के लिए अनुभव की जरूरत नहीं है। हालांकि सत्ता और आनंद आपस में जुड़े हुए हैं। सत्ता का विकास होने से आनंद का विकास भी होता है। हालांकि वह बाद में दिखाई दिया जब मस्तिष्क बना। मस्तिष्क बनने पर तो जीव के विकास की रफ्तार कई गुना बढ़ गई, क्योंकि अब वह विकास के लिए अनुभव या आनंद से भी प्रेरित हो रहा था। अनुभव और आनंद लगभग एक ही चीज हैं। सत्ता से तो पहले भी प्रेरित हो रहा था। आदमी बनने पर उसने कठिन कुंडलिनी योग साधना की और उससे कुंडलिनी जागरण के रूप में परम आनंद का अनुभव प्राप्त किया। मतलब प्रकृति की पुरुष तक की यात्रा पूरी हो गई। मूल प्रकृति विकास करती हुई पुरुष में विलीन हो गई पर मूल प्रकृति भी वैसी ही रही। यह ऐसे ही है जैसे एक पेड़ से उसकी जितनी मर्जी परछाइयां बना लो। मतलब अगर पेड़ की परछाई अपना विकास करके कुछ और ही बन जाए। तब भी उस पेड़ की मूल परछाई तो वैसी ही रहेगी।

दोस्तों मूल प्रकृति तब तक अपने शुद्ध मूल रूप में थी, जब तक अनुभव करने वाले मस्तिष्क का निर्माण नहीं हो गया। जब अनुभवात्मक मस्तिष्क बना तब मूल प्रकृति में प्रकाश की तरंगें उमड़ने लगीं। इन्हीं तरंगों को हम अनुभव कहते हैं। ये प्रकाश तरंगें प्रकाशमान पुरुष से ही प्राप्त हुई थीं, बेशक आभासिक रूप में। मतलब प्रकृति और पुरुष का आपस में मिलन हो गया था। इसीलिए शास्त्रों में कहा है कि सृष्टि पुरुष और प्रकृति के जुड़ने से बनी है। ऐसा नहीं कहा है कि खाली प्रकृति से बनी है। मतलब सृष्टि का निर्माण शुरु हो गया था। आप कहेंगे कि सृष्टि तो पहले से ही विकसित हो रही थी। बेशक ऐसा ही हो रहा था पर उसे अनुभव करने वाला तो कोई भी नहीं था उस समय। अंधेरे में हो रहे नृत्य का भला क्या महत्व है, जब उसे कोई देख ही नहीं सकता। जंगल में मोर नाचा, किसने देखा।मतलब सृष्टि की उत्पत्ति तभी मानी गई जब उसे अनुभव करने वाले जीव की और उसके रूप में प्रकृति पुरुष युग्म की उत्पत्ति हुई। फिर तो प्रकृति को पुरुष तक पहुंचने के लिए आनंद का सहारा भी मिल गया था। वह अधिक से अधिक आनंद की खोज करती हुई एक प्रकार से पुरुष की ही प्रचुर खोज कर रही थी। जागृति मिलने पर वह खोज खत्म हो गई और प्रकृति पुरुष में मिल गई। मतलब पेड़ की छाया पेड़ में मिल गई। पर पुरुष की छाया दिव्य है। यह चाहे कितनी ही बार पुरुष से मिल जाए, फिर भी यह कभी खत्म नहीं होती।

पुरुष भी प्रकृति की तरह दिव्य है। सूरज के प्रकाश को अगर लगातार निकाला जाता रहे तो यह कभी ना कभी खत्म हो जाएगा। पुरुष के प्रकाश को प्रकृति चाहे जितना मर्जी खींचती रहे, यह

कभी कम नहीं होता, अनंत ही बना रहता है। जैसे एक आग का शोला अपना कुछ खोए बिना ही अनगिनत दीपकों को जला सकता है, वैसे ही एक पुरुष अपना कोई नुकसान किए बिना ही अनगिनत प्रकृतियों को जगमग कर सकता है।

कुंडलिनी शक्ति से मूल प्रकृति में स्थित ध्यान चित्र जागृत होकर पुरुष बन जाता है

दोस्तों, यह बहुत छोटी पर बहुत सारगर्भित पोस्ट है। मूलाधार क्या मूल प्रकृति को ही कहा गया है। यह विचार मेरे मन में आया था। क्यों न इसका विश्लेषण कर लिया जाए। आदमी का आधार है व्यष्टि प्रकृति अर्थात जीवात्मा। यह सभी जीवों के लिए अलग-अलग है। आधार पर इमारत की गुणवत्ता, आकार, ऊंचाई आदि सभी निर्भर करते हैं। मतलब आधार में भावी इमारत की सारी सूचनाएं दर्ज रहती हैं। इसी तरह से आदमी की जीवात्मा में आदमी की सारी भावी सूचना दर्ज होती है, जैसे कि उसके जन्म, गुण, कर्म, फल आदि।

आधार तो हर एक जीव के लिए अलग और विशेष है, पर मूलाधार तो सबका एक ही है। आधार को प्रकृति का और मूल आधार को मूल प्रकृति का पर्यायवाची शब्द समझना चाहिए। कहते भी हैं कि अमुक आदमी की प्रकृति कैसी है। अर्थात स्वभाव कैसा है? मूलाधार से ही सभी आधार बनते हैं। आधार पहले मूलाधार में बदलना चाहिए। तभी कुंडलिनी योग की असली शुरुआत होगी। कर्म योग से आदमी की आत्मा में दबी हुई सूचनाएं अनासक्ति से उभर कर नष्ट हो जाएंगी। जब आत्मा का बक्सा लगभग खाली हो जाएगा तब वह मूलाधार बनेगा। मतलब उसमें सांसारिक सूचनाएं नहीं दबी होंगी। यह पुरुष की तरह ही होता है। सिर्फ यही अंतर है कि यह पुरुष के विपरीत अंधेरनुमा होगा। मतलब यह पुरुष की आभासी परछाई की तरह ही होगा। जब आदमी के अर्थात आदमी की जीवात्मा के मूल आधार अवस्था में स्थित होने पर गुरु आदि रूप के मानसिक चित्र का ध्यान किया जाता है, तब ध्यान आसानी से लगता है। यह इसलिए क्योंकि आत्मा में कोई दूसरा दबा हुआ कचरा होता ही नहीं जो ध्यान की शक्ति को सोखकर शक्तिशाली हो सके या अभिव्यक्त हो सके। जब तांत्रिक कुंडलिनी योग से उस ध्यान चित्र को कुंडलिनी शक्ति भी दी जाती है, तब तो है आग के शोले की तरह भड़कने लगता है। इससे वह जल्दी ही जागृत हो जाता है।

कुंडलिनी जागरण से ही बीज भरा पूरा वृक्ष बनता है

दोस्तो, सृष्टि के रहस्य को सिर्फ सांख्य दर्शन ने ही सबसे अच्छी तरह से समझाया है। प्रकृतिपुरुष युग्म के बारे में शायद शास्त्रों का यह मतलब है कि अगर शुरु में प्रकृति ने भी सृष्टि बनाई तो भी प्रकृतिपुरुष युग्म ने ही बनाई, क्योंकि पुरुष से मिलन की संभावना से प्रेरित होकर ही प्रकृति ने सृष्टि बनाई। जो पुराने समय में समय की कमी के कारण बुद्ध ने जिज्ञासु शिष्य को नहीं समझाया था कि जीवनमरण रूपी रोग की शुरुआत कहां से हुई उसे सांख्य दर्शन से समझा जा सकता है। आदमी हमेशा से भी इस बंधन रोग से ग्रस्त है और नहीं भी है। जब पहला अनुभवात्मक मस्तिष्क बना तभी बंधन की शुरुआत हुई। मतलब तभी जीवात्मा अस्तित्व में आई। पर जिस प्रकृति के ऊपर पुरुष से प्रकाशमय रेखाचित्र बना, वह प्रकृति तो अनादि है। इसका मतलब है कि जीवात्मा अनादिकाल से प्रकृति के रूप में थी।

मतलब जीवात्मा अनादिकाल से बंधन में था पर ऐसा भी नहीं है, क्योंकि प्रकृति छाया की तरह है जिसका अस्तित्व ही नहीं है। जो चीज अनादि है उसका अंत हो ही नहीं सकता। शास्त्रों में कई जगह लिखी यह बात मुझे समझ नहीं आती जिसमें कहा गया है कि बंधन अनादि है, पर उसका अंत हो सकता है। ऐसा होना असंभव है। अंत उसीका हो सकता है जिसकी कभी शुरुआत हुई हो। शायद वे ठीक कह रहे हैं पर हम गलत समझते हैं। ऐसा कहने का उनका एक प्रयोजन बंधन से डराना और उसे कमजोर न समझने की भूल न करना है। दूसरा प्रयोजन यह बताना है कि पुरुष कभी बंधन में नहीं पड़ सकता। अगर ऐसा होता तो लोग बंधन को मिटाने के लिए ज्यादा प्रयास न करते क्योंकि उन्हें फिर बंधन में पड़ने का डर बना रहता। शायद उनका बंधन अनादि कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति अनादि है, यह नहीं कि जीवात्मा अनादि है। शायद उनका कहने का यह मतलब है कि यह बंधन परंपरा अनादि है और एक आदमी के मुक्त होने से खत्म नहीं हो जाती। साथ में परमात्मा इतना निर्दयी नहीं हो सकता कि उसने सभी जीवों को अनादिकाल से बंधन में जकड़ कर रखा हो। अंतिम प्रयोजन यह लगता है कि लोग गूढ़ दर्शन के झमेले से बचकर सिर्फ साधना पर ध्यान दे। वैसे कई जगह शास्त्रों में ऐसा भी कहा गया है कि फलां आदमी एक ही मनुष्य जन्म में मुक्त हो गया या हो जाता है, फलां को दस जन्म लेने पड़े, फलां को सौ आदि। इस्का यह मतलब हुआ कि बंधन की कभी शुरुआत हुई और वह अनादि नहीं है।

दरअसल प्रकृति का अस्तित्व है भी और नहीं भी। इसीलिए इसे शास्त्रों में अनिर्वचनीय कहा है। पेड़ की छाया भी अनिर्वचनीय ही होती है। वह होती है इसीलिए दिखती है, पर असल में होती भी नहीं।मतलब जीव या आदमी का बंधन अनादि भी है और अनादि नहीं भी है। सैद्धांतिक रूप से तो यह अनादि है पर अनुभवात्मक रूप से इसकी शुरुआत हुई थी। जब जीवात्मा बन ही गया तब इसका विलय पुरुष में ही संभव है, नहीं तो वह अस्तित्वहीन होकर भी सुख-दुख अनुभव करता हुआ भटकता ही रहेगा। यह आश्चर्य ही है कि जीवात्मा का अस्तित्व न होते हुए भी वह कैसे बन

जाता है? यह प्रकृतिपुरुष का ही खेल है। जीवात्मा एक भ्रममात्र ही है। मतलब जीवात्मा की उत्पत्ति नहीं होती बल्कि भ्रम की उत्पत्ति होती है। भ्रम खत्म तो बंधन खत्म।

प्रकृति भूमि है तो पुरुष पेड़ है। जब पेड़ का बीज जमीन पर गिरता है तो वह बढ़ने लगता है और बढ़ते बढ़ते पेड़ ही बन जाता है। जैसे जैसे पेड़ बढ़ता है वैसे वैसे भूमि दिखनी कम होती रहती है ,और पेड़ दिखना बढ़ता रहता है। अंत में पेड़ इतना फैल जाता है कि उसके पत्तों के झुरमुटों के शिखर से भूमि बिल्कुल नहीं दिखती। ऐसा लगता है कि भूमि और बीज दोनों वृक्ष बन गए हैं। पर दरअसल बीज ही वृक्ष बना होता है। भूमि तो पहले के जैसी ही होती है। एक बीज के पेड़ बनने से भूमि नष्ट नहीं हो जाती, पर दूसरे बीजों को भी पेड़ बनाने के लिए वैसी ही बनी रहती है। इसी तरह प्रकृति भी है जो न होते हुए भी आभासी भूमि की तरह है।

भूमि सबसे नीचे थी। वह आकाश की ऊंचाइयों को छूना चाहती थी। आकाश न सही, पेड़ की ऊंचाई तक ही सही। पर सीधे तौर पर वह ऐसा नहीं कर सकती थी। इसलिए उसने पेड़ की मदद ली। पेड़ के बीज को उसने बढ़ाया और फैलाया और उसे ऊंचा उठा दिया। भूमि बेशक खुद ऊंची नहीं उठ सकी पर उसे पेड़ों को ऊंचा उठाने का श्रेय मिला, जो उसे तसल्ली देने के लिए काफी था। इसी तरह पुरुष की छाया मतलब प्रकृति भी पुरुष जैसा महान बनना चाहती थी। वह सीधे तौर पर ऐसा नहीं कर सकती थी क्योंकि पेड़ की छाया कभी पेड़ नहीं बन सकती और न पेड़ से मिल ही सकती है। इसलिए उसने पुरुष के बीज की मदद ली। उसने पुरुषबीज मतलब जीवात्मा को बढ़ाना शुरु किया और उसे कुंडलिनी जागरण करा के पुरुष जितना ऊंचा उठा दिया। प्रकृति बेशक खुद पुरुष नहीं बन सकी, पर उसे जीवात्माओं को ऊंचा उठाने का श्रेय मिला, जो उसे तसल्ली देने के लिए काफी था। मां भी लगभग ऐसी ही होती है, इसीलिए प्रकृति और धरती को मां भी कहा गया है।

कुंडलिनी जागरण सांख्य दर्शन का आधारभूत सिद्धांत प्रस्तुत करता है

दोस्तों पुरुष से ही आभासी प्रकृति को अनुभवात्मक अस्तित्व मिला। अनुभवात्मक मस्तिष्क बनने से पहले प्रकृति छाया की तरह आभासी होते हुए भी सृष्टि को चला रही थी। मतलब उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं था, पेड़ की छाया की तरह। जब पहला अनुभवात्मक मस्तिष्क बना तो उसके नाड़ी स्पंदनों से पुरुष के अंदर तरंगें पैदा हुईं। वह पुलिस को महसूस हुई जिससे पुरुष के अपने अनंत प्रकाशरूप आत्मस्वरूप में अंधेरा छा गया। मतलब पुरुष प्रकृति बन गया। हालांकि जो मस्तिष्क में विचाररूपी नाड़ी स्पंदन उभरते रहे, वे उसे पुरुष की तरह प्रकाशमान और चेतन महसूस होते रहे। मतलब प्रकृतिपुरुष युग्म की उत्पत्ति हुई। यह ऐसे ही है जैसे एक पेड़ तूफान से टूट कर अपनी छांव के ऊपर गिर गया और छांव की तरह अस्तित्वहीन हो गया। पहले, तूफान से पेड़ के हिलने से उसकी छाया पर उसके रेखाचित्र बन और मिट रहे थे। पर उस पेड़ के ठूंठ से नई कोंपल निकलने से पुनः नया पेड़ बन गया। अब उस नए पेड़ के छायाचित्र उस पुराने गिरे हुए पेड़ पर बनने लगे। मतलब पेड़ की छाया भी अस्तित्व में आ गई थी और उस पर पड़ने वाले पेड़ के रेखाचित्र भी उसे असली पेड़ की तरह महसूस होने लगे। पुरुष के साथ भी ऐसा ही हुआ। बेशक प्रकाशरूप पुरुष अपनी तरंगों को महसूस करके अंधकार रूप प्रकृति बन गया। पर एक मूल पुरुष भी था जो कभी भी अपने सिवाय मतलब अपनी शुद्ध आत्मा के सिवाय कुछ भी महसूस नहीं करता, अपने अंदर बनने वाली अपनी तरंगों को भी नहीं। इसलिए वह कभी भी आत्मच्युत होकर प्रकृति नहीं बन सकता। उसे शास्त्रोक्त पुरुषोत्तम कह सकते हैं। पुरुष आसमान की तरह ही है। एक आसमान से चाहे जितने मर्जी आसमान बना लो।

उपरोक्त तथ्य का प्रमाण कुंडलिनी जागरण से मिलता है। कुंडलिनी जागरण के दौरान आत्मा पूर्ण प्रकाशरूप महसूस होती है, और उसमें समस्त सृष्टि तरंगों के रूप में महसूस होती है। पर जैसे ही आदमी उन सृष्टिरूपी तरंगों के प्रति आसक्त होने लगता है, वैसे ही आत्मा का अनंत प्रकाश ओझल हो जाता है। मतलब पुरुष की छाया अस्तित्व में आ जाती है। दरअसल भौतिक अस्तित्व में तो वह पहले भी थी, इससे तो अनुभवात्मक अर्थात आत्मिक सत्ता मिली। मतलब अब छाया अपने को महसूस करने लगी कि वह है। पहले तो वह मिट्टी पत्थर की तरह थी जैसे वे भी अपने को आत्मिक रूप में महसूस नहीं करते कि वे हैं, पर वे भौतिक रूप से होते हैं। आदमी फिर से पहले की तरह अपनी आत्मा को अंधकारमय प्रकृति के रूप में और उसमें उमड़ रहे मानसिक विचारों को प्रकाशमान पुरुषतरंगों के रूप में महसूस करने लगता है। पुरुषतरंगें तभी बन रही हैं न जब बैकग्राउंड में एक पुरुष अर्थात पुरषोत्तम बैठा है। नहीं तो तरंगें कहां से आएंगी? इस तरह से कई बार तो मुझे कुंडलिनी जागरण ही सांख्य दर्शन का आधारभूत सिद्धांत लगता है।

कुंडलिनी योग से डार्क मैटर डार्क एनर्जी के रूप में व्यवहार करने लगता है

दोस्तों, स्थूल जगत और उसका अभाव दोनों का ही अस्तित्व नहीं है। आदमी दोनों को अस्तित्व प्रदान करता है। जगतभाव पुरुष का अविभाजित अंश है। इसलिए जगतअभाव भी पुरुष का अंश ही सिद्ध हुआ। बेशक भाव की अपेक्षा बहुत छोटा। अगर जगत भाव को हम पुरुष का अविभाजित अंश कहते हैं तो अभाव को प्रकृति का अविभाजित अंश कहने में कोई समस्या नहीं है। ज्ञान और साधना से आदमी पूर्ण पुरुष तो बन सकता है पर पूर्ण प्रकृति कैसे बनेगा। पूर्ण पुरुष का अस्तित्व है पर पूर्ण प्रकृति का तो अस्तित्व ही नहीं है। वैसे अस्तित्व तो संपूर्ण जगतभाव का भी नहीं है। मतलब आंशिक जगतभाव का अस्तित्व ही संभव है। यह इसलिए क्योंकि जगतभाव को अस्तित्व जीवों के अनुभव से मिलता है। और ऐसा कोई जीव नहीं है जो संपूर्ण जगतभाव को एक साथ अनुभव कर सके। सृष्टि के सभी जीव मिलकर भी ऐसा नहीं कर सकते। इसी तरह संपूर्ण जगतअभाव अर्थात प्रकृति का भी अस्तित्व संभव नहीं है। मतलब यह है कि बेशक समग्र जगतभाव का और समस्त जगतअभाव का भौतिक अस्तित्व है पर उनमें आत्मा नहीं है, और उन्हें कोई जीवात्मा भी अनुभव नहीं करता।

क्योंकि पुरुष तो कभी नष्ट नहीं होता इसलिए उसका अभाव नहीं होता। मतलब पुरुष की छाया बन ही नहीं सकती। छाया वास्तव में अभाव को ही कहते हैं। पेड़ की छाया वस्तुतः पेड़ की नहीं होती बल्कि प्रकाश किरणों की होती है। जिस क्षेत्र पर प्रकाश किरणों का अभाव हो गया, उस क्षेत्र में पेड़ की छाया पड़ी हुई मानी जाती है। इसी तरह से जगत से जो छाया बनती है, वह पुरुष के अभाव से बनती है। मतलब जगत एक पेड़ की तरह है, और पुरुष सूर्य की तरह है। इसी तरह समग्र सृष्टि की छाया ही मूल प्रकृति है, पुरुष का इससे कुछ लेना देना नहीं। समग्र जगत के अभाव को मूल प्रकृति कहेंगे। क्योंकि समग्र जगत भी पुरुष का ही अविभाजित अंश है, इसलिए व्यवहार में मूल प्रकृति को पुरुष की छाया कहा जाता है। लघु मतलब व्यष्टि या व्यक्तिगत जगत के द्वारा पैदा किए गए छायानुमा अभाव को लघु या व्यष्टि या व्यक्तिगत प्रकृति कहेंगे। मतलब व्यष्टि जगत को ही अनुभवात्मक सत्ता मिलती है, समष्टि जगत को नहीं। हालांकि भौतिक अस्तित्व दोनों का होता है।

प्रकृति सीधी पुरुष तक नहीं जा सकती। उसे पुरुष अंशों से होकर ही क्रमवार ऊपर चढ़ना पड़ता है। इसलिए यह पुरुष के अविभाजित अंश को धीरे-धीरे बढ़ाती रहती है। सबसे छोटे जीव जैसे कि जीवाणु आदि में जरा भी पुरुष अंश नहीं होता। पर यह पुरुष अंश पैदा करने वाली शरीररूपी सीढ़ी का पहला पायदान होता है। फिर मेंढक, मछली आदि जीवो में प्रकृति बनी जीवात्मा को पुरुष अंश महसूस होने लगता है। कुत्ता, बंदर जैसे प्राणियों में यह अंश काफी बढ़ जाता है। आदमी में यह अंश सर्वोच्च स्तर पर होता है। इस स्तर से प्रकृति कुंडलिनी योग से सीधे ही पुरुष तक छलांग लगा सकती है। मतलब मनुष्य शरीर से ज्यादा विकसित शरीर की जरूरत नहीं पड़ती। महामानव

आदि तो मिथकीय परिकल्पना ही लगती हैं इस मामले में, जिनका कोई विशेष उद्देश्य नहीं दिखता।

हम स्थूल जगत को कभी सीधे तौर पर अनुभव नहीं कर सकते, न इसके भाव को और न इसके अभाव को। स्थूल जगत का जो सूक्ष्म चित्र हमारी आत्मा पर बनता है, हम उसे ही महसूस कर सकते हैं। स्थूल जगत के भाव का चित्र तो हमें पहाड़, नदी, सूर्य आदि विविध पदार्थों के रूप में महसूस होता है। इन पदार्थों के अभाव का चित्र हमें अंधेरे के रूप में महसूस होता है। वह तो अंधेरे का सूक्ष्म रूप है। पर उसका स्थूल रूप भी बाहर मौजूद होता है, उसी तरह जैसे आत्मा में अनुभव हो रहे सूक्ष्म जगत का स्थूल रूप बाहर के स्थूल जगत के रूप में होता है। उस स्थूल अंधेरे को ही शायद डार्क एनर्जी, डार्क मैटर आदि कहते हैं।

भौतिक शरीर की तरह भौतिक जगत की भी एक जीवन सीमा है। जैसे शरीर उस सीमा को छू लेने पर मर जाता है, उसी तरह जगत भी अपनी आयु पूरी होने पर नष्ट हो जाता है। स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर रूपी व्यष्टि प्रकृति में समा जाता है। स्थूल जगत डार्क एनर्जी एंड डार्क मैटर जैसे नाम वाली समष्टि प्रकृति अर्थात मूल प्रकृति में समा जाता है। उस सूक्ष्म शरीर से नया शरीर फिर से जन्म ले लेता है। उसी तरह मूल प्रकृति से भी नया जगत पैदा हो जाता है। यह सिलसिला चक्रवत चलता रहता है।

कई लोग बोलते हैं कि इस जगत की उत्पत्ति परमात्मा से हुई है। वास्तव में पुरुष से कुछ पैदा नहीं होता। वह बिल्कुल असंग है। वह आश्चर्यमय और अद्‌वितीय है। हां, उसकी निकटता से जगत को अनुभवात्मक सत्ता मिलती है। जगत तो पुरुष की तरह ही अनादि, अनंत है। यहां यह अंतर है कि पुरुष हमेशा पूर्ण और एकसमान रहता है, जबकि जगत बदलता रहता है। जगत कभी भाव रूप में होता है तो कभी अभाव रुप में। इसके भाव रूप में अभिव्यक्ति के भी अनगिनत स्तर हैं और अभाव रुप में अभियुक्ति के भी अनगिनत स्तर हैं। इसी जगत को प्रकृति कहते हैं। जब इसे पुरुष की समीपता मिलती है, तब यह अनुभव के दायरे में आता है, अन्यथा बिना अनुभव के ही चलायमान रहता है, जैसे कि कोई नर्तकी अंधेरे में नाच रही हो। इसीलिए कहते हैं कि अनुभव में आने वाला समस्त संसार प्रकृति और पुरुष के सहयोग से बना है।

इसी तरह से लोग कहते हैं कि बच्चे परमात्मा से आते हैं इसलिए परमात्मा का साक्षात रुप है। आदमी के जन्म के साथ ही वह अपने मस्तिष्क में जगत के चित्र महसूस करने लगता है। मस्तिष्क में वे तभी महसूस हो सकते हैं, अगर वे बच्चे के सूक्ष्म शरीर में पहले से मौजूद हों, अन्यथा वे चित्र बनेंगे तो जरूर पर किसी को महसूस ही नहीं होंगे। बोलने का मतलब है कि अंधेरा रूपी सूक्ष्मशरीर पर ही वे प्रकाशमान चित्र बन सकते हैं। अगर बच्चों की आत्मा अंधेरे सूक्ष्म शरीर की बजाय प्रकाशमान पुरुष के रूप में हो तब उस पर प्रकाशमान चित्र कैसे बन सकते

हैं। प्रकाशमान दीवार पर प्रकाश से रेखाचित्र तो नहीं बन सकते। पहले दीवार को काला या अंधेरानुमा करना होगा। हां यह जरूर है कि बच्चे परमात्मा के सबसे निकट होते हैं, क्योंकि उनमें अहंकार भाव बहुत कम होता है।

प्रकृति व्यक्त और अव्यक्त होती रहती है। यह शाश्वत चक्र है। इसमें पुरुष का कोई लेना देना नहीं है। वह स्थिर, शाश्वत और चेतन तत्व है। उसकी समीपता से प्रकृति को ऐसे ही शक्ति और गति मिलती रहती है, जैसे चुंबक की समीपता से लोहे को। अव्यक्त प्रकृति को डार्क मैटर कह सकते हैं। डार्क मैटर में सिर्फ गुरुत्व होता है, अन्य कुछ नहीं। मतलब डार्क मैटर का अस्तित्व है भी और नहीं भी है। इसलिए "नहीं है", क्योंकि इसमें अस्तित्ववान वस्तु की कोई विशेषता नहीं है। इसे न देख सकते हैं, न सुन सकते हैं, न छू सकते हैं। यह इंद्रियों की पहुंच में नहीं है। यह "है" इसलिए है, क्योंकि इसमें गुरुत्व बल है। गुरुत्व बल भी सत्ता का या होने का ही सामान्य या छोटा सा लक्षण है। तभी तो कहते हैं कि फलां की बातों में वजन या गुरुत्व है। मतलब फलां की बातों का व्यावहारिक अस्तित्व है। डार्क एनर्जी भी मूल प्रकृति हो सकती है। यह भी डार्क मैटर और मूल प्रकृति की तरह अनिर्वचनीय ही है। यह "नहीं है", क्योंकि इसमें भौतिक वस्तु का कोई भी लक्षण नहीं है। यह "है", क्योंकि यह ऊर्जा के जैसा प्रभाव पैदा करती है। इसलिए हो सकता है कि दोनों एक ही चीज हों। किसी चीज के अस्तित्व के साथ उसका प्रभाव भी जुड़ा होता है। प्रभाव के बिना अस्तित्व अधूरा है। यदि एक कठोर चट्टान चोट न पहुंचा सके, तो उस चट्टान के होने का कोई मतलब नहीं रह जाता। डार्क मेटर उसी कठोर चट्टान की तरह है, और डार्क एनर्जी उसके द्वारा लगाई गई चोट है, जो ब्रह्मांड को बाहर की ओर धकेल रही है। जैसे नदी में पड़ी चट्टान किसी बहते आदमी को रोक भी सकती है, और किसी आदमी को अपने साथ बहा भी सकती है ,उसी तरह मूल प्रकृति डार्क मैटर की तरह व्यवहार करके सभी अंतरिक्षीय पिंडों को गुरुत्व बल से आपस में बांध भी सकती है, और डार्क एनर्जी की तरह व्यवहार करके उन्हें एक दूसरे से दूर भी धकेल सकती है। आम आदमी के मन का अंधेरा डार्क मैटर जैसा होता है, जो उसके जगत को अपने में खींच कर और बांध कर रखता है। पर कुंडलिनी योगी के मन का अंधेरा डार्क एनर्जी की तरह व्यवहार करता है, जो उसके जगत को अपने से बाहर धकेलने की कोशिश करता रहता है। वह जगत फिर बाहर निकल कर उसके मन में पुनः उभरता रहता है, और प्रकाशमान आत्मा में विलीन होता रहता है। एक संतुलित व्यक्ति में डार्क एनर्जी और डार्क मैटर एक संतुलित अनुपात में रहते हैं, वैसे ही जैसे बाहर के भौतिक ब्रह्मांड में होते हैं।

इस लिहाज से तो आदमी के मस्तिष्क की सृष्टि भी व्यक्त और अव्यक्त के बीच झूलने वाली होनी चाहिए, अनादि काल से। मतलब आदमी का बंधन अनादि होना चाहिए। इसका विश्लेषण हम अगली पोस्ट में करेंगे।

कुंडलिनी तंत्र की अनियंत्रित शक्ति ही बांग्लादेश में मुस्लिम जिहादियों की भीड़ से अल्पसंख्यक हिंदुओं पर अत्याचार करवा रही है

सभी प्रिय पाठकों को श्रीकृष्ण जन्माष्टमी की हार्दिक बधाई

दोस्तो, इस पोस्ट में बहुत से रहस्य छिपे हुए हैं। मुझे तो यह गागर में सागर की तरह लग रही है। मूलाधार चक्र सिर्फ मेरुदंड के आधार पर कोई स्थान विशेष नहीं है। यह आत्मा या मन की अवस्था भी है, जिसमें सांसारिकता का कचरा नगण्य सा बचा होता है। सहस्रार चक्र पर ज्ञान या सात्त्विकता से जुड़े अहंकार का कचरा होता है। आज्ञा चक्र पर बुद्धिमत्ता का कचरा होता है। विशुद्धि चक्र पर वाणी से संबंधित कचरा होता है। अनाहत चक्र पर भावनाओं से जुड़ा कचरा होता है। मणिपुर चक्र पर भोजन से संबंधित सांसारिक विचारों का कचरा होता है। स्वाधिष्ठान चक्र पर प्रजनन व यौनता से जुड़ा कचरा होता है। मूलाधार चक्र पर शौच से जुड़ा सांसारिक कचरा होता है। मतलब कि जब मन पर जमा हुआ संसार का सारा कचरा नष्ट हो जाता है, तब मन अपने असली पुरातन रूप में आ जाता है। मन का वह आदिम या आदिकालिक रूप मूल प्रकृति ही है। यही मूल आधार मतलब मूलाधार है। यह चेतना का सबसे निचला स्तर होता है। इसीलिए इसको शरीर का सबसे निचला स्थान दिया गया है। मूलाधार से अगर यह क्रमवार चक्रों से होकर धीरे -धीरे ऊपर चढ़ता है, तब यह पुनः सांसारिक कचरा इकट्ठा करने लगता है। अक्सर आदमी के साथ ऐसा ही होता है। आपने सुना भी होगा। जैसे कि फलां आदमी बिल्कुल दिवालिया या कंगाल हो गया था या सड़क पर आ गया था। फिर उसने धीरे-धीरे तरक्की करते हुए अपार धन संपदा इकट्ठी कर ली। वह दरअसल मूलाधार में पहुंच गया था, सब कुछ खोकर। मूलाधार में अपार ध्यान शक्ति होती है। यह इसलिए क्योंकि वहां सांसारिक कचरे का व्यवधान नहीं होता। उस ध्यान शक्ति को उसने कुंडलिनी योग साधना में नहीं लगाया, पर प्रचुर धन संपत्ति इकट्ठा करने में लगाया। सब कुछ तो नहीं मिल सकता न। शक्ति की भी एक सीमा होती है। इधर लगाओगे, तो उधर के लिए नहीं बचेगी। उधर लगाओगे, तो इधर के लिए नहीं बचेगी। अगर थोड़ा थोड़ा दोनों तरफ लगाओगे, तो न इधर कुछ हासिल होगा, न उधर। ऐसा इसलिए, क्योंकि हर एक उपलब्धि के लिए एक मुक्तिगामी वेग अर्थात एस्केप वेलोसिटी की जरूरत होती है। यह अधिकतम शक्ति से ही हासिल होती है। कई लोग जानबूझकर कुंडलिनी साधना को ठुकराते हैं, क्योंकि उनकी मजबूरी होती है। पेट का भरण पोषण ज्यादा महत्वपूर्ण है, कुंडलिनी जागरण बाद में। कई लोग जीवन जीने का भरपूर गुजारा होते हुए भी धन के लालच में आकर इसे मूर्खतापूर्वक ठुकराते हैं। पर अधिकांश लोगों को तो कुंडलिनी साधना का ज्ञान ही नहीं होता। यह इसलिए क्योंकि इसे आदि काल से आम आदमी से छुपाया जाता रहा है। खासकर बालकों और किशोरों से तो पूरी तरह से छुपाया गया है। युवावस्था में वह काम धंधों की उलझनों में फंस कर इस बारे जानकारी हासिल नहीं कर पाता। जब वह परिपक्व और बूढ़ा होने लगता है, तब उसे इसकी जानकारी दी जाती है। पर तब शरीर की अशक्तता के कारण तांत्रिक कुंडलिनी साधना हो नहीं पाती। अपनी बूढ़ी उम्र में अगर आदमी मूलाधारवासिनी नागिन का मुंह हमेशा ऊपर की ओर मोड़ के रखेगा तो प्रोस्टेट तो

बढ़ेगा ही। महाराज ओशो ने इसीलिए तांत्रिक संभोग से पर्दा उठा कर उसे सार्वजनिक किया। मैं उस काम के लिए उन्हें दाद देता हूं।

तांत्रिक कुंडलिनी योग को छिपाने की मुख्य वजह मुझे यह लगती है कि कई बार इससे मिलने वाली शक्ति को नियंत्रित करना कठिन हो जाता है। उससे आदमी हिंसक भी बन सकता है, पागल भी बन सकता है। बांग्लादेश में क्या हो रहा है? मुझे तो लगता है कि जिहादियों के पास वही अनियंत्रित कुंडलिनी शक्ति है, जो वहां के अल्पसंख्यक हिंदुओं को इसका निशाना बनाते हुए उनसे अनगिनत कुकर्म करवा रही है। इस्कॉन कृष्ण मंदिर का हाल ही देख लीजिए, सबकुछ टूटा फूटा हुआ और देव मूर्तियां तहस नहस। साथ में, उनका कुंडलिनी तंत्र को अपनाने का तरीका भी तो गलत और अधूरा जैसा ही है। लिटल नॉलेज इज ए डेंजरस थिंग। इसलिए हिंदुओं के वेदपुराण बने थे ताकि लोग उनके अनुसार प्रारंभिक जीवन जीते हुए आराम और सुरक्षा के साथ कुंडलिनी तंत्र तक पहुंचकर उसे अपनाते और बिना दुष्प्रभाव के उसमें सफल होते। पर ये क्या, जेहादी मानसिकता के लोग तो सीधे ही मतलब वेदों की सहायता लिए बिना ही साधना के अंतिम पायदान मतलब निराकार ब्रह्म तक पहुंच जाते हैं, वह भी तांत्रिक क्रियाओं जैसे कृत्यों के साथ। इससे नुकसान तो होगा ही। वेदपुराण न पढ़ने होते तो शरीरविज्ञान दर्शन ही पढ़ लेते, क्योंकि यह वेदपुराणों का आधुनिक और संक्षिप्त स्पष्टीकरण ही लगता है मुझे। आप ही सोचो कि क्या कोई आदमी एबीसी सीखे बिना ही अंग्रेजी में पीएचडी कर सकता है? करने लगेगा तो कन्फ्यूज या पागल तो होगा ही। मतलब कि छिपाने का प्रयास करते हुए भी यह विद्या छिपी कहां है, साथ में यह इसके सुपात्र लोगों को भी नहीं मिल पा रही है। ऐसे भी अतिवादी इसे गलत ढंग से भी तो सीख ही रहे हैं, यदि विद्वान इसे न छिपाते तो सही ढंग से तो सीखते। इससे अच्छा होता कि इसे नियंत्रण करने के तरीके खोजे जाते और सार्वजनिक किए जाते।

लोकतंत्र के अनेक लाभ हैं, पर यह बहुसंख्यक आबादी मुख्यतः कट्टरपंथी जिहादियों द्वारा किए जाने वाले जुल्मों पर लगाम नहीं लगा पा रहा है। शेख हसीना ने कोशिश की तो उसे जान बचा कर भागना पड़ा। अगर लगाम लगा भी देती तो बहुसंख्यक आबादी उसे चुनाव में हरा देती, और फिर विपक्ष पर दबाव डालकर आजीवन कारावास या मृत्युदंड दिलवा देती या साजिशन खुद ही मरवा देती। इसी डर से राष्ट्राध्यक्ष उग्र भीड़ से मनमानी भरा तांडव करने देते हैं। आखिर जान तो सबको प्यारी होती है।

मूलाधार पर कुंडलिनी साधना करने वाले भी दो किस्म के लोग होते हैं। पहले किस्म के लोग कुंडलिनी का हर एक चक्र पर लंबे समय तक या महीनों तक एक ही चक्र पर ध्यान करते हुए धीरे-धीरे ऊपर चढ़ाते हैं। लगता है, आजकल ऐसे लोग कामयाब नहीं हो सकते। आज के आपाधापी के युग में सालों तक शांत व व्यवधानरहित जीवन नसीब नहीं हो सकता। गनीमत है अगर एक दो महीना या एक दो साल भी मिल जाए। ऐसे में कुंडलिनी बीच के ही चक्रों में फंसी

रह सकती है। दूसरे किस्म के लोग बुलेट ट्रेन की तरह होते हैं। वे एकदम से संभोग आधारित तांत्रिक कुंडलिनी योग से कुंडलिनी को सीधे ही एकदम से मूलाधार से सहस्रार तक चढ़ा देते हैं। ऐसे लोगों के लिए तो एक महीने का समय भी काफी होता है। अगर एक दो साल का उपयुक्त जीवन मिल जाए, तब तो कहने ही क्या।

स्पष्ट है कि आम आदमी मूलाधार और सहस्रार के बीच झूलता रहता है, विभिन्न चक्रों से होते हुए, जागृति को पाए बिना ही। वह कभी मुक्त नहीं हो पाता। कुंडलिनी जागरण भी मुक्ति की गारंटी नहीं है। मुक्ति तो सन्यासी की तरह मन को पूरी तरह से त्यागने से मिलती है, जो कि व्यवहारिक जीवन में संभव नहीं है। यह अलग बात है कि किसी चमत्कारिक व अनजाने तरीके से मुक्ति खुद ही मिल जाती हो, बेशक इसके लिए प्रयास तो करना ही चाहिए। मूलाधार और मूल प्रकृति की समकक्षता को देखकर तो यही लगता है कि आदमी का सांसारिक बंधन अनादि है, बेशक इसका अंत हो सकता है।

कुंडलिनी योग एक माली की तरह काम करता है

दोस्तों, पूर्ण प्रकृति संपूर्ण जगत की छाया है। पूर्ण प्रकृति को मूल प्रकृति भी कहते हैं। यह समष्टि जगत की मूल प्रकृति है। व्यष्टि जगत की मूल प्रकृति को मूलाधार कहते हैं। पर मूलाधार तो शुद्ध छाया होती है। उसमें किसी विशेष भौतिक वस्तु की सूचना नहीं छिपी होती। मतलब यह शून्यमय छाया होती है। उधर हम मूल प्रकृति के अंदर संपूर्ण भौतिक जगत की सूचना को दर्ज होया हुआ मान रहे हैं। पर इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। मूल प्रकृति में सभी विरोधी सूचनाएं एक दूसरे से रद्द होकर शून्य ही बन जाती हैं। पूरी सृष्टि संतुलित है, मतलब न्यूट्रल है। इसमें जितना पॉजिटिव है, उतना ही नेगेटिव है। इस तरह से मूल प्रकृति और मूलाधार दोनों एक ही है। मतलब आदमी मूलाधार के रूप में मूल प्रकृति को भी महसूस कर सकता है। क्योंकि मूल प्रकृति संपूर्ण सृष्टि का सूक्ष्म रूप है, इसका मतलब है कि आदमी अप्रत्यक्ष रूप में अर्थात मूलाधार के रूप में संपूर्ण सृष्टि को भी एक साथ अनुभव कर सकता है।

यहां एक पेच भी है। कोई कह सकता है कि जब मूल प्रकृति में सभी सूचनाएं खत्म हो गईं, तो उसमें अंधेरा कैसे रहा, क्योंकि अंधेरे का मतलब ही उसमें सूक्ष्म सूचनाओं की उपस्थिति है। दरअसल सूचनाएं खत्म नहीं हुईं, पर उनका कुल प्रभाव एकदूसरे से रद्द हो गया। सूचनाएं तो उसमें सारी रहीं। यह ऐसे ही है जैसे हलवे में चीनी और नीम डालने से होगा। रहेंगी तो ये दोनों चीजें, पर हलवा हमें न मीठा लगेगा, न कड़वा। आदमी के मूलाधार में पहुंचने पर भी ऐसा ही होता है। उसमें सभी सूचनाएं एकसमान होती हैं। इसलिए एकसमान सा, न चुभने वाला और आनंदमयी सा अंधेरा महसूस होता है उसमें। न किसी सूचना से राग, न किसी सूचना से द्वेष। यही अद्वैत है। इसीलिए अद्वैत और अनासक्त जीवन जीने की सलाह दी जाती है। इससे आदमी जल्दी मूलाधार में पहुंच जाता है। पर यह तभी होता है, जब अद्वैत के साथ भरपूर, विविध, और विरोधी दुनियादारी को भी जिया जाए। इससे आदमी सभी किस्म की विपरीत सूचनाएं इकट्ठा करेगा, जो एकदूसरे से रद्द होकर जल्दी ही मूलाधार में प्रवेश करा देती हैं। बिना विरोधी दुनियादारी के अद्वैत का आचरण एक दिखावा ही लगता है मुझे।

फिर कहते हैं कि मूलाधार तो विकास करते हुए कुंडली जागरण के माध्यम से पुरुष में विलीन हो सकता है। फिर मूल प्रकृति पुरुष में विलीन होकर खत्म क्यों नहीं हो जाती। शायद ऐसा इसलिए है क्योंकि मूल प्रकृति का भौतिक अस्तित्व है, जिसे हम डार्क मैटर या डार्क एनर्जी कहते हैं। यह वैज्ञानिक सिद्धांत है कि भौतिक वस्तु कभी खत्म नहीं हो सकती। वह केवल रूप बदल सकती है , पर रहेगी वह हमेशा। इसे हम थ्योरी ऑफ कंजर्वेशन ऑफ मास एंड एनर्जी कहते हैं। एक वस्तु विभिन्न किस्म की वस्तुओं के रूप में या ऊर्जा के रूप में रह सकती है। यह सभी रूप आपस में बदलते रह सकते हैं। पर वह वस्तु कभी खत्म नहीं हो सकती। दूसरी तरफ मूलाधार का कोई भौतिक अस्तित्व नहीं है। यह एक आत्मा का अनुभव है। वह अनुभव भी सच्चा नहीं पर भ्रमपूर्ण

है। या ऐसा कह लो कि यह आत्मा पर भ्रम से बना हुआ मूल प्रकृति का आभासी चित्र मात्र है। असली या भौतिक उसमें कुछ भी नहीं है। जब आत्मा को ज्ञान होने पर भ्रम समाप्त हो जाता है , तो मूलाधार का अनुभव पुरुष के अनुभव के असली रूप में आ जाता है। यही सच्चा और असली अनुभव है। अगर मूल प्रकृति भी मात्र एक अनुभव होता और उसका कोई भौतिक अस्तित्व न होता, तब तो वह कब की खत्म हो जाती, और सृष्टि का अस्तित्व ही नहीं बचता। तब न हम होते , न आप और न ही यह रंगीन दुनिया। कई वेदांती लोग कहते हैं कि मूल प्रकृति का अस्तित्व नहीं है। वह भ्रम है, आदि-आदि। वे दरअसल मूलाधार की बात कर रहे हैं, जो मूल प्रकृति का आभासी मानसिक चित्र है। भौतिक रूप में तो सूक्ष्म मूल प्रकृति का अस्तित्व वैसा ही सत्य है, जैसा स्थूल भौतिक जगत का। बाईबल के Genesis 2:7 में मानवता को इसी तरह परिभाषित किया गया है। वहाँ हम पाते हैं कि परमेश्वर ने मानवता को परमेश्वर की छवि में बनाया है। परमेश्वर ने मानवता को एक ऐसे तरीके से बनाया है जो भौतिक दुनिया को बनाने के तरीके से बहुत अलग है।

कुंडलिनी योग से मूलाधार को ही पुरुष में विलीन किया जा सकता है, मूल प्रकृति को नहीं। पहले हर एक चक्र पर जमा संसारी कचरे को बाहर निकाला जाता है। फिर खाली हुए चक्र स्थानों पर कुंडलिनी चित्र को भरा जाता है। तभी यह हर समय ध्यान में रहते हुए उचित अवसर आने पर जाग जाता है। यह ऐसे ही है, जैसे एक माली बंजर भूमि पर फूल तभी उगा सकता है, जब उसके द्वारा पहले वहां के घास, फूस, झाड़, कंकड़ आदि को हटाकर उस जगह को साफ किया जाता है। अच्छी तरह से पाला और संभाला गया फूल का पौधा ऊपर उठता हुआ और बढ़ता हुआ कभी न कभी तो जागृति के फूल के रूप में खिलेगा ही।

भौतिक वस्तु न तो कभी पैदा हो सकती है, और न नष्ट हो सकती है, यह वैज्ञानिक सिद्धांत सांख्य दर्शन के सिद्धान्त को भी बयां करता है। इसके अनुसार प्रकृति भी रूप बदलती रहती है। यह कभी व्यक्त होती है, कभी अव्यक्त। पर रहती यह हमेशा है। मतलब यह अनादि, अनंत है। इसलिए यह सत्य नहीं कि प्रकृति या जगत की उत्पत्ति पुरुष अर्थात परमात्मा से हुई है। पुरुष की तरह प्रकृति का भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। यह जो पुरुष से प्रकृति के उत्पन्न होने की बात की गई है, वह मन के अंदर बने प्रकृति के चित्र मतलब व्यष्टि प्रकृति के लिए कही गई है। आत्मा मतलब पुरुष खुद उस चित्र का रूप ले लेता है। मतलब उस प्रकृतिचित्र की उत्पत्ति पुरुष से हुई, प्रकृति की नहीं। आत्मा को जब अपने असली पुरुष रूप का ज्ञान हो जाता है, तो मानो वह प्रकृतिचित्र फिर से अपने असली पुरुष रूप में आ गया, मतलब प्रकृति पुरुष में विलीन हो गई।

कुंडलिनी योग सांख्य दर्शन और वेदांत दर्शन के बीच की एक संयोजक कड़ी है

दोस्तों, पुरुष से कुछ भी निर्माण नहीं हो सकता। वही असल में शून्य आकाश है। नजर में आने वाला खाली व भौतिक आकाश भी वास्तव में शून्य आकाश नहीं है। पुरुष से अगर संसार की उत्पत्ति मानी जाएगी तो यह उस मूल वैज्ञानिक सिद्धांत के खिलाफ होगा जिसके अनुसार कोई भी पदार्थ ना तो पैदा हो सकता है, और न ही नष्ट हो सकता है, बल्कि केवल रुप ही बदल सकता है। पुरुष से संसार के पैदा होने का मतलब है, शून्य से पैदा होना, क्योंकि पुरुष ही असली शून्य है। पर वेदांत दर्शन का यह सिद्धांत है कि संसार ब्रह्म अर्थात पुरुष में विलीन हो जाता है। यह वास्तव में संसार के मानसिक चित्र के बारे में है, असली या स्थूल व भौतिक संसार के बारे में नहीं। इसको शास्त्रों में विशेषकर योग वासिष्ठ में ऐसे उदाहरण से समझाया गया है, जैसे आकाश में पुष्प या उद्यान नहीं खिल सकता या खरगोश के सिर पर सींग नहीं उग सकते, आदि आदि। ऐसे ही अनेकों उदाहरणों से समझाया गया है।

सांख्य और वेदांत दर्शन के बीच अज्ञान के कारण विरोधाभास दिखाई देता है। यह इसलिए होता है क्योंकि इनके सिद्धांतों को हम एक दूसरे के ऊपर थोपते हैं। अपने-अपने दर्शनों के अंदर दोनों के सिद्धांत पूर्ण और युक्तियुक्त हैं। अगर हम वेदांत के जगतमिथ्यावाद को सांख्य दर्शन के ऊपर थोपेंगे, तो गड़बड़ तो होगी ही। वेदांत का जगत मस्तिष्क के अंदर महसूस होने वाला और आत्मा के ऊपर बना जगत का सूक्ष्म प्रतिबिंब है। प्रतिबिंब तो हमेशा मिथ्या या झूठा ही होता है। दर्पण में दिखने वाला पहाड़ क्या सत्य होता है? बिल्कुल नहीं। पर सांख्य का जगत बाहर का असली , स्थूल और भौतिक जगत है। इसे हम मिथ्या कैसे मान सकते हैं? क्या सड़क के किनारे पड़ी हुई चट्टान झूठी है? बिल्कुल नहीं। अगर कार चालक उसे प्रतिबिंब की तरह मिथ्या मानेगा, तो अपनी कार उससे टकरा सकता है।

वेदांत कहता है कि ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है। ब्रह्म मतलब आत्मा ही सत्य है, जगत तो उस पर बना एक प्रतिबिंब है, जो मिथ्या है। यह ऐसे ही है कि दर्पण ही सत्य है, और उसमें दिख रहे जगत के चित्र मिथ्या हैं, मतलब उनका अस्तित्व नहीं है। पर बाहर के स्थूल जगत पर तो यह सिद्धांत लागू नहीं हो सकता। बाहर तो कार्यकारण परंपरा चलती है। मतलब कारण के बिना कार्य का अस्तित्व नहीं हो सकता। बाहर मूल प्रकृति का भौतिक अस्तित्व है, तभी उससे भौतिक संसार बन सकता है। यह ऐसे ही है, जैसे बर्फ से पानी बनता है, और पानी से बादल। पानी या बादल बिना कारण के अचानक कहीं से प्रकट नहीं हो जाते। दर्पण में तो किसी भी वस्तु का चित्र अचानक बन जाता है, बिना किसी कारण के। पर जिस वस्तु से वह चित्र बनता है, वह वस्तु तो अपने जनक अर्थात कारण से बनी है। वह अचानक प्रकट नहीं हुई है। इसी तरह आत्मा के ऊपर संसार की सभी वस्तुओं का चित्र अचानक व बिना कारण के बन जाता है। पर उन असली सांसारिक वस्तुओं को बनने में तो करोड़ों और अरबों वर्ष लगे हैं। अगर हम इस कार्य कारण

परंपरा को पीछे खींचते जाएं, तो अंत में मूल प्रकृति बचती है। इसी से संसार का निर्माण शुरू होता है। यह पुरुष में विलीन नहीं हो सकती, क्योंकि पुरुष ही असली शून्य आकाश है। इसमें स्थूल प्रकृति के विलीन होने का मतलब है, मूल प्रकृति का शून्य हो जाना अर्थात नष्ट हो जाना। और सृष्टि के समय इससे मूल प्रकृति के बनने का अर्थ है कि मूल प्रकृति का पैदा होना। पर यह इस वैज्ञानिक सिद्धांत के खिलाफ है कि कोई भी चीज ना तो पैदा हो सकती है और न ही नष्ट हो सकती है। वह केवल रूप बदल सकती है।

जो वेदांती लोग कहते हैं कि मूल प्रकृति आत्मा में विलीन हो जाती है, वह व्यष्टि मतलब व्यक्तिगत मूल प्रकृति के लिए है, समष्टि मतलब सामूहिक मूल प्रकृति के लिए नहीं। वह दरअसल आत्मा पर बना मूल प्रकृति का प्रतिबिंब होता है, असली व भौतिक मूल प्रकृति नहीं। अगर दर्पण के आगे से सब कुछ हटा दो, तो दर्पण के सभी प्रतिबिंब एकदम से मिट जाएंगे। इसी तरह आत्मा को दुनियादारी से हटा दो तो दुनिया के सारे प्रतिबिंब मिट जाएंगे। बेशक मूल प्रकृति के प्रतिबिंब को मिटने में ज्यादा समय लगता है, क्योंकि यह अज्ञान के भ्रम से बना होता है। मूल प्रकृति के प्रतिबिंब के मिटने को ही उसका आत्मा या परमात्मा में विलीन होना कहा गया है। विलीन कुछ नहीं हुआ, क्योंकि जब कुछ बना ही नहीं था, तो विलीन क्या होगा। भ्रम से ही बनता और विलीन होता प्रतीत होता है।

कुंडलिनी योगी सांख्य दर्शन और वेदांत दर्शन के बीच में विवाह करवाता है। पहले योगी सांख्य के अनुसार प्रकृति को असली और अलग समझता हुआ उसकी खूब उपासना करता है, और उसमें खूब मशगूल रहता है। फिर जब उसे कोई वस्तु, प्रेमी, गुरु, देवता आदि मन को बहुत भाने लगता है , तो वह उसके प्रति आसक्त हो जाता है, और दुनियादारी में पूर्णतया सक्रिय रहते हुए भी हर समय उसके बारे में सोचता रहता है। इससे उसके प्रति उसका ध्यान पक्का हो जाता है। फिर वह खुद ही योग की उच्चतर सीढ़ी में पहुंचकर कुंडलिनी योग करने लगता है। इससे वह वस्तु उसका ध्यान चित्र बन कर उसे बहुत आनंद और शांति प्रदान करती है। फिर इससे प्रेरित होकर वह खुद ही एक सीढ़ी और ऊपर चढ़कर तंत्र की अतिरिक्त सहायता लेने लगता है। इससे ध्यान चित्र कुंडलिनी चित्र बन जाता है। शीघ्र ही उसकी कुंडलिनी जाग जाती है। मतलब वह उस चित्र की याद में इतना ज्यादा खो जाता है कि वह उसकी आत्मा के साथ एकाकार हो जाता है। जो प्रकृति पहले सांख्य के अनुसार पुरुष से अलग होती थी, वह अब वेदांत के अनुसार पुरुष में विलीन हो जाती है। मतलब सांख्य दर्शन वेदांत दर्शन में रूपांतरित हो जाता है।

बेशक हरेक वैदिक दर्शन एक अलग किस्म के धर्म या जीवनशैली को रेखांकित सा करता है, प र मुझे ये सभी आपस में जुड़े हुए लगते हैं। इन दर्शनों का विकासक्रम एक आदमी के जीवन के विकासक्रम से हूबहू मेल खाता है। बचपन में आदमी जब गणना आदि को और ज्ञान प्राप्ति के लिए तर्कशीलता आदि को सीखता और अपनाता है, उस समय उसे न्याय दर्शन और वैशेषिक

दर्शन जैसे निरे भौतिक और तार्किक दर्शनों में स्थित मानना चाहिए। जब वह प्रेम करने वाली किशोरावस्था व प्रारंभिक गृहस्थावस्था में पहुंचता है तब उसे सांख्य दर्शन में स्थित मानना चाहिए। बाद की गृहस्थावस्था में उसे योग दर्शन में स्थित मानना चाहिएं, कयोंकि तब वह योग भी करता है। योग के साथ वह सनातन धार्मिक कृत्य जैसे कि कर्मकांड भी करने लगता है, कयो ंकि दोनों का आपस में अटूट रिश्ता है। इसे पूर्व मीमांसा दर्शन वाला स्तर मानना चाहिए। फिर जब उसे जागृति मिल जाती है, उसके बाद उसकी वेदांत दर्शन अर्थात उत्तर मीमांसा दर्शन में पदोन्नति हो जाती है। इस तरह से उसके जीवनकाल में छः के छः वैदिक दर्शन आ जाते हैं। यह सभी दर्शनों और सभी धर्मों के बीच परस्पर सहयोग की अत्यावश्यकता को रेखांकित करता है।

कई लोग इन दर्शनों को विभिन्न कालखंडों में धीरे धीरे उपरोक्त क्रम से ही विकसित होया हुआ मानते हैं। यह दृष्टिकोण भी सही है, कयोंकि संपूर्ण मानव जाति का विकास भी क्रमवार लगभग वैसा ही हुआ है, जैसा एक अकेले मनुष्य का उसके जीवनकाल में होता है। सबसे पहले आदिम मनुष्यकाल में न्याय और वैशेषिक जैसे भौतिक दर्शन आए। फिर जब मानव सभ्यता कुछ विकसित हुई, तो सांख्य और योग दर्शनों का उद्भव हुआ। मानव सभ्यता के बौद्धिक विकास के चरम पर वे पूर्व मीमांसा और वेदांत दर्शनों में समाहित हो गए। व्यष्टि हो या समष्टि, हरेक चीज अज्ञान से ज्ञान की ओर क्रमवार विकास करते देखी जाती है।

सांख्य दर्शन कहता है कि प्रकृति पहले अपने अंदर भटकाती है, फिर मुक्त भी कर देती है। दरअसल यह एक ऐसी सुंदर युवती की तरह है, जो पहले अपने रूप, लावण्य और हाव-भाव से आदमी को मोहित करके खूब नचाती है, और बाद में उसे छोड़ देती है या उससे विवाह कर लेती है। जब आदमी प्रकृति को और उससे पैदा हुई दुनियादारी को व्यवहारिक रूप से अच्छे से व पूरी तरह से समझ लेता है, तभी आगे के दर्शनों की सहायता से उस से पार पा सकता है, अन्यथा नहीं। हमने भी इस पोस्ट में अपने व्यक्तिगत अनुभव से यही कहा है। यह किताबी शब्दों का जाल होता है। व्यवहार में सब कुछ बड़ा स्पष्ट और सुंदर दिखता है। सांख्य दर्शन बेशक भौतिकवादी लगता हो, पर इसका लक्ष्य आध्यात्मिक ही होता है। इसलिए यह आम और मूढ़ भौतिकता के बिल्कुल विपरीत ही है। हालांकि दोनों समान ही हैं, सिर्फ़ धारणा का अंतर होता है। शुद्ध भौतिक लोग इसे केवल भोग के लिए अपनाते हैं, जबकि सांख्य आधारित भौतिकवादी लोग इसे मुख्यतः मोक्ष के लिए अपनाते हैं, भोग तो गौण या उपोत्पाद मात्र होता है।

कुंडलिनी योगी देव गणेश

दोस्तों! लंबे समय से जीवन परिस्थितियां लेखन के अनुकूल नहीं चल रही थीं। लेखन के लिए आदमी बिलकुल तनावरहित और चिंतामुक्त होना चाहिए। मन की ऐसी भावना होनी चाहिए कि जो हो रहा है, ठीक हो रहा है। आदमी ज्यादा प्रतिक्रियात्मक नहीं होना चाहिए, नहीं तो जो शक्ति लेखन के काम आनी थी, वह प्रतिक्रिया देने में खर्च हो जाती है।

मुझे लग रहा है कि मेरे मन का कुंडलिनी चित्र रूपांतरित हो रहा है। लगता है कि अब गुरु का स्थान देव गणपति ले रहे हैं। ऐसा नहीं की अब गुरु नहीं रहे। इसका मतलब है कि गुरु ही गणपति के रूप में प्रकट हो रहे हैं। शंकराचार्य जी ने भी पतंजलि योग सूत्र के अपने भाष्य में इस समाधि स्थानांतरण के बारे में बताया है। मतलब समाधि एक चित्र से दुसरे चित्र पर लग जाती है। शायद यह इसलिए भी हो रहा होगा क्योंकि मेरे गुरु स्वयं एक विख्यात मूर्तिपूजक थे और मेरी आदत भी एक छोटी सी कांसे की गणपति की मूर्ति को प्रतिदिन नहलाने, तिलक लगाने और सूर्याघ के समय उसे सूरज दिखाने की रही है। हालांकि मैं ज्यादा औपचारिकताओं के चक्कर में कभी नहीं पड़ा हूं।

देव गणपति देवों के देव हैं। वे किसी भी अनुष्ठान में सबसे पहले पूजे जाते हैं। उनका शरीर ही अपने अंदर अनगिनत शिक्षाओं को समेटे हुऐ है। वे गजब के लेखक हैं, जो कभी लिखते हुऐ थकते नहीं है। यह इसीलिए है क्योंकि वे हाथी की तरह मस्त रहते हैं, मतलब ज्यादा प्रतिक्रियात्मक नहीं हैं। कहते हैं कि सारे पुराणों को कलमबद्ध करने वाले वही थे, महर्षि वेदव्यास तो सिर्फ मुख से बोलते थे। उनकी लंबी बढ़ी सूंड आज्ञा चक्र से सीधी नीचे जाने वाली आगे की नाड़ी की परिचायक है। वह सूंघने की उत्तम शक्ति की परिचायक है। दारअसल गंध से ही लोगों के बीच खासकर प्रेमी प्रेमिका के बीच आकर्षण पैदा होता है। यह बात वैज्ञानिक रूप से भी सिद्ध है। पर हमें इस बात का पता नहीं चलता। आकर्षण का बीज गंध में ही छिपा होता है। इसीलिए तो शादी के मामलों में उत्तम सुगंधित अनूलेपनों का प्रयोग किया जाता है। इससे ना चाहते हुऐ भी आकर्षण पैदा हो जता है। और यह सभी जानते हैं कि आकर्षण ही कुंडलिनी समाधि का बीज है।

इसी तरह गजानन की सूंड अनासक्ति की भी प्रतीक है। मतलब वह दुनियावी भोगों को चखती नहीं, सिर्फ सूंघती है। यह सूक्ष्म वासना का प्रतीक है। वास या बास शब्द जिससे वासना शब्द बना है, वह गंध के लिए ही प्रयुक्त होता है। वासना दुनियावी झमेलों का सबसे सूक्ष्म रूप है। मतलब योगी गणेश निरंतर साधना के बल से पूर्ण गृहस्थी में स्थित रहते हुए भी इस झमेले को न्यूनतम बना कर रखते हैं। दुनिया में रहते हुए इससे पूरी तरह पीछा छुड़ाना तो संभव नहीं है। पर इससे यह फायदा हो जाता है कि जरूरत पड़ने पर थोड़ी सी अतिरिक्त साधना से इसे नष्ट करना

आसान हो जाता है। जो मुक्ति के लिए जरूरी है। अगर आदमी हर समय स्थूल भौतिकता में डूबा रहेगा, तो उसे आसानी से नष्ट नहीं कर पाएगा।

गणेश जी के बड़े-बड़े कानों का मतलब है कि वे दुनिया से ज्यादा से ज्यादा सूचनाएं ईकट्ठी करते हैं, सबकी सुनते हैं, बोलते कम है। तभी तो इतना कुछ लिख पाते हैं। गजानन को नेतृत्व का देवता भी कहा जता है। इनके बड़े-बड़े कान इसी नेतृत्व क्षमता के परिचायक हैं। एक अच्छा नेता देश दुनिया के बारे में हर तरह की जानकारी इकट्ठा करता है। उससे वह अच्छे से जनता का नेतृत्व कर पाता है। जिस नेता या देश का जासूसी नेटवर्क जितना सशक्त होता है, वह उतना ही सशक्त माना जाता है। एक अच्छा नेता अपने देश या समाज के राज गुप्त रखता है, पर अपने तेज कानों से सबके राज पता कर लेता है।

गणेश के बड़े पेट का मतलब यह नहीं कि उनको मोटापा है। बल्कि इसका यह मतलब है कि वे पेट भरकर लंबी और गहरी सांसें लेते हैं। ऐसी सांसें योग वाली सांसें होती हैं। उनका दायां दांत टूटा हुआ है। इसका मतलब है कि वे अपनी इड़ा और पिंगला नाड़ी मतलब बाएं शरीर और दाएं शरीर को बराबर और संतुलित कर रहे हैं, क्योंकि आम जीवन में शरीर का दायां हिस्सा बाएं से ज्यादा क्रियाशील व सशक्त होता है। इनके सिर के दोनों तरफ के बड़े बड़े, स्पष्ट और बराबर कान भी अपनी तरफ ध्यान खींच कर इड़ा और पिंगला को बराबर कर देते हैं, जो ध्यान साधना के लिए बहुत जरूरी है।

गणपति देवता का चित्र तो मन में बढ़ोतरी कर रहा है। पता नहीं कब जागेगा। जब जागेगा तब सही, क्योंकि दुनियादारी के झमेले में पड़ कर और स्वास्थ्य कारणों से अब तीव्र साधना करने की शक्ति भी नहीं बची है, और साथ में जागृति के प्रति इतना आकषर्ण भी नहीं रह गया है। पर इससे यह जरूर सिद्ध हो जाएगा कि निर्जीव समझी जाने वाली देव मूर्तियां भी आसानी से जागृत हो जाती हैं। मुझे तो वैसे भी इस शास्त्रोक्त उक्ति पर कोई संदेह नहीं है, पर जो मूर्तिपूजा को काफिरों, रूढ़िवादियों और पिछड़ों आदि का काम बताकर जमकर घृणा और नकारात्मकता फैलाते हुए अत्याचार, तोड़फोड़ और खूनखराबा करते हैं, उन्हें जरूर सद्बुद्धि मिल सकती है। इसकी संभावना तो है, पर कम है, कयोंकि जो धारणा बिना सोचे समझे मन में पक्की बैठा ली जाती है , उसे निकालना बहुत मुश्किल होता है।

यह जरुर है कि दुनियादारी के झमेले से ही कुंडलिनी चित्र अपनी पकड़ बनाता है और बढ़ोतरी करता है। पर जब लंबे समय की बढ़ोतरी के बाद उसकी जागृति का समय आता है, तब तक आदमी में बढ़ी हुई आयु, रोग या अन्य वजहों से जागृति लायक तीव्र साधना करने की शक्ति ही नहीं बची रहती। कई बार तो आदमी जीवन के आखिरी समय तक दुनिया में उलझा रहता है और लाख चाहकर भी कुंडलिनी को मुक्तिगामी वेग अर्थात एस्केप विलोसिटी देने के लिए समय और

शक्ति नहीं बचा पाता। इसीलिए कहते हैं कि जितनी छोटी आयु से योग आरंभ कर दिया जाए , उतना अच्छा रहता है।

वैसे तो आदमी कभी भी और किसी भी हालत में अगर दुनियादारी को छोड़कर पूरी शक्ति और निष्ठा से कुंडलिनी साधना में लग जाए तो जागृति में ज्यादा समय नहीं लगता। यह कुछ महीनों से कुछ सालों में हो सकता है। लगने वाला समय इस बात पर निर्भर करता है कि दुनियादारी को कितना छोड़ा है और साधना में कितनी शक्ति और कितने समय को झौंका है। पर ऐसा करना कम ही व्यवहारिक है, अगर व्यवहारिक है तो गिनेचुने लोगों के लिए ही और बहुत कम समय के लिए और बहुत सी अनुकूल परिस्थितियों के साथ ही। इन गिनेचुने लोगों में से कुछ अत्यंत विरले लोग जागृति पा भी जाते हैं। पुराने ज़माने में बहुत से लोगों को इसलिए जागृति मिल जाया करती थी, क्योंकि जागृति उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य हुआ करता था, और वे इसके लिए घरबार तक छोड़कर तप करने जंगल चले जाया करते थे और ज्ञानप्राप्ति के बाद ही घर वापस लौटते थे। शास्त्रों में अधिकांशतः ज्ञान शब्द का ही प्रचलन है। यह कुंडलिनी जागरण ही है, कयोंकि वही असाधारण और प्रत्यक्ष ज्ञान है। साधारण ज्ञान तो दुनियादारी तक ही सीमित है। वह आत्मा की अनुभूति नहीं करा सकता। बेशक वह कितना भी और किसी भी तरह का क्यों न हो। पूरी उम्र भी अगर आध्यात्मिक शास्त्रों के बारे में कोई ज्ञान इकट्ठा करता रहे पर जागृति को न प्राप्त कर सके तो वह पूर्ण या असली ज्ञान नहीं माना जा सकता। है तो कुंडलिनी जागरण भी ज्ञान ही, पर वह अपनी आत्मा का मतलब अपना ज्ञान है। बाकि सभी दूसरे ज्ञान अपने से पराई चीजों के बारे में होते हैं। इसीलिए जागृति को संक्षेप में ज्ञान कहते हैं। शास्त्र मुख्यतः पुराण सभी किस्म के लोगों के हित को ध्यान में रख कर बने होते हैं। उन्हें पता है कि पुराण पढ़ने वाले सभी लोग योगी तो नहीं होंगे। कयोंकि पुराण बने ही सर्वसाधारण के लिए हैं। इसलिए अगर बिल्कुल अनपढ़ आदमी ज्ञान का असली अर्थ न समझ पाए तो कम से कम उसे भौतिक ज्ञान तो समझेगा ही। इससे उसकी भौतिक जिंदगी भी सुधरेगी कयोंकि ज्ञान है तो जीवन है। अब अगर जागृति या कुंडलिनी जागरण लिखा होगा और आम आदमी उसे समझ न पाया तो उसका पढ़ना व्यर्थ चला जाएगा। या हो सकता है कुछ उल्टा ही उसके अवचेतन मन में बैठ जाए। सब अवचेतन मन का खेल है। अगर ज्ञान शब्द अवचेतन मन में बैठ गया तो वह कभी न कभी जागृति तक भी ले ही जाएगा क्योंकि है तो सबकुछ ज्ञान ही। शास्त्रों में और प्राचीन आर्य सभ्यता में ज्ञान के प्रति अप्रतिम समर्पण कुंडलिनी के प्रति समर्पण की पराकाष्ठा ही है। आजकल तो जीवन का मुख्य लक्ष्य दुनियादारी है, फिर जागृति कैसे मिलेगी।

भिन्नभिन्न रूप आकार के देवता इसीलिए बने हैं क्योंकि आदमी के जीवन का माहौल कभी किसी तरह का होता है तो कभी किसी तरह का। इसी तरह किसी व्यक्ति को कोई एक विशेष छवि पसंद होती है, तो किसी दुसरे को कोई दूसरी। ताकि सभी किस्म के लोगों को हर समय

साधना के लिए उपयुक्त देवता उपलब्ध होते रहें, इसीलिए सनातन संस्कृति बहुदेववादी है। बेशक यह इकेश्वरवादी भी है क्योंकि सभी देवता अंततः एक परम ईश्वर की तरफ ही ले जाते हैं।

कुंडलिनी योग का वैज्ञानिक फार्मूला

दोस्तों, दुनिया छोड़ना अर्थात त्याग भी सापेक्ष ही है। कोई अगर दुनिया में पहले ही कर्मों और भोगों से दूर है, तो उसका दुनिया छोड़ना भी ज्यादा प्रभावी नहीं होगा ,क्योंकी उसकी दुनिया तो पहले ही छूटी हुई है। पर अगर कोई भोगों और कर्मों में भरपुर उन्मुख है, तब उसका हल्का सा एकांतवास भी दुनियादारी का महान त्याग बन जाएगा। अगर उसमें वैराग्य का बीज या अनासक्ति का भाव भी उसकी दुनियादारी के समय लगातर पल रहा है, तब तो उसके लिए कुंडलिनी योगसाधना और ज्यादा सरल और फलदाई हो जायेगी।

ईजीनेस एंड सक्सेस इन कुंडलीनी योग इज डायरेक्टली प्रोपोर्शनल टू द प्रोडक्ट आफ मेडिटेशन टेक्नीक, पास्ट वर्ल्डलिनेस, स्ट्रेंथ ऑफ सीड आफ डिटैचमेंट विद दैट एंड द स्टरेंथ आफ रेनंसिएशन आफ्टरवार्ड्स!

K∝md*pw*sod*r*
K=G*md*p*sod*r*

K का मतलब है, कुंडली योग की गुणवत्ता।

md का मतलब मतलब मेडिटेशन टेक्नीक है। ये अनेक प्रकार की हैं। इनमें तंत्र सहायित चक्र साधना सर्वोत्तम तकनीक मानी जाती है, फिर भी सबके अपने अपने स्वभाव होते हैं और अपनी अपनी रुचियां होती हैं।

pw का मतलब है पास्ट वर्ल्डलीनेस, मतलब त्याग से पहले की दुनियादारी की मात्रा व गुणवत्ता।

Sod का मतलब है, सीड आफ डिटैचमेंट मतलब अनासक्ति का भाव (बीती दुनियादारी के समय में)।

R का मतलब है रेनअनसिएशन आफ्टरवार्ड्स, मतलब दुनियादारी के बाद के संसारत्याग की मात्रा व गुणवत्ता।

G प्रोपोर्शनअलिटी का कांस्टेंट है, जो गुरु है। गुरु ज्यादा मजबूत, तो कुंडलिनी योग भी ज्यादा मजबूत।

इस तरह से हम केवल भौतिक आयामों को ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक आयामों को भी वैज्ञानिक इक्वेशनों व फार्मूलों से माप सकते हैं। वैज्ञानिक तो यह पहले ही कह चुके हैं कि सांसारिक

क्रियाशीलता और संसार त्याग के बीच जितना ज्यादा अंतर होता है, अचानक या शीघ्र जागृति की संभावना भी उतनी ही ज्यादा होती है।

देखा जाए तो सभी लोग खासकर योगी लोग गणेश की आकृति में ही होते हैं। जब जीभ को तालु से छुआया जाता है, तब आज्ञा चक्र से नाभि तक आगे के चक्रों से होते हुए नाड़ी नाक के माध्यम से जुड़ जाती है। यही गणेश की सूंड है। इसी तरह जब योगिक सांसों के दौरान प्राण इड़ा से ऊपर चढ़कर चेहरे की बाईं तरफ कंपन व हलचल पैदा करते हैं, तो वह गणेश का बड़ा सा बांया कान है। जब प्राण पिंगला की तरफ जाते हैं, तो दाएं चेहरे पर सिकुड़न बढ़ाते हैं, जो गणेश का दायां बड़ा कान है। जब मुख का बायां कोना प्राणों से अजीब सा या विकृत सा खुलता है, जिससे मुंह के किनारे वाला लंबा नुकीला कैनाइन दांत साफ नजर आता है, तो वह गणेश का बायां दांत है, और जब दायां कोना खुलता है, तब दायां दांत होता है।

कुंडलीनी योग में डाटा का महत्व

मित्रों! बहुत दिनों से अपने लेखों को व्यवस्थित करने में व्यस्त था। फिर मैंने गजानन को अपनी सूंड को जलकुंड में डुबाते हुए, उससे शक्तिरूपी जल को ऊपर चूसते हुऎ और उसे पीकर और उससे अपने को नहला कर अपने को तारोताज़ा करते हुऎ देखा। इससे मेरे अंदर भी तनिक अतिरिक्त शक्ति का संचार हो आया। फिर सोचा कि लिखूं क्या। कोई विशेष अनुभव तो बचा नहीं। साधारण अनुभव तो बहुतेरे थे, पर उन्हें लिखने का साहस नहीं हो रहा था। फिर सोचा कि जो मन में आएगा उसे लिखता जाऊंगा। कई बार लेखन खुद ही अनुभव को पैदा कर देता है।

दोस्तो, लेख में डाटा होता है। डाटा में बहुत शक्ति होती है। डाटा निर्जीव नहीं बल्कि सजीव होता है। सारे धर्म डाटा पर ही आधारित हैं। सभी धर्मों की एक विशेष पुस्तक होती है, उसमें लेख के रूप में डाटा ही होता है, टेक्स्ट डाटा। उन पुस्तकों ने न जाने कितने समझौते करवाए हैं, कितनी लड़ाईयां करवाई हैं; कितनी सभ्यताएं बनाई हैं, और कितनी ही सभ्यताएं नष्ट की हैं। अन पुस्तकों ने न जाने कितने लोगों की जिंदगियां बनाई हैं, और न जाने कितनों की जिंदगियां बरबाद भी की हैं। उन पुस्तकों ने न जाने कितने महापुरुष पैदा किए हैं, और न जाने कितने ही अत्याचारी राक्षस भी पैदा किए हैं। यह सब डाटा का ही कमाल है। एक पत्थर, लकड़ी की तरह निर्जीव वस्तु इतने सारे काम नहीं कर सकती। न ही सीमित चेतना वाला अकेला व्यक्ति इतना कुछ कर सकता है। यहां तक कि सारी दुनिया के लोग इकट्ठे होकर भी इतना कुछ नहीं कर सकते। इससे डाटा की अमित चेतना शक्ति का अहसास होता है। सारे लोग अगर इकट्ठे हो भी जाएं तो भी उन्हें नियमबद्ध ढंग से चलाने के लिए एक कार्य योजना तो बनानी ही पड़ेगी। वह विस्तृत कार्ययोजना किसी के दिमाग में नहीं रखी जा सकती। अगर रखी भी जाए तो भी उसे बोलकर सबको बारी -बारी से समझाना लगभग असंभव ही है। उसे डाटा के रूप में रखना ही पड़ेगा। टेक्स्ट, ऑडियो और वीडियो किसी भी रूप में रख लो, सब डाटा ही है। इस डाटा को सभी एक साथ एक्सेस कर सकते हैं। इससे परिणाम प्रभावी व त्वरित मिलता है। अगर बोलकर सब को समझाने लगें तो जितने में नए लोगों को समझाया जता है, उतने में पुराने लोग उसे भूल जाते हैं। आदमी के मरने के बाद भी वह उसके डाटा के रूप में जिंदा रहता है और सदियों तक दुनिया को निर्देशित करता रहता है। मतलब एक आदमी के जीवन के डाटा में उस जीवित व्यक्ति से भी ज्यादा चेतना शक्ति होती है। एक आदमी का डाटा उसके जैसे अनगिनत आदमियों को पैदा कर देता है। डाटा खासकर टेक्स्ट डाटा लगभग अमर ही है। बहुत से धर्मों के लोग सैकड़ों और हजारों सालों पहले जन्मे तथाकथित महापुरुष लोगों के जीवन के डाटा से आज तक निर्देशित होते आ रहे हैं।

कुंडलिनी योग जैसे गहन विषय के लिए तो डाटा का सर्वाधिक महत्व है। इसे सीखने में लगभग पूरी उम्र लग जाती है। अधिकांश लोगों को तो जीवन के आखिरी दौर में योगसिद्धि मिलती है। उस समय उनमें वह शक्ति नहीं बची रहती जिससे वे उसका आम जनमानस में प्रचार कर सके।

और योग चीज ही ऐसी है कि यह आदमी को प्रचार से दूर एकांत की ओर ले जाती है। ऐसे में योगी के पास गुमनामी में जीते हुए टेक्स्ट डाटा छोड़कर दुनिया से जाने के इलावा और कोई चारा नहीं होता। इसी से तो वेदपुराण और अनगिनत शास्त्र बने हैं। उनमें लेखकों के नाम नहीं होते मतलब वे गुमनामी में लिखे गए थे। असली भी वही हैं। प्रचार के लिए बनाए गए कालांतर के शास्त्र तो उनकी नकल की तरह लगते हैं मुझे। हालांकि डाटा का काम तो वे भी बखूबी निभा रहे हैं। अगर योगसाधना से जागृत किए हुए देवी देवताओं को डाटा के रूप में सुरक्षित न रखा गया होता तो कालांतर के अनगिनत योगी कैसे उन पर ध्यान लगाकर उनसे मुक्ति हसिल कर पाते। अगर मुझे योग से संबंधित ऑनलाइन टेक्स्ट डाटा न मिलता, तो मैं भी कैसे उच्च साधना कर पाता।

डाटा एक प्रकार से गुरु ही है। पर हर चीज की तरह इसका भी दुरुपयोग हो सकता है। कोई आदमी गलत डाटा प्राप्त करके गलत चीजें भी सीख सकता है। कोई आदमी सही डाटा का भी गलत अर्थ निकाल सकता है। इसलिए डाटा को हसिल करने से ज्यादा डाटा को परखना जरूरी हो गया है, खासकर आज के समय में जब सभी लोग असीमित डाटा के समुद्र की लहरों में गोते लगा रहे हैं, कि क्या सच में यह लाभकारी है या क्या यह हानिकारक तो नहीं है?

डाटा भौतिक दुनियादारी को तो सुधारता ही है, आध्यात्मिक दुनियादारी को भी संवारता है। जब डाटा हैंडलिंग की मदद से भौतिक जीवन सुव्यवस्थित हो जाता है, तब आदमी को पर्याप्त अतिरिक्त समय मिल जाता है, जिसमें वह योगसाधना कर सकता है। जब आदमी के मस्तिष्क का काम कृत्रिम बुद्धिमत्ता युक्त क्लाउड कम्प्यूटिंग से होने लगता है तो स्वाभाविक है कि उसका मस्तिष्क काम के बोझ से मुक्त हो जाता है। मस्तिष्क की जो शक्ति पहले याद रखने में, कार्यय ोजना बनाने में, और गुलामों की तरह नौकरी करने में व्यय हो रही थी, वह अब मुफ्त में उपलब्ध हो जाती है। उस शक्ति से कुंडलिनी योग को आसानी से सिद्ध किया जा सकता है। मतलब आदमी उसी आदिम युग की तरफ जा रहा है जब दिमाग पर काम और तनाव का बोझ नहीं होता था। क्योंकि उसी दिमाग से योग संभव है और योग ही मनुष्य जीवन का मुख्य लक्ष्य है। अंततः विकास जाएगा तो कुंडलिनी जागरण की ही दिशा में, चाहे इसे जो मर्जी नाम दो या जो मर्जी रूप दो। आदमी जितना मर्जी चाहे इससे मुंह मोड़ ले पर अंततः पहुंचेगा यहीं। यह दुनिया गोल है, आदमी जहां से चलता है अंततः वहीं पहुंच जाता है।

देवता का ध्यान पापों को नष्ट करता है। देवता का मतलब ही प्रकाशमान गुणों वाला है। देवता दिव शब्द से बना है, जिसका अर्थ प्रकाश होता है। प्रकाश उच्च कोटि के मानवीय गुणों में होता है। मतलब देवता को महामानव जैसा मान सकते हैं। इसीलिए देवता की मूर्ति साफ, और सत्वगुणों से भरी हुई होती है। चित्र भी वैसा ही होता है। शांत, दयालु, सत्यवादी, मैत्रीपूर्ण आदि गुणों से भरपूर। एक विकृत और अमानवीय चित्र के ध्यान से तो लाभ की बजाय हानि संभव है।

वैसे जब ध्यान से सत्वगुण बढ़ता है तो मन में देवता की सौम्य मूर्ति खुद ही बन जाती है, बेशक वह बाहर कैसी ही क्यों न हो। इसीलिए तो देवता की प्रतिमा, पिंडी, आदि का कोई विशेष मानवीय रूप नहीं होता बल्कि यह एक सुवर्ण जैसी धातु की पत्ती या पत्थर की शिला होती है , पर उसके निरंतर ध्यान से मन में मानवीय देवता का ही सौम्य चित्र बनता है। यह इसलिए क्योंकि ध्यान से सत्वगुण बढ़ता है और सत्वगुणी या सौम्य शरीर एक आदमी का ही है, किसी पशु या राक्षस या निर्जीव वस्तु का नहीं। बेशक पशु और बेजान चीजें ध्यान लगाने में सहायक हों। पाप तमोगुण रूप है, जो सतोगुण रूपी ध्यान से नष्ट होता है, जैसे अंधकार प्रकाश से नष्ट होता है। वैसे तो पाप ध्यान की शक्ति से नष्ट हो रहा होता है, पर हमें लगता ऐसे है कि उसे देवता नष्ट कर रहा है। एक ग्वाला अपनी भैंस से बहुत प्यार करता था। इससे उस पर उसका ध्यान लग गया। धीरे धीरे उसकी चमक बढ़ती गई और ध्यान में उजली, शांत और सतोगुणी हो गई, सभी मानवीय गुणों से भरपूर। उसका ध्यान पक्का होने से उसकी समाधि लग गई और वह मुक्त हो गया। काम तो सारा ध्यान ने किया, भैंस ने थोड़े ही कुछ किया। इसीलिए पतंजलि अपने अष्टांग योग में लिखते हैं कि यथाभिमत ध्यानात वा। अर्थात जिस मर्जी मनपसंद चीज पर ध्यान लग जाए, उससे समाधि और मुक्ति मिलती ही है। पर ज़्यादातर योगियों की तरह मुझे तो देवता का ध्यान ही अच्छा लगता है, क्योंकि वे अध्यात्म वैज्ञानिक रूप से बनाए होते हैं, जिनसे अन्य कुंडलिनी लाभ भी मिलते हैं।

कुंडलिनी योग बनाम आजादी

दोस्तों, आजकल मेरा ज्यादातर समय यात्राओं में गुजरता है। यात्राओं के बीच में ही कुछ न कुछ लिखता रहता हुं। मनोरम नजारे होते हैं प्रकृति के। किस्म किस्म के पशु पक्षी अपनी अपनी मर्जी की दुनिया को समेटे हुए आजादी से विचरण कर रहे होते हैं। बेशक उनमें दिमाग कम है, पर आजादी उन्हें भरपूर मिली है। बेशक उनको सुरक्षा भी कम मिलती है। वे आजादी के महत्त्व को भलीभांति पहचानते हैं। इसीलिए तो उन्हें पालतु बनाना लगभग असंभव सा ही होता है। वे समझते हैं कि मनुष्य समाज में बेशक उन्हें बेहतर विकास और सुरक्षा व्यवस्था मिले पर जंगल जैसी आजादी नहीं मिल सकती। विकास और सुरक्षा के साथ सामाजिक बंधन, तनाव, और गुलामी जैसे हानिकारक दोष बिन बुलाए मेहमानों की तरह खुद ही चले आते हैं।

कितना अच्छा हो कि अगर मनुष्य जैसा दिमाग और जंगली जानवर के जैसी स्वतंत्रता एकसाथ मिल जाए। यह तो सोने पे सुहागे जैसी बात हो जाएगी। इससे विकास और सुरक्षा के साथ आजादी भी पूरी प्राप्त होती रहेगी। दोस्तों, जब हम बचपन में होते थे, तब हमारे घर में बहुत से पालतु पशु जैसे गाय, भैंसें, कुत्ते, बिल्लियां आदि हुआ करते थे। हमारे पूर्वजों को पशुओं की स्वतंत्रता की चिंता सबसे ज्यादा हुआ करती थी। सूरज निकलने के साथ ही उन्हें खूंटों से खोलकर हम बच्चों के सुपुर्द कर दिया करते थे कि उन्हें जंगल में चरा कर लाओ। हम सभी बच्चे अपने अपने झुण्डों को पेड़ की पतली टहनियों से हांकते हुए जंगल में इकट्ठे होकर खूब खेल तमाशा किया करते थे। कभी ऊंची पहाड़ी पर चढ़कर खड़ी चट्टानों के बीच में बने छोटे छोटे केबिनों में बैठ जाते ताकि बारिश में भीगने से भी बचाव हो सके। कभी गिरे पड़े पेड़ की टहनी पर चढ़कर झूला झूलते। कभी तालाब में नहाने घुस जाते। उस तालाब के एक कोने में बने एक सुराख से झांकता हुआ एक सर्प हमें अक्सर दिखाई देता था। पर वह कभी बाहर नहीं आता था। उसे हम देवता की तरह मानते थे। बच्चे तो बच्चे ही होते हैं। कहां डरने वाले और नहाने से कहां रुकने वाले। आज वह दृश्य याद करके रूह कांप जाती है। एक बार एक शरारती किस्म के बच्चे ने उस सर्प के बिल के ऊपर पड़ी चट्टान से ऊंची छलांग लगाते हुए तालाब में डुबकी लगाई। वह बड़ी देर तक बाहर नहीं निकला। हमें लगा कि वह दम घुटने से मर गया होगा। हम सभी चिंता में पड़ गए। तभी वह बाहर निकला, वह भी बिल्कुल तरोताजा, जैसे कि कुछ हुआ ही न हो। मुझे आजतक हैरानी होती है कि वह कैसे हुआ। क्या वह सांप सच में कोई देवता था ! वैसे मैं एक अंधविश्वासी नहीं हूं। कई मामले संयोगवश भी हो जाते हैं। इसी तरह, एक बार तो सभी बच्चे एक कोबरा नाग के पीछे दौड़ गए थे और उसे लाठी डंडे से परेशान कर रहे थे। वह नाग भी बचाव में अपना फन ऊंचा उठाता और गुस्से में जोर की फुंकार मारता। तब वे थोड़ा पीछे हट जाते। मैं खतरे को भांप गया था और मुझे उस सांप पर दया भी आ रही थी। मेरे बारंबार समझाने से वे मुश्किल से मान गए और उसे छोड़ दिया। इसी तरह की अजीबोगरीब किस्म की अनेकों शरारतें किया करते जिन्हें यहां लिखा भी नहीं जा सकता।

दोस्तो, यात्राओं के दौरान मुझे एक झील में बने एक छोटे से सुंदर टापू के बारे में पता चला। वहां एक सुंदर विश्राम गृह भी है। वहां साहसिक पर्यटक लोग अक्सर रात्रि निवास के लिए जाकर रुकते हैं। उसे कुछ लोग नागलोक भी कहते हैं। वहां पर जहरीले कोबरा नागों की भरमार है। वे आपको अक्सर वहां रेंगते हुए मिल जाएंगे, एक दो की संख्या में नहीं पर अनेकों। और तो और वे सर्दियों में भी धूप सेकते हुए मिल जाएंगे। वैसे आमतौर पे सांप सर्दियों में नहीं दिखते क्योंकि वे ठंड से बचने के लिए गहरे सुराखों में छिप जाते हैं। उस विश्रामघर में डर के मारे कोई कर्मचारी भी नहीं जाना चाहता। इसीलिए वहां तीस सालों से एक ही स्थानीय व्यक्ति बतौर कर्मचारी नियुक्त हैं। वे ज्यादातर समय वहां रात दिन अकेले ही रहते हैं, क्योंकि पर्यटक तो कभी कभी आते हैं। और वैसे भी, साहसी पर्यटक तो कम ही होते हैं। वे अब वृद्ध भी हो चुके हैं। उनके अनुसार तीस सालों के इतिहास में विश्राम गृह समेत उस टापू में किसी की भी मौत सांप काटने से नहीं हुई है। यह भी आश्चर्य ही है। शायद सांप डर के मारे ही काटते हैं। क्योंकि उस द्वीप पर उन्हें स्वतंत्र माहौल मिलता है, इसलिए वहां डरते नहीं। यदि कोई सर्प विश्राम घर के अन्दर घुस जाए तो वे उसे नंगे हाथों से पूंछ से उठाकर दूर फेंक देते हैं। शायद अभ्यस्त हो चुके हैं। विश्राम घर की रखवाली में जंगली मोर भी उसके आसपास घूमते रहते हैं। उनके डर से भी सांप दूर रहते हैं। शायद पशु पक्षी भी अपने कर्तव्यों को पहचानते हैं। मुझे कईयों ने वहां चलने, वहां घूमने और वहां रुकने के लिए प्रोत्साहित किया पर सच कहूं तो मेरी कभी हिम्मत नहीं हुई। अपनी झूठी शेखी क्यों बघारनी।

दोस्तो, इसी तरह बचपन में कभी हम पहाड़ी की चोटी पर बने गुमनाम से खेतों से मक्की चुरा कर लाते और जंगल में ही आग जलाकर उन्हें भुट्टे बनाकर खा जाते। इससे एक अच्छी सी कैंप फायर पार्टी हो जाती। कभी शहर गए लोगों के बगीचे से केले चुराकर खा जाते। कभी घर से नारियल, गुड़ आदि चुराकर जंगल को ले जाते और वहां सब मिलकर दावत मनाते। कभी कुछ ज्यादा शरारती बच्चे जानबूझकर अपने पशुओं को कांटों की बाड़ लंघवा कर दूसरों की घासनियों में घुसाते ताकि उन्हें एक जगह ही भरपूर घास मिलने से उन्हें लागतार हांकना न पड़े और वे दूध भी ज्यादा दें। कभी बैलों को आपस में लड़ाकर अच्छा खासा मनोरंजन कर लेते। एक बच्चा अपने बैल को सबसे बड़ा चैंपियन मानता था और बड़े गर्व से उसकी बड़ाई किया करता था। एक दिन मेरे दोनों बैलों ने मिलकर उसकी बादशाहत ध्वस्त की। बेशक वह बच्चा चीटिंग चीटिंग करता रहा पर जो होना था वह तो हो गया था। उसके बैल ने मेरे दोनों बैलों की गुलामी स्वीकार कर ली थी। उन दोनों बैलों में बहुत ज्यादा आपसी प्यार होता था। वे दोनों सगे भाई थे। छोटा बैल बहुत ताकतवर था और हर जगह उसका डंका बजता था। पर वह बड़े भाई का सम्मान करते हुए उससे डरा हुआ रहता था और कभी उसकी तरफ आंख नहीं उठाता था। बेशक बड़ा बैल शरीफ और कमजोर था और छोटा बैल उस पर हमला कर रहे बैलों के ऊपर बिजली की तरह टूट पड़ता था। फिर उसका साथ पाकर बड़े बैल में भी लड़ने की हिम्मत आ जाती थी। उनकी जोड़ी मुझे बिल्कुल राम लक्ष्मण की जोड़ी की तरह लगती थी। छोटे बैल को बड़ा बैल ही नियंत्रण में रखता था क्योंकि अति हर जगह खराब होती है। छोटा बैल अक्सर आदमियों को भी मारने दौड़ पड़ता था। उस

समय बड़ा बैल भी उसे मारने दौड़ पड़ता था जैसे कि उसे समझा रहा हो। मुझे लगता है कि ये ऐसे ही इशारों से आपस में बातें करते हैं।

दोस्तो, कहने का मतलब है कि स्वतंत्रता के साथ आपसी प्यार और सहयोग से भरे माहौल में समय गुजार कर ही कुंडलिनी अच्छे से विकसित होती है, जिसे समय आने पर अतिरिक्त बल देने से वह जाग भी जाती है। स्वतंत्रता सबको इसलिए अच्छी लगती है क्योंकि आत्मा परम स्वतंत्र है और हर कोई आत्मा को पाना चाहता है। भौतिक स्वतंत्रता का असली सदुपयोग यही है कि उससे आध्यात्मिक स्वतंत्रता मिल सके। नहीं तो कोई फायदा नहीं। जो तनिक फायदा दिखता है, वह भ्रम से दिखता है। वह क्षणिक अर्थात अस्थायी फायदा है। इस अनंत काल की जीवन धारा में अस्थायी चीज का कोई अस्तित्व नहीं है, बेशक वह चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न दिखती हो। अगर आजादी मिलने पर भी कुंडलिनी योग नहीं किया तो वह आजादी व्यर्थ है। उससे अच्छी तो वह गुलामी है जिसमें कुंडलिनी योग करने का मौका मिलता हो। बेशक वह बाहर से गुलामी दिखे पर असल में वह परम स्वतंत्रता की ओर ले जा रही होती है। इसीलिए तो पुराने ज़माने में अध्यात्म जिज्ञासु लोग कठिन अनुशासन का पालन करते हुए योग्य गुरु की संगति में रहते थे और उनके बताए हुए मार्ग पर चलते हुए योगसाधना करते थे। बाहर से तो वे गुरु की गुलामी सी करते हुए दिखते थे, पर वास्तव में वे सबसे अधिक या कहो परम स्वतंत्र होते थे। योगी लोग ध्यानयोग से उत्पन्न आत्मा की स्वतंत्रता के बल से ही सारी उम्र एक निर्जन गुफा की कैद या गुलामी में योगसाधना करते हुए बिता देते थे। कई बार जो दिखता है, वह सत्य नहीं होता, और जो सत्य होता है वह दिखता नहीं है। योग और मानवता वाली गुलामी कई बार इसलिए अखरती है क्योंकि उसमें प्रेम की कमी महसूस होती है। इसका अर्थ है कि प्रेम मानवता का सर्वप्रमुख अंग है। साथ में यह भी कि गुलामी की भावना को प्रेम से कम किया जा सकता है। एक तरह से यह कहा जा सकता है कि बच्चे, पशु और अधिकांश महिलाएं सिर्फ प्यार के लिए गुलामी स्वीकार करते हैं। साथ में, इसीलिए तो तांत्रिक योग को सर्वोत्तम योग माना जाता है, क्योंकि इसमें योग, प्रेम के साथ मिश्रित होता है। इससे आम जनमानस में उबाऊ और बंधक जैसा समझा जाने वाला योग परम मनोरंजक और परम स्वतंत्र बन जाता है। दोस्तो, इस पोस्ट को पूर्ण रूप से समझने के लिए इसी ब्लॉग की अगली पोस्ट,"कुंडलिनी योग बनाम जातीय व्यवस्था" भी पढ़ लेनी चाहिए। इस पोस्ट को पूरी तरह से समझने के लिए कृपया इस ब्लॉग की पिछली पोस्ट "कुंडलिनी योग बनाम आजादी" पढ़ें।

कुंडलिनी योग बनाम जातीय व्यवस्था

मित्रो, गुलामी में प्यार और सहयोग का माहौल नहीं होता, इसीलिए गुलामी को सबसे हेय दृष्टि से देखा जाता है। सुख सुविधाओं वाली गुलामी एक सोने के पिंजरे की तरह लगती है मुझे। शायद इसीलिए इतिहास आजादी के लिए संघर्ष की गाथाओं से भरा पड़ा है। असली और टिकाऊ विकास वही लगता है मुझे, जो परस्पर प्रेमभाव, सहयोग और स्वतंत्रता के साथ हो। आज के युग में मानव प्रबंधन दक्षता मुझे इसी में लगती है कि मानवीय स्वतंत्रता और मानवीय विकास में संतुलन कैसे रखा जाए। स्वतंत्रता के साथ मानवीय शब्द मैने इसलिए जोड़ा क्योंकि स्वतंत्रता भी असीमित नहीं हो सकती। इसे मानवता अर्थात योग के दायरे में रहना ही पड़ेगा। आजादी अगर घृणा, लूटप ाट, हिंसा, बलात्कार, धार्मिक और जातीय भेदभाव, और जेहाद जैसे कुकृत्यों के लिए मांगी जाए तो उससे अच्छी वह गुलामी है जिसमें मानवता पनपती और फलती फूलती हो। ऐसी आजादी तो काल्पनिक या आभासी है, और वास्तव में गुलामी से भी बड़ी गुलामी है, क्योंकि ऐसे कुकृत्य आदमी को जन्म मरण के बंधन रूपी परम गुलामी की तरफ ले जाते हैं। आपको पता ही होगा कि ऐसी आजादी कहां कहां मांगी जाती है। हम विस्तार में जाकर वेबसाइट के मूल विषय से भटकना नहीं चाहते और न ही अपने ऊपर पक्षपाती होने का झूठा ठप्पा लगवाना चाहते हैं। इशारों में कहें तो बांग्लादेश को ही देख लो। वहां के बहुसंख्यक लोगों ने कैसे अल्पसंख्यकों पर अत्याचार करने के लिए ही शेख हसीना सरकार से आजादी पाई है, यह सबके सामने है। इसी तरह विकास भी मानवता की हद में ही रहना चाहिए। प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग जैसी समस्याएं विकास के द्वारा मानवता को लांघने से ही पैदा हो रही हैं।

मुझे लगता है कि प्रेमभाव स्वतंत्रता की कमी का पूरक है। एक पशु प्रेमभाव से बंधा होने के कारण ही प्रतिदिन अपने खूंटे के पास पहुंच जाता है। अगर उसे मालिक के मन में प्रेमभाव न महसूस हुआ करता तो वह प्रतिदिन खूंटे का विरोध किया करता और हर समय मुक्त होकर जंगल में भागने की फिराक में रहता। पशु गहराई में छिपा प्रेमभाव भी समझ जाते हैं। अगर उन्हें मारो भी, तो भी वे उसके आधार में छिपे प्रेम को समझ जाते हैं। प्रेम का यही कमाल है कि वह औरों से अपनी गुलामी को बिना किसी जोर जबरदस्ती से करवा लेता है। मीरा और गोपियां कृष्ण के प्रेम में गुलाम थीं, तो रतनो देवी बाबा बालक नाथ के प्रति मातृभाव की गुलाम थी। मेरे बुजुर्गों के समय मेरे घर में तथाकथित निम्न वर्ग के श्रमिक, गुलामी जैसी करते हुए दिखते थे। वे सुबह दरवाजे के नजदीक पहुंचते ही दरवाजे की दहलीज का और परिवारजनों का हंसमुख होके प्रेमभाव से अभिवादन करते और मेरे बुजुर्ग भी प्रेमभाव से उसका उत्तर देते। वे अलग बर्तन गिलास आदि का प्रयोग करके उन्हें धोकर यथास्थान रखते। जिस स्वच्छ और पौष्टिक खाद्य पेय का प्रयोग स्वामी करता, उसे ही सेवक को अपने जैसा समझते हुए उपलब्ध करवाया जाता। वे अपना काम पूरे श्रद्धाभाव, पूरी ईमानदारी और तत्परता से बिना लापरवाही के करते। जिस भी काम का उन्हें यथायोग्य और प्रेमयुक्त आदेश मिलता उसे प्रसन्नता और शालीनता से स्वीकार करते हुए उसे

पूरा करने में जुट जाते। ऐसा नहीं था कि उनसे ऐसा जबरदस्ती करवाया जाता था। बल्कि वे उसे मालिक के द्वारा प्रदर्शित प्रेमभाव के बल से खुद ही वैसा करते थे। यही तो प्रेम का कमाल है। दअरसल प्रेमभाव से आदमी में हर प्रकार का अहंकार भाव नष्ट हो जाता है, स्वामीपन का अहंकार भाव भी। इससे उसके मातहत को यह लगता है कि वह अपना काम स्वामी के लिए नहीं बल्कि प्रेम के लिए कर रहा है। और प्रेम तो ईश्वर का रूप है ही। मतलब वह ईश्वर के लिए काम कर रहा है। इससे बड़ा कर्मयोग क्या हो सकता है, वह भी अनायास ही और हंसी खुशी के साथ भी। ऐसी प्रेममय संस्कृति हर जगह थी। बाद में इसे गलत समझा गया। इसकी तुलना अन्यान्य जगत में प्रचलित गुलामी से की गई। जातिवाद, छुआछूतवाद आदि पता नहीं किन किन शब्दों और उनसे जुड़ी कुत्सित धारणाओं से इसे कलंकित करने का प्रयास किया गया। मुझे तो लगता है कि ज्यादातर मामलों में यह नासमझी या विकृत समझ से खुद ही हुआ। जानबूझकर दुष्प्रचार करने वाले तो मुट्ठी भर लोग ही थे जिनका अपना निजी स्वार्थ विभिन्न वर्गों के बीच वैरविरोध पैदा करने के साथ जुड़ा हुआ था। जातीय भेद और रंगभेद में समानता नहीं है। जातीय व्यवस्था में निम्न जाति के बहुत से लोग भी अपनी आत्मा को परिष्कृत करके महान योगी और संत बने हैं, जिनका सम्मान उच्च जाति के संतों से भी ज्यादा किया गया है, क्योंकि उन्होंने बहुत छोटे दर्जे से शुरु करके बहुत बड़ी उपलब्धि हासिल की है। इस व्यवस्था में आत्मा के रंग को अहमियत दी जाती है, शरीर के रंग को नहीं। वैसे अपवाद और विकृत धारणा जैसे हर जगह है, वैसे ही इसमें भी है। मैं सिर्फ़ मूल अवधारणा और सिद्धांत की बात कर रहा हूं। इस दुनिया में दूध का धुला कोई नहीं है। अन्य संस्कृतियों की गुलामी वाली अवधारणा हो या कुछेक धर्मों की गुलामी वाली अवधारणा हो, दोनों ही प्रेम से नहीं, बल्कि नफरत से भरी थीं, अत्याचारों से भरी थीं। एक विशेष किस्म की अवधारणा तो इससे भी खतरनाक थी, क्योंकि उसके साथ धर्म भी मिला दिया गया था। इसी वजह से इतिहास उनके द्वारा औरों के प्रति खासकर शांतिप्रिय धर्मों के प्रति द्वेष से भरा पड़ा है। हम यह नहीं बोल रहे कि ऐसा हमेशा हुआ ही होगा, पर कर्मों का बीज अवधारणा में ही होता है। मतलब अगर अवधारणा गलत हो, तो उससे गलत काम भी हो ही सकते हैं। जरूरी नहीं कि वे हों ही। देखो, अपवाद तो हर जगह होते हैं। आर्यन संस्कृति में भी गुलामी विकृत अवधारणा वाली रही होगी कई मामलों में, और अन्यान्य संस्कृतियों में भी कई जगह गुलामी मानवीय अवधारणा वाली रही होगी। इसी तरह कुछ छिटपुट मामलों में विशेष धर्म भी काफिरों और अन्य विधर्मियों के प्रति नरम रुख रखते होंगे। पर अगर विस्तृत परिपेक्ष्य में देखें तो दोनों किस्म की संस्कृतियों और धर्मों में गुलामी की मूल अवधारणा एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत लगती है। कहीं पर धर्म में ही लिखित विकृत अवधारणा दर्ज है, तो कहीं यह बिना लिखित रूप के ही आम संस्कृति में या खून में विद्यमान है। हालांकि लिखित अवधारणा भी समय और अभ्यास के साथ खून में प्रविष्ट हो ही जाती है। कई धर्मों के मूल में विकृत अवधारणा नहीं है, पर उन्हें मानने वाले लोगों की संस्कृति की छलकपट से सौदेबाजी की अवधारणा उनसे मिश्रित हो गई है। ऐसा नहीं कि आर्यन संस्कृति इससे अछूती है। रामचरितमानस के एक दोहे और मनुस्मृति जैसे धर्मशास्त्रों के कुछ श्लोकों में और रामायण के एक श्लोक में जो विकृत अवधारणा का हवाला

दिया जाता है, उसे अपवाद कहा जा सकता है। वह पूरे संस्कृत साहित्य का नगण्य सा अंश है। इसे संस्कृत साहित्य की मूल अवधारणा नहीं कहा जा सकता। इसे तो जुबान का फिसलना भी कह सकते हैं। यह उन विशेष धर्मों की तरह नहीं है जहां विकृत अवधारणा को बारंबार और जानबूझ कर और स्पष्ट रूप में लिखा गया है, ताकि वह विकृत अवधारणा मन में अच्छे से बैठ जाए। जरूर आज के सभ्य समाज में इन सबको मिटा दिया जाना चाहिए क्योंकि बेशक इनका मूल अर्थ कुछ और हो पर मूर्ख लोग तो इन्हें अक्षरशः सत्य समझेंगे। यह भी सत्य है कि हिंदू धर्म में व्यवहार में इनको अक्षरशः माने जाने के ठोस सबूत नहीं मिले हैं और आज तो अधिकांश लोग इनका खंडन और विरोध ही करते हैं। वैसे भी अन्य धर्मों की तरह हिंदू या सनातन धर्म किसी एक किताब के हिसाब से नहीं चला। ये तथाकथित धर्मशास्त्र कभी इसकी मूल पाठ्यपुस्तकों का हिस्सा नहीं रहे। जहां एक अवधारणा में प्रेम की गुलामी है तो दूसरी अवधारणा में डंडे की गुलामी है। दोनों को एक तराजू से नहीं तोला जा सकता। दोनों में जमीन आसमान का फर्क है। पहली किस्म की गुलामी जहां जागृति और मुक्ति की तरफ ले जाती है, वहीं दूसरी किस्म की गुलामी अज्ञान और बंधन की तरफ। योगी लोग भी प्रेम के दीवाने होते हैं, देवता के प्रेम के दीवाने, कुंडलिनी के प्रेम के दीवाने। यह प्रेम की गुलामी स्वतंत्रता से भी बड़ी है। बिना प्रेम की स्वतंत्रता के कोई मायने नहीं है। स्वतंत्रता की सफलता इसी में है कि वह प्रेम करवा सके। अगर गुलामी में ही प्रेम हो जाए तो स्वतंत्रता की क्या जरूरत है, क्योंकि स्वतंत्रता का लक्ष्य तो पहले ही प्राप्त हो चुका है। दअरसल स्वामी खुद भी देवता या कुंडलिनी के प्रेम में दीवाने अर्थात ध्यानमग्न रहा करते थे, इसलिए सेवक भी उस प्रेम से कैसे अछूते रहते।

दोस्तो, ब्राह्मण वर्ग के लोग उच्च कोटि के कुंडलिनी योगी होते थे। मतलब वे कुंडलिनी की पराधीनता से महान आत्मिक सुख प्राप्त करते थे। उस सुख में हिस्सा प्राप्त करने के लिए निम्न वर्ग के लोग खुद ही ब्राह्मण वर्ग के निकट रहते हुए उनकी सेवा करने लग जाते थे। सुख ही वह जैविक चुंबक है जो सभी जीवों को अपनी तरफ खींचता है। यह खुद अपने आप होता था। यह व्यवस्था किसी ने नहीं बनाई है। तभी तो वेदों में लिखा है कि वर्ण व्यवस्था परमात्मा के द्वारा निर्मित है। हैरानी की बात यह है कि कुंडलिनी प्रदत्त आत्मिक सुख कुंडलिनी योगी ब्राह्मण को इतना नहीं मिलता था जितना उसकी सेवा करने वाले को। इत्र की खुशबू दूर से ही महसूस होती है, निकट से नहीं। शायद यह इसलिए क्योंकि अन्य वर्ग दुनियादारी वाले वर्ग थे और उनका हल्का सा आत्मिक सुख भी उनकी प्रचंड दुनियादारी से मिलकर महान आत्मिक सुख बन जाया करता था। इसका मतलब हुआ कि अन्य वर्णों के लोग ब्राह्मण से भी ज्यादा ज्ञानी बन जाया करते थे कालांतर में। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। बाल्मीकि, रविदास और विश्वामित्र आदि उदाहरण तो मुझे याद भी हैं। फिर कहते हैं कि इस व्यवस्था को जन्म से क्यों जोड़ा गया। यह भी किसी ने कर के नहीं किया बल्कि यह भी खुद ही हुआ। भारतवर्ष का महान लोकतंत्र नया नहीं है। यह हजारों वर्ष पुराना है। यहां किसी तानाशाह किस्म के आदमी का फरमान नहीं चलता था। यहां सबकुछ स्वयं ही आम जनमानस की स्वाभाविक सोच और जरूरत के हिसाब से होता था। तभी तो दुनिया के

कई लोग भी हैरानी प्रकट करते हैं कि इतने बड़े देश को परमात्मा ही चला रहे हैं क्योंकि यहां स्वतंत्रता और लोकतंत्र की पराकाष्ठा है। खबरों में कुछ होता है पर जो सामने दिखता है वह कुछ और होता है। यहां धर्मप्राण भूमि है और ज्यादातर लोग योगधर्म से प्रेरित होकर खुद ही नियम कानून बना कर रखते हैं। वैसे हर जगह की तरह अपवाद यहां भी हैं।

बढ़ई के बेटे ने अपने जन्म से लेकर अपने ही बढ़ई के काम को संभाला। क्षत्रिय के बेटे ने अपने काम में ही महारत हासिल की। पंडित का बेटा पुरखों की दी गई विद्या को परिष्कृत करके उनसे भी महान पंडित बन गया। इस तरह सभी विद्याएं विकसित होती गईं। कोई भी काम छोटा या बड़ा नहीं है। छोटापन सिर्फ़ और सिर्फ़ काम में निपुणता की कमी में है, और बड़प्पन काम की निपुणता में बढ़ौतरी में है। पुराने ज़माने के आश्चर्य देख लो। एक चट्टान को काट कर बनाए गए मंदिर जैसे मसरूर, दक्षिण के ऐसे आश्चर्यमयी मंदिर जिनको बनाने की कल्पना आज भी इतनी मशीनें होने के बावजूद भी नहीं की जा सकती। ओंकारवाट का महान मंदिर देख लो। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। आज स्नातक और यहां तक कि स्नातकोत्तर में भी अपने काम में वह व्यवहारिक और तकनीकी निपुणता नहीं आई है जो पारिवारिक अनुभव को संजोए लोगों में बिना किसी औपचारिक शिक्षा के स्वयं ही आ जाती है। अगर तो उन्हें औपचारिक शिक्षा भी मिले तब तो कहना ही क्या। पूरा विश्व इससे चिंतित है। इसलिए शिक्षा व्यवस्था में रोज़ नए नए परिवर्तन किए जा रहे हैं। घूम फिर कर पहुंचेंगे वे उसी पुरानी वर्णाश्रम व्यवस्था पर। बेशक उसे कोई और नाम, रूप दे दिया जाए।

दोस्तो, जिस लेख को समग्रता से न लिखकर किसी पक्ष को छोड़ दिया गया हो, वह लेखन नहीं दुष्प्रचार होता है। हमारी वैबसाइट की यह खासियत है कि यह बिना किसी भेदभाव के सभी पक्षों को प्रस्तुत करती है इसीलिए जनमानस में इतनी स्वीकार्य है। हम न किसी का समर्थन करते हैं और न विरोध, केवल यथार्थता और उसके पीछे छिपे गूढ़ सिद्धांत को प्रस्तुत करते हैं। हरेक व्यवस्था में गुण दोष होते हैं। कोई पूर्ण नहीं होती। अगर पूर्ण होती तो परिवर्तन ही क्यों होता। पर कुछ शरारती तत्व अपने स्वार्थ के लिए परिवर्तन को बंधक बनाकर अपने पक्ष में मोड़ लेते हैं। इससे सही परिवर्तन नहीं होता और मूल समस्या बनी रहती है। अगर सिर्फ़ परमात्मा की बनाई व्यवस्था ही पूर्ण होती तो आदमी का और उसके प्रयास का कोई औचित्य न रह जाता। इसलिए व्यवस्था का विकास तो होता ही रहना चाहिए पर निष्पक्ष रूप से और व्यापक वैश्विक जनहित को देखते हुए।

कुंडलिनी योग दुनिया को मन में जबरन प्रतिबिंबित करवा कर नष्ट कर देता है

दोस्तो, आम जीवनयात्रा में सभी कुछ अनात्मा सा लगता है। मतलब अपने से अलग लगता है। ऐसा जीवविकास की प्रक्रिया से होता है। जो दुनिया को जितना ज्यादा पराया समझेगा वह उतना

ज्यादा उसका दोहन करेगा और उतना ही ज्यादा उससे सुरक्षित भी रहेगा। अपने आप का भला कोई कैसे दोहन कर सकता है और अपने आप से सुरक्षा की भी किसीको भला क्या जरूरत पड़ सकती है। आदमी सबसे अधिक विकसित प्राणी है। इसके इसी विकास की मार इसको पड़ती है। वह दुनिया को सभी जीवों में सबसे अधिक अनात्मा समझता है। इससे वह बंधन में पड़कर जन्ममरण के आवागमन में पड़ा रहता है। राग और द्वेष जो अनात्मा के प्रति पैदा होते हैं, वे ही बंधन के मूल कारण हैं। पशु तो इंस्टिंक्ट से काम करते हैं। इसलिए वे न तो दुनिया को आत्मा समझ सकते हैं और न अनात्मा। ऐसा कुछ समझने के लिए उनके पास दिमाग ही नहीं है। हो सकता है कि हल्का सा आत्मा ही समझते हों, तभी तो उनका धीरेधीरे क्रमवार विकास ही होता है , पतन नहीं।

आदमी द्वारा दुनिया को आत्मा समझना इस झूठे विकासवाद की विपरीत दिशा में चलने की तरह है। फिर आदमी प्रकृति का अंधाधुंध दोहन नहीं करेगा। इससे पर्यावरण भी सुरक्षित रहेगा। फिर वह दुनिया से असुरक्षा भी महसूस नहीं करेगा। इससे लड़ाइयां भी रुकेंगी। आदमी जरूरत से ज्यादा संसाधनों का संचय भी नहीं करेगा। इससे समाज में आर्थिक विषमता के साथ गरीबी भी मिटेगी। और भी बहुत कुछ लाभ होंगे, पर हमने तो मूल लाभ ही सामने रखे हैं। विकास रुकता नहीं है। प्राकृतिक विकास को कोई नहीं रोक सकता। आदमी का मस्तिष्क तो विकसित होता ही रहेगा। पर तब वह विकसित मस्तिष्क मानवता के विकास में प्रयुक्त होगा, दानवता या अंधी भौतिकता के विकास में नहीं। दोस्तो, आज दुनिया इस मोड़ पर खड़ी है कि अगर अध्यात्मवाद पनप गया तो पूरी दुनिया सतयुग में प्रविष्ट हो जाएगी, पर अगर अध्यात्मवाद को नजरंदाज किया जाता रहा तो इसके नष्ट होने में ज्यादा समय नहीं लगने वाला। इसलिए सभी लोगों को जीजान से अध्यात्मवाद को फैलाने में मदद करनी चाहिए।

श्रीमद्भागवत गीता में श्रीकृष्ण भगवान कहते हैं कि अध्यात्मविद्या विद्यानाम्। मतलब अध्यात्मविद्या सभी विद्याओं से श्रेष्ठ है। साथ में कहते हैं कि आत्मवत् सर्वभूतेषु य: पष्यति स : पंडितः। मतलब जो सभी चीजों को अपनी आत्मा की तरह देखता है, वही असली पंडित है। अध्यात्म विद्या को इसीलिए सर्वश्रेष्ठ कहा है क्योंकि इससे आदमी हर जगह आत्मा को देखता है। इससे अन्य सभी विद्याएं नियंत्रित रहती हैं। आज अन्य विद्याएं घातक परमाणु हथियारों और विश्वनाशक प्रदूषण तक इसीलिए पहुंची हैं क्योंकि इन्हें अध्यात्म विद्या का साथ नहीं मिला है। अध्यात्म विद्या के बिना सभी विद्याएं लगभग व्यर्थ ही हैं।

व्यवहार में सबको अपनी आत्मा की तरह देखना आसान नहीं होता है। इसके लिए प्रतिदिन के अभ्यास की जरूरत होती है। हम जब बचपन में होते थे तब हमारे बुजुर्ग कर्मकांडी पुरोहित हुआ करते थे। वे लोगों के घरों में सनातन संस्कृति के विभिन्न प्रकार के पूजापाठ करवाया करते थे। उनमें विभिन्न देवीदेवताओं की पूजा होती थी। सूर्यदेव, वायुदेव, अग्निदेव, जलदेव, गणेश, शिव, न

ारायण, कुलदेवी, पृथ्वीदेवी आदि विभिन्न देवी देवताओं को बुलाया जाता था, और उन्हें धूप, दीप, गंध, पुष्प, नैवेद्य आदि विभिन्न उपचारों से पूजा जाता था। प्रतिदिन की सुबह शाम की संध्या में भी लगभग ऐसा ही होता था। उसके बाद बड़े आनंद के साथ बड़ी शांति सी महसूस होती थी और ऐसा लगता था कि जैसे सबकुछ अपनी आत्मा के जैसा मतलब अपने जैसा ही है। वह शांति और आनंद पूरे दिन काम करते हुए भी कम होने की बजाय बढ़ता ही था। यह इसलिए होता था क्योंकि हमने कर्मकांड के माध्यम से दुनिया की हरेक चीज को अपना परम मित्र और परम प्रिय बना लिया होता था। हरेक चीज में ये ही सभी मूल देवता विभिन्न रूपों में विद्यमान हैं। सूर्यदेव व अग्निदेव हरेक प्रकाशित व प्रकाशमान वस्तु में है। जलदेव सभी पेयों व तरल पदार्थों में हैं। पृथ्वी देवी सभी खाद्यों और स्थूल पदार्थों में हैं। इसी तरह अन्य भी। किसी आदमी की भी अगर श्रद्धाभाव से इतनी सेवा पूजा करेंगे तो वह भी गहरा मित्र बन जाएगा बेशक उसमें बहुत से दोष भरे पड़े हैं। फिर सभी गुणों से संपन्न और निस्वार्थी देवता क्यों परम मित्र नहीं बनेंगे। फिर मित्र से अपनापन नहीं होगा तो किससे होगा। मतलब मित्र ही तो आत्मा के सबसे नजदीक होता है या कहो आत्मा की तरह होता है। मित्र बारंबार मिलने आता है। इसी तरह दुनिया को सम्मान देने से दुनियादारी की चीजें और क्रियाएं भी संकल्पों के रूप में पुनः पुनः उभरती हैं। मतलब मन में रिफ्लेक्ट होती रहती हैं। इससे खुद ही विपासना साधना हो जाती है, और मन कचरे से मुक्त होकर स्वच्छ हो जाता है।

समय के साथ सनातनियों का वह संग कम होता गया। पर उनके प्रभाव की याद बनी रही। इसलिए उस प्रभाव की प्रेरणा से शरीरविज्ञान दर्शन ही बना दिया। इसमें भी दुनिया की हरेक चीज को अपने शरीर में विद्यमान समझा जाता है। जो चीज शरीर के अन्दर आ गई, वह तो आत्मा के सबसे नजदीक या आत्मा की तरह हो ही गई। उससे भी बहुत लाभ मिला। उसका प्रभाव तो मुझे कर्मकांड से भी ज्यादा मजबूत लगता था।

उसके बाद आयु बढ़ने के साथ, रोगों और अन्य परिस्थितियों के कारण दुनियादारी के कामों को करने का मौका मिलना भी कम हो गया। इससे स्वाभाविक था कि शरीरविज्ञान दर्शन को आजमाने का मौका भी कम हो गया, क्योंकि यह भी दुनियादारी से ही जुड़ा है। यदि आदमी दुनियावी चीजों और क्रियाओं से दूर रहने लगेगा तो कैसे यह भावना कर पाएगा कि यह सभी कुछ उसके शरीर में हूबहू पहले से विद्यमान हैं। और कैसे उनको मित्र बना पाएगा। कर्मकांड भी इसी तरह दुनियादारी के साथ ही ज्यादा प्रभावी होता है, अकेले नहीं। कर्मकांड और शरीरविज्ञान दर्शन के अल्पप्रभावी होने से खुद ही कुंडलिनी योग का विकल्प सामने खुल गया। प्राणायाम और आसनों के बल से वर्तमान और पुराने समय की दुनियादारी पुनः पुनः मन में प्रकट होने लगी। इससे ऐसे ही विपासना साधना होने लगी, जैसे कर्मकांड या शरीरविज्ञान दर्शन से होती थी। मतलब कर्मकांड से तो दुनियादारी को मित्र बनाकर पुनः पुनः मन में आने को मजबूर किया जाता था, पर योग से दुनियादारी को जबरदस्ती मन में रिफ्लेक्ट करवाकर उसे मित्र बनने के लिए

मजबूर किया जाने लगा। बात एक ही है। कान को इधर से पकड़ो चाहे उधर से। इसीलिए योगशास्त्रों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि प्राणायाम से मोक्ष मिलता है। फिर कहते हैं कि योग से दुनिया में युद्ध कैसे रुकेंगे। इसी सिद्धांत से रुकेंगे। जब योग से सारी दुनिया मन में शुद्ध परावर्तित रूप में बारंबार आती रहेगी, तब कोई पराया ही नहीं रहेगा। फिर शत्रुता भी किससे होगी।

जिससे नफरत हो, या जो दुश्मन हो, वह बार बार मन में नहीं आता। मित्र ही बार बार मन में आता है। और जो बार बार मन में आता है, वह खुद ही मित्र भी बन ही जाता है। इसीलिए अगर किसी चीज से नफरत करेंगे तो वह मन से कभी नहीं मिटेगी, बल्कि ऐसे ही अज्ञात रूप में मन में दबी रहेगी। वह इसलिए क्योंकि उसका परावर्तित रूप मन में बार बार नहीं आएगा। इसलिए वह हमेशा आनंद की बजाय दुख देती रहेगी। पर जिस चीज से प्रेम करेंगे, वह बारंबार मन में प्रकट होकर भरपूर आनंद देते हुए समय के साथ मिट भी जाएगी। इससे आत्मा स्वच्छ होकर मुक्त भी हो जाएगी। मतलब मिट कर भी आनंद ही देगी। इसीलिए कहते हैं कि सबसे प्रेम करो। प्रेम से ही चीज बारंबार मन में परावर्तित रूप में आती है। भौतिक संसार में चीज को सीधे ही इंद्रियों और मन के सहयोग से अनुभव करते समय उसके प्रति पराए का भाव रहता है, क्योंकि वह अपने शरीर से बाहर से आ रही होती है। मतलब मन का प्रतिबिंब बाहरी संसार के बिंब के साथ जुड़ा होता है। इसलिए आत्मा और अनात्मा का मिश्रित अनुभव होता है। पर जब वही चीज बाह्य संसार और इंद्रियों की सहायता के बिना ही मन में याद के रूप में सिर्फ परावर्तित रूप में होती है, उस समय केवल भीतरी प्रतिबिंब होता है, बाहरी बिंब नहीं। इसलिए उसके साथ आत्मा का अनुभव ज्यादा होता है। क्योंकि मन भीतर है और आत्मा के सबसे नजदीक है या कहो कि आत्मा ही है, इसलिए वह चीज आत्मा की तरह या आत्मा ही बन जाती है, और कालांतर में आनंदमय आत्मा में ही विलीन हो जाती है। इसलिए यह मिथ्या धारणा ही लगती है कि प्रेम से आसक्ति बढ़ती है। प्रेम से तो दरअसल आसक्ति नष्ट होती है क्योंकि उससे दुनिया आनंदमय आत्मा में विलीन हो जाती है। आसक्ति तो घृणा से बढ़ती है क्योंकि इससे दुनिया मन में ही दबी और चिपकी रह जाती है , और मन में बारंबार प्रतिबिंबित न होने के कारण छूट नहीं पाती, जो बंधन और पुनर्जन्म का कारण बनती है।

कुंडलिनीपरक तंत्रयोग से सबकुछ अपनी आनंदमय आत्मा के रूप में महसूस होता है

दोस्तो, योग से एक कदम और आगे तंत्रयोग है। जब तांत्रिक जोड़ीदार की या कहो यिनयांग की समीपता से कुंडलिनी शक्ति मूलाधार से सहस्रार की तरफ ऊपर चढ़ती है तो उससे दो काम एकसाथ होते हैं। एक तो सहस्रार में शक्ति के पहुंचने से अद्‌वितीय और महान आनंद महसूस होता है। इसे लौकिक भाषा में यौन आनंद कहा जाता है। इसे सभी लौकिक आनंदों में उच्चतम आनंद समझा जाता है। इसको पाने के लिए मनुष्य सहित सभी जीव महान से महान संघर्ष करते देखे जाते हैं। इसका स्रोत सहस्रार चक्र माना जाता है। सहस्रार चक्र में आत्मा का निवास भी माना जाता है। अतः एक प्रकार से इस आनंद को आत्मा का आनंद माना जाता है। आनंद को पैदा करने में यिनयांग मिश्रण का योगदान भी है। आत्मा में यिनयांग बराबर मिश्रित है। इसलिए इससे भी यह आत्मा का ही आनंद सिद्ध होता है। कुंडलिनी शक्ति से दूसरा काम यह होता है कि यह सभी चक्रों से ऊपर गुजरते हुए उन्हें क्रियाशील कर देती है। इससे दुनियादारी भी क्रियाशील हो जाती है, बेशक अद्‌वैतमय आत्मज्ञान के साथ। साथ में, इससे उनमें दबे या सोए हुए अवचेतन मन के विचार व्यक्त मन में अभिव्यक्त से होकर उभरने लगते हैं। शायद इसी को सोई हुई कुंडलिनी शक्ति का जागना कहते हैं। दरअसल जागते तो मन के सोए विचार हैं। अकेली शक्ति तो जड़ है। वह कैसे सोएगी और कैसे जागेगी। क्योंकि विचार शक्ति का ही अनुसरण करते हैं , इसीलिए विचारों के क्रियाकलाप को शक्ति का क्रियाकलाप माना जाता है। जब विचार सोए होते हैं तो उसे कुंडलिनी शक्ति का सोना कहा जाता है। इसी तरह जब विचार जागते हैं तो उसे कुंडलिनी शक्ति का जागना कहा जाता है। आदमी रात को नींद में कुंडल जैसा सोया होता है, सीधा नहीं। ऐसे सोने से वह ज्यादा आराम पाता है। यह इसलिए क्योंकि शरीर के ऐसे पॉश्चर में विचार भी गहरी नींद सो जाते हैं। इसीलिए तो अच्छी नींद आती है। कभी कोई पीठ के बल सीधे सोकर देखना। बुरे सपने आएंगे और नींद भी पूरी नहीं आएगी। हम विस्तार के भय से इसके गहरे विज्ञान में नहीं जाएंगे। मतलब मन के विचार भी कुंडल बना कर सो जाते हैं। मतलब उनको जगाने वाली शक्ति भी कुंडल बना कर सो जाती है। इसीलिए इसका नाम कुंडलिनी शक्ति पड़ा है। इसका शाब्दिक अर्थ है, कुंडल बना कर सोने वाली शक्ति। जब आदमी जाग कर खड़ा हो जाता है तो उसके विचार भी जाग कर सीधे खड़े हो जाते हैं। मतलब कुंडलिनी शक्ति भी कुंडल खोल कर सीधी खड़ी हो जाती है और नागिन की तरह विचारों के रूप में फुफकारे मारने लगती है। हालांकि ये सतही विचार होते हैं। गहरे दबे विचार तो कुंडलिनी योग से ही जागते हैं। इसमें शक्ति को बलपूर्वक और ज्यादा जगाया जाता है। यहां एक और अंतर्दृष्टि पैदा हो रही है। कहते हैं कि सोई हुई कुंडलिनी में अढ़ाई घेरे होते हैं। आदमी जब बाईं या दाईं करवट होकर कुंडल बना कर सोता है, तो उसके शरीर में भी अढ़ाई मोड़ बनते हैं। एक पूरा मोड़ घुटनों के मुड़ने से बनता है। दूसरा पूरा मोड़ कूल्हे अर्थात हिप के मुड़ने से बनता है। तीसरा व आधा सा मोड़ नाभि के स्तर से ऊपर वाले हिस्से में बनता है। शायद कुंडलिनी के अढ़ाई वलय इन्हीं को कहा गया है।

अब मुख्य बिंदु पर आते हैं। कुंडलिनी योग से क्या होता है कि शक्ति सभी चक्रों से गुजरते हुए उन्हें झकझोरती है। इससे चक्रों पर दबे सोए विचार भी जाग जाते हैं जो मन में अनासक्ति के साथ उभरते हैं। इससे विपासना के कारण आनंद पैदा हो जाता है। इस किया में कुछ शक्ति सहस्रार तक भी पहुंच जाती है। इससे आनंद और ज्यादा बढ़ जाता है। पर इसमें यिनयांग मिश्रण की भावना नहीं जुड़ी होती। इस वजह से आनंद में कुछ कमी रह जाती है। यह कमी तांत्रिक यौनयोग से ही पूरी होती है। इसीलिए उसमें परम आनंद जैसी अनुभूति मिलती है। इसीलिए इसमें सभी उभरते विचार अपनी आत्मा के सबसे नजदीक लगते हैं। यह इसलिए क्योंकि जहां आनंद है , वहां आत्मा है; और जहां आत्मा है, वहां आनंद है। जितना ज्यादा आनंद, आत्मा से उतनी ज्यादा निकटता। पुत्र को इसीलिए शास्त्रों में आत्मा कहा गया है क्योंकि उसके साथ यिनयांग के आकर्षण का महान आनंद जुड़ा होता है। वैसे भी अपनी संतान सभी को प्यारी लगती है, चाहे वह कैसी भी हो। वैसे तो दत्तक संतान के साथ भी यह आकर्षण धीरे धीरे जुड़ जाता है, पर अपनी संतान के साथ तो यह उसके पेट में रहने के समय से ही जुड़ना शुरु हो जाता है। इस तरह से अगर देखा जाए तो एकनिष्ठ तंत्रयोगी साधु के लिए पूरी दुनिया उसकी संतान की तरह है। असली साधु ऐसे ही होते हैं। कई असली साधु जो गृहस्थ से दूर दिखते हैं, पर उनके मन के अन्दर यिनयांग मिश्रण जरूर मजबूती से जमा होता होगा। वे केवल बाहर से ही अकेले दिखते हैं। एक बार मेरी एक सच्चे जैसे दिखने वाले साधु से मित्रता हो गई थी। एकबार वे बता रहे थे कि उन्हें एक लड़की से प्यार हो गया था पर घर वालों ने शादी की इजाजत नहीं दी। बाद में उन्होंने घर छोड़ दिया और वे साधु बन गए। अब वे यादें उनके मन में इतने हल्के रूप में चलती हैं जैसे कोई पुराने ज़माने की हल्की क्वालिटी की ब्लैक एंड व्हाइट सिनेमा की रील चल रही हो। मतलब उनके मन में यिंनयांग जमा हुआ था। ज्यादातर नहीं तो बहुत से लोग ऐसे ही साधु बनते हैं, या तो प्रेम में सफल होकर या असफल होकर। यिंनयांग जोड़ा दोनों में होता है। और कईयों में तो यह यिनयांग ठेठ और अय्याश किस्म के गृहस्थों से भी बढ़कर होता है। यह दुनिया जैसी दिखती है , दरअसल वैसी होती नहीं, और जैसी होती है, वैसी दिखती नहीं। हमारी बहुत सारी बातें रटी रटाई होती हैं। अगर हम स्वतंत्रता के साथ गहराई से अवलोकन करें तो हमें जो सिखाया गया या बताया गया है, या जो सतही तौर पर दिखता है, सच्चाई उससे उलट ही नजर आती है। इसी यिनयांग की दिव्य शक्ति के कुछ अंश के कारण ही सुखी दंपत्ति महान और ज्ञानी साधुओं से कमतर नहीं दिखते और उनके साथ सारी दुनिया खड़ी होती हुई दिखती है।

जो अधिकारी सपरिवार अपने कार्यस्थल पर रहते हैं, उनसे उनके मातहत ज्यादा प्रसन्न रहते दिखते हैं। इससे वे अधिक दक्षता और मेहनत से काम करते हैं। मुझे लगता है कि सभी अधिकारियों और कर्मचारियों के व्यक्तिगत मनोरंजन की उनकी कार्यकुशलता में अहम भूमिका है। इसलिए अब माना जा रहा है कि बीचबीच में कर्मचारियों को छुट्टियां देने व उन्हें अपने अपने परिवारों के साथ भरपूर मनोरंजन करने देने से वे ज्यादा कुशलता से कार्यक्षम बन जाते हैं, और काम में ज्यादा प्रोग्रेस निकालते हैं। हर समय काम और काम का ढोल बजाते रहना और वह भी

चरित्र विकास और आध्यात्मिक विकास की कीमत पर, अच्छा नहीं लगता। मुझे नहीं पता कि कामकाजी महिलाएं अपने परिवारों के मनोरंजन का कैसे पूरा ध्यान रख पाती होंगी। वैसे तो आधुनिकता के नाम पर इतना मिथ्या ज्ञान और अज्ञान समाज में फैशन के रूप में फैला है कि क्षणिक सुख को ही परम सुख मान लिया गया है। इससे कोई नहीं बचा है, चाहे कोई कामकाजी हो या गृहव्यवस्थक। हमें लगता है कि शिक्षा नीति के अंतर्गत जैसे व्यक्तिगत वित्तीय शिक्षा को पाठ्यपुस्तकों में शामिल करने की मांग की जाती है, वैसी ही मांग परिवार प्रबंधन के लिए भी की जानी चाहिए। सभी स्कूली बच्चों ने आखिर बड़े होकर परिवार तो चलाना ही है, जिसमें वित्तीय प्रबंधन भी शामिल है। अभी कुछ दिन पहले एक सज्जन का बहुत सी शुभ कामनाओं के साथ संदेश आया कि इस ब्लॉग पर यौन तंत्र की पौराणिक प्रामाणिकता देखकर उनका दांपत्य जीवन पटरी पर आ गया। ऐसे संदेशों से खुशी होती है कि किसी का भला हो रहा है। वैसे हमने तो कुछ नया नहीं बताया, केवल पुराण में लिखी बात को ही स्पष्ट किया।

कुंडलिनी तंत्र बनाम फैशन

दोस्तो, देखा जाए, बीचबीच में सांसों के ऊपर ध्यान देने से भी दुनियावी क्रियाओं और विचारों के साथ आत्मभाव जुड़ जाता है। यह इसलिए क्योंकि सांसें भी आत्मा के अर्थात अपने आप के सबसे ज्यादा नजदीक हैं। इसीलिए कहते हैं कि सांस के साथ दुनियावी विचार भी चलता रहना चाहिए। उसे रोकना नहीं चाहिए। अगर उसे बलपूर्वक रोकेंगे तो वह कुंडल बनाकर सो जाएगा। अगर उसे जागते रहने देंगे तो वह पहले तो आत्मा के जैसा महसूस होने से आनंद देगा। यह सविकल्प समाधि के सविकल्प आनंद की तरह होगा। फिर आत्मा में ही विलीन होकर उससे भी ज्यादा आनंद महसूस कराएगा। यह निर्विकल्प समाधि के निर्विकल्प आनंद के जैसा होगा। यह स्थिति उस विकल्पहीनता से अलग है जिसमें विचारों को बलपूर्वक दबाया जाता है। इस स्थिति में विचार नष्ट न होकर आत्मा से एकाकार हो जाते हैं। पतंजलि का योगश्चित्तवृत्ति निरोधः इसी अवस्था के लिए है, न कि विचारों को बलपूर्वक दबाने के लिए। इसमें आनंद के साथ भारहीनता सी और शांति सी भी महसूस होगी। वह इसलिए क्योंकि कचरे का कुछ बोझ हटा है। मतलब कुंडलिनी शक्ति शिव में विलीन हो जाएगी। यह शक्ति थोड़ी थोड़ी करके भी शिव में विलीन होती है और इकट्ठी भी। थोड़ी थोड़ी तो सबमें ही विलीन होती रहती है। उसका पता इसलिए नहीं चलता क्योंकि बहुत सी शक्ति कुंडल बना के सोई होती है। साथ में, नई शक्ति भी उससे जुड़ती रहती है। कुंडलिनी जागरण के कुछ क्षणों में ही सारी शक्ति शिव में विलीन हो पाती है, और अच्छे से महसूस हो पाती है। इसीलिए कुंडलिनी जागरण को ही आमतौर पर शक्ति और शिव के मिलन के रूप में देखा जाता है।

दुनियावी क्रियाओं के बीचबीच में शरीर की तरफ नजर डालने से और उसके प्रति ध्यान देने से भी दुनियावी क्रियाओं और विचारों के साथ आत्मभाव इसी सिद्धांत के अनुसार जुड़ता रहता है। इससे वे आसक्ति और घृणा के भाव से मुक्त हो जाते हैं। उनके साथ सिर्फ शुद्ध प्रेमभाव ही जुड़ा रहता है। आसक्ति या घृणा तो केवल पराई चीजों के साथ ही हो सकती है, अपने साथ नहीं। आसक्ति मतलब चिपकाव दूसरे से ही होगा।

एक डंडा झंडे से ही चिपक सकता है, अपने आप से नहीं। अपने आप में तो वह पहले ही चिपका हुआ है, और अपने आप में एक है। दूसरा कोई चिपकने के लिए है ही नहीं। इसी तरह झंडे से घृणा करके उसे डंडे से छुड़ाया और दूर हटाया जा सकता है। डंडे को डंडे से कैसे छुड़ाएंगे क्योंकि वह तो पहले ही अपने आप में एक है। अपने को अपने आप से कैसे हटाएंगे। घृणा से अगर झंडे को डंडे से हटा भी देंगे, तो भी वह अव्यक्त रूप में उससे चिपका ही रहेगा। मतलब हमेशा ऐसा महसूस होगा कि झंडा पहले था पर अब नहीं है। मतलब झंडा अपने अभाव के रूप में विद्यमान रहेगा। इसी तरह अगर किसी विचार से घृणा करके उसे मन से बलपूर्वक हटा दिया जाए तो वह उस विचार के अभाव से पैदा हुए अंधकार के रूप में रहेगा। मतलब वह चिपका हुआ ही रहेगा। अगर

झंडे के साथ डंडे पर भी हमेशा आदमी की नजर रहेगी, तो झंडे के प्रति विशेष आसक्ति पैदा नहीं होगी। यह इसलिए क्योंकि लगाव झंडे में और डंडे में, दोनों में बंट जाएगा। साथ में, डंडा और झंडा , दोनों एकरूप या एकजैसे ही दिखेंगे, क्योंकि दोनों एकदूसरे के आश्रित हैं और साथ साथ अभिव्यक्त हो रहे हैं। दूसरा यह है कि दोनों का महत्त्व नजर के सामने रहेगा और वह केवल झंडे का ही गुणगान नहीं करेगा। फिर जब झंडा गायब होगा तो उसका मन डंडे से लगा रहेगा। क्योंकि वह झंडे के भाव से ज्यादा नहीं चिपका था, इसलिए उसके अभाव से भी ज्यादा नहीं चिपकेगा। मतलब इसी तरह शरीर के रखरखाव से व उसकी साज सज्जा से आम धारणा के विपरीत हानि की बजाय लाभ मिल सकता है तंत्र के अनुसार। मतलब शरीर को नए नवेले रूप देते हुए फैशन के अनुसार ढालने में कोई बुराई नहीं है।

कुंडलिनी तंत्र बनाम चिंतन

दोस्तो, क्रोनिक या लंबी बिमारी में जो आदमी आध्यात्मिक सा बन जाता है, वह इसीलिए क्योंकि दर्द, जलन या अन्य शरीर की स्थायी संवेदनाओं से उसका ध्यान लगातार शरीर पर बना रहता है। हालांकि यह सामान्यीकरण नहीं है। कई लोगों को इससे विपरीत लग सकता है। यह सब किसी भी समय किसी की व्यक्तिगत स्थिति के अनुसार होता है। संवेदनाएँ सुखद या अप्रिय संवेदनाएँ होती हैं। दोनों के पीछे एक ही नियम लागू होता है। यह दोनों से लाभ प्राप्त करने की व्यक्ति की क्षमता पर निर्भर करता है अन्यथा बहुसंख्यक लोग दूसरे प्रकार के पक्ष में एक प्रकार से बचने या उसे दबाने की कोशिश करते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है कि दोनों एक ही समय में आसानी से उपलब्ध हों, इसलिए प्रतीक्षा में बहुत समय बर्बाद हो जाता है। इसीलिए खाली समय में तपस्या करने की सलाह दी जाती है। योग भी एक तपस्या है क्योंकि यह विभिन्न शारीरिक और मानसिक संवेदनाएँ प्रदान करता है। कहते हैं कि कष्टसहनरूपी तप से पाप नष्ट होते हैं। इसके पीछे भी मुझे यही सिद्धांत लगता है। कष्ट की दर्द, संवेदना आदि से शरीर की तरफ ध्यान बना रहता है, जिससे मन में दबे सभी प्रकार के अच्छे बुरे विचारों को उमड़ने का मौका मिलता है। जानबूझकर चिंतन करने वाली आम स्थिति में आदमी तथाकथित घृणित या बुरा अनुभव कराने वाली या जीवन पर बुरा प्रभाव डालने वाली यादों को दबाकर रखता है। साथ में, इसके विपरीत अच्छा अनुभव देने वाली यादों को जबरदस्ती और आसक्ति के साथ पुनः पुनः याद करता रहता है। इससे वे मिटने लगती हैं। बैलेंस में उसके अवचेतन मन में केवल बुरे विकल्प ही दबे हुए बचे रह जाते हैं। वे प्रभावी होकर उसे बुरा अनुभव देने लग जाते हैं। उन्हें संतुलित करने के लिए वह अच्छी यादों से जुड़ी क्रियाओं की तरफ पुनः आसक्ति के साथ प्रवृत्त हो जाता है। आसक्ति इसलिए क्योंकि उन्हें विलीन करते हुए भी उसके मन में आसक्ति थी। अच्छे विकल्पों से आसक्ति इसलिए भी क्योंकि बुरे विकल्प उसने जबरन अवचेतन में दबाए हुए हैं। अगर आदमी अपने मित्र से आसक्ति और शत्रु से घृणा करेगा तो जरूर मित्र को बागों में घुमाएगा और शत्रु को बेड़ी डालकर तहखाने में बंद कर देगा। इसको घुमाकर सोचें तो यदि एक आदमी हर बार अपने नौकर श्यामू के जिम्मे गुलामों जैसा काम छोड़कर अपने दूसरे नौकर रामू को गंगास्नान कराने ले जाएगा तो यही माना जाएगा कि उसको रामू के प्रति आसक्ति है और श्यामू से घृणा। इस तरह यह सिलसिला जारी रहता है और अवचेतन में दबे हुए तथाकथित बुरे संकल्प आसक्तिपूर्ण जीवन को हवा देते रहते हैं। पर यदि उसका मन ध्यानसाधना या मेडिटेशन से शरीर, सांस, माला , ध्यानचित्र आदि किसी भी ध्यान आलंबन पर स्थिर हो, तो फिर उसके अवचेतन मन पर उसका पक्षपातपूर्ण नियंत्रण नहीं रहता। फिर समय, स्थिति, अवस्था आदि के अनुसार हर प्रकार के अवचेतन मन में दबे संकल्प उभरते रहते हैं। क्योंकि अवचेतन मन का बक्सा हर किस्म के संकल्पों से बराबर खाली होता रहता है, इसलिए उसे किसी विशेष संकल्प की पक्षपातपूर्ण अनुभूति नहीं होती। इससे वह नए संकल्प बनाने के लिए पक्षपात या आसक्ति के साथ अपनी दुनियादारी नहीं चलाता, बल्कि समय, स्थिति, अवस्था के अनुसार जो जरूरी है, वैसा ही जीवन व्यवहार करता

है। इससे वह खुद ही बुरे कर्मों से बचा रहता है क्योंकि बुरे कर्म अक्सर आसक्ति से ही होते हैं। यह ऐसे ही है जैसे अगर एक आदमी की टोकरी में आलू, प्याज, टमाटर, संतरा, केला बराबर मात्रा में खत्म हो जाए तो वह सबको पाने लिए बराबर प्रयास करेगा, न कि एक ही चीज के पीछे हाथ धोकर पड़ेगा। एक ही चीज पर पूरा ध्यान रहने से वह उससे आसक्त होकर उसको पाने के लिए बुरे काम भी कर सकता है। पर जब उसका ध्यान सभी चीजों को पाने के लिए बराबर बंटा रहेगा , तो उसकी किसी भी चीज के प्रति आसक्ति नहीं हो पाएगी। इससे वह उन्हें पाने के लिए बुरे कर्म से भी बचा रहेगा। किसी चीज के लगातार चिंतन से ही तो उसके प्रति आसक्ति पैदा होती है।

वैसे तो कुंडलिनी ध्यानयोग में भी तो एक ही ध्यानचित्र का लगातार चिंतन किया जाता है, पर उससे तो आसक्ति पैदा नहीं होती। इसकी वजह है, उस चिंतन का प्राणायाम और योगासन के साथ किया जाना या किसी योगी पुरुष की सत्संगति में बने रहना। इससे सांस और शरीर के साथ वह चिंतन जुड़ा होने से वह अपना ही हिस्सा लगता है, जिससे उसके प्रति आसक्ति पैदा नहीं होती। साथ में, कई जानकीर लोगों द्वारा अपने मन में यह धारणा पहले से बैठाई गई होती है कि ध्यानचित्र को भौतिक रूप से प्राप्त नहीं करना है, अपितु उसे मन में ही जगाना है। इससे गहराती चिंतन शक्ति से अन्य दबे विचार भी सामने उभर कर आत्मा में विलीन हो जाते हैं। आम भौतिक चिंतन में आदमी चिंतित वस्तु को वस्तुतः लंबी चलने वाली चिंतन प्रक्रिया में काफी पहले ही भौतिक रूप में प्राप्त कर लेता है। इससे चिंतन नष्ट हो जाता है क्योंकि अपना या अपनी निकटतम वस्तु का या प्राप्त वस्तु का कैसा चिंतन। आम आदमी योगी तो होते नहीं जो अपनी आत्मा के साथ जुड़े हुए चित्र का बलपूर्वक चिंतन करें। वैसे भी चिंतन तो उसका ही हो सकता है जो भौतिक प्राप्ति से दूर है। इससे यह चिंतन ज्यादा गहराई तक नहीं जा पाता, जिससे ज्यादा दबे विचार भी गहराई से बाहर नहीं निकल पाते। आसक्ति उसी के प्रति पैदा हो सकती है, जिसका भौतिक अस्तित्व हो या जो अपने लिए उपयोगी हो। ध्यानचित्रों जैसे देवताओं, ऋषियों आदि का भौतिक अस्तित्व है ही नहीं, फिर उनसे आसक्ति कैसी। गुरु भी न होने की तरह ही हैं, क्योंकि वे अद्वैतरूप होते हैं। अद्वैत रूप परमात्मा का है, और परमात्मा भी परम शून्य रूप ही हैं। किसी का अन्य पसंदीदा ध्यानचित्र ऐसा भी हो सकता है जिसका उसके लिए कोई भौतिक महत्त्व न हो। जैसे कोई पर्वत, नदी, आकाश आदि या कुछ भी। उससे भी कैसी आसक्ति। आम दुनियादारी में जब आदमी को चिंतित वस्तु मिल जाती है, तो वह उसका चिंतन छोड़ देता है। फिर वह किसी अन्य अप्राप्त वस्तु का चिंतन करने लगता है, ताकि वह उसे प्राप्त हो सके। इस तरह यह सिलसिला चलता रहता है, पर चिंतन आध्यात्मिक गहराई या कुंडलिनी जागरण तक नहीं पहुंच पाता। बेशक उसे उस चिंतन से भौतिक लाभ तो मिलते हैं, जैसे खुशी और भौतिक समृद्धि। खुशी इसलिए मिलती है क्योंकि उस चिंतन से उसके अवचेतन मन का भार कुछ न कुछ तो हल्का होता ही है। यही माया है, यही दुनियादारी है, जिसका सिलसिला अनवरत जारी रहता है।

कुंडलिनी योग बनाम तनाव

दोस्तों! तनाव आजकल एक महामारी की तरह फैला हुआ है। काम का तनाव, सफर का तनाव परिवार का तनाव, मौसमी वातावरण का तनाव आदि आदि। अनगिनत किस्म के तनाव हैं। कुछ दिन पहले एक मित्र से मेरा संपर्क हुआ। वह किसी योग संस्था से जुड़ा था। उससे बातचीत के दौरान उसने बताया कि योग के हर एक पोज या हर एक चक्र ध्यान के बाद 8 या 10 सेकंड के लिए रुकना है। इससे फौरन राहत मिलती है और मस्तिष्क भी अगले कदम के लिए तैयार हो जाता है। मैने ऐसा किया तो मुझे भी राहत मिली। पहले मैं बिना रुके लगातर करता था, जिससे थकान के साथ उच्च रक्तचाप जैसा व हल्की सी सिर दर्द भी महसूस होती थी। क्या तनाव को खत्म करने का रहस्य इसी में छिपा है? हो सकता है कि हो। मतलब काम के बीच-बीच में ब्रेक लेकर रिलैक्स होते रहना चाहिए। अपनी सामर्थ्य को नहीं लांघना चाहिए। जब शरीर और मन को काम के दौरान असहज सा लगने लगे, तो थोड़ी ब्रेक ले लो। मुझे तो इससे लिखने में भी मदद मिल रही है। थोड़ा लिखने के बाद तनिक रुक कर नए विचार और यादें तरोताजा हो जाती हैं।

मुख्य प्रश्न है कि योग से तनाव से कैसे राहत मिलती है। मुझे लगता है कि अवचेतन मन में दबे विचार ही तनाव पैदा करते हैं। आत्मा में तो वही पैदा करते हैं। क्योंकि आत्मा शरीर से जुड़ी है इसलिए स्वाभाविक है कि शरीर में भी करेंगे। दबाव भी एक तनाव ही है। मैने जब एक अशरीरी आत्मा का साक्षात्कार किया था, उस समय उसमें असंख्य विचार अंधेरे के रूप में दबे हुऐ दिखे थे मुझे। आत्मा उससे तनाव में लग रही थी। आत्मा उजाले की तरफ आना चहती थी। ऐसा लग रहा था जैसे सूर्य को ग्रहण ने ढक लिया हो और वह उससे बाहर निकलना चाह रहा हो। ऐसा उन दबे विचारों को खत्म करके ही किया जा सकता था। पर दबे विचार अपने आप तो खत्म होते नहीं। उन्हें पुनः पुनः मन में अभिव्यक्त करना ही पड़ता है। फिर योगाभ्यास से उनके प्रति एकात्मभाव या अनासक्ति से ही वे धीरे-धीरे खत्म होते हैं। क्योंकि उस अशरीरी आत्मा के पास शरीर नहीं था। इसलिए संभव है कि उसने पुनर्जन्म लेकर नया शरीर धरण किया। अब शरीर तो कर्मों के अनुसार ही मिलेगा। आदमी का भी मिल सकता है और पशु पक्षी का भी। फिर वे दबे विचार नए शरीर में बाहर आने लगते हैं। इससे अस्थायी राहत ही मिलती है। क्योंकि वे खत्म नहीं हो पाते। क्योंकि पशु पक्षी योगाभ्यास नहीं कर सकते। वे विचार शिथिल जरूर हो जाते हैं। हो सकता है कि नष्ट भी हो जाते हों पर कई जन्म और युग लगेंगे। मनुष्य में यह काम योग से बहुत जल्दी हो जाता है। इसीलिए शास्त्रों में कहा है कि पशु पक्षी सीधे भी मुक्त हो सकते हैं। पर लगता है बहुत कम मामलों में ऐसा होता होगा। वह भी बहुत अनुकूल परिस्थितियां मिलने पर ही। ऐसा इसलिए क्योंकि पशु को ज्यादा सामाजिक सुरक्षा सुलभ नहीं होती। इससे उनके वर्तमान संघर्षपूर्ण जीवन के विचार ऐसे ही उनके मन में दबे रह जाते हैं। उनमें आदमी की तरह यह ज्ञान भी नहीं होता कि आत्मा ही सब कुछ है। इसलिए वे शरीरकेंद्रित ही होते हैं। इसीलिए सभ्य समाज में हर किस्म की सुरक्षा चाहिए होती है। कई कहते हैं कि सरकार का कार्य केवल सैन्य सुरक्षा देना ही होना चाहिए। फिर रोजगार की या आमदनी की सुरक्षा कौन देगा? यह भी सैन्य सुरक्षा से

कम जरूरी नहीं है। अगर सैन्य सुरक्षा होगी पर आमदनी की सुरक्षा नहीं होगी, तो भी आदमी हर समय तनाव में ही रहेगा और कभी शिथिल नहीं हो पाएगा।

तनाव ही अज्ञान है और शिथिलता ही योग या ज्ञान है। हम अगर शिथिलता का मजाक उड़ाते हैं तो एक प्रकार से योग का मजाक उड़ाते हैं। हम अगर तनाव को अच्छा समझते हैं तो एक प्रकार से योगहीनता या अज्ञान को अच्छा समझ रहे हैं। इनको अलग नहीं कर सकते। जरूरी नहीं कि काम तनाव के साथ ही हो। काम शिथिलता या रिलैक्सेशन के साथ भी हो सकता है। यही तो कला है। फिर एक आदमी के लिए जो तनाव है, वह दूसरे के लिए शिथिलता है। इसलिए तनाव और शिथिलता का पैमाना हर आदमी के लिए अलग है। सबके शरीर की बनावट और मन की सोच अलग अलग होती है। मतलब जो काम एक आदमी के लिए तनाव है, वह दूसरे के लिए शिथिलता है। एक के लिए तनाव इसलिए क्योंकि जब काम करते समय उसके दबे विचार बाहर निकलने की कोशिश करेंगे, तो वह उसका प्रतिरोध करेगा। इससे उसे ज्यादा तनाव महसूस होगा। पहले तो वे विचार आराम से सोए थे। तनाव तो उस समय भी था, पर कम था क्योंकि उन्हें दबाकर रखने को ज्यादा जोर नहीं लगाना पड़ रहा था। वे पहले ही सोए हुऐ थे। पर जब काम के दौरान शक्ति जागने लगती है, तब सोए हुऐ विचार भी जागने लगते हैं। कई लोग उनसे डरकर या उनसे घृणा करके उन्हें दबाकर रखने के लिए जोर लगाते हैं। इससे और भी ज्यादा तनाव में आकर थक जाते हैं। मतलब तनाव घटने की बजाय बढ़ता है। साथ में नए काम के नए विचार भी उनके साथ जुड़कर दब जाते हैं। वही काम अगर योगी करता है तो उसका तनाव बढ़ने की बजाय घटता है। ऐसा इसलिए क्योंकि उसे योग के माध्यम से दबे विचारों का संदूक खाली करते रहने की आदत है। बेशक वह योगी कम शारीरिक शक्ति वाला है। मतलब साफ है कि तनाव काम करने से नहीं बढ़ता बल्कि गलत तरीके से काम करने से बढ़ता है। असल में योगयुक्त ढंग से काम करने से तो तनाव घटता ही है। यही कर्म और योग का मिश्रण है। यही कर्मयोग है।

एक आम धारणा है कि शक्ति सिर्फ कुंडलिनी योग से ही जगती है। ऐसा नहीं है। कुंडलिनी शक्ति हर एक काम से जगती है। और मस्तिष्क को चढ़ती है। तभी तो कोई भी काम करते समय सोए विचार जगने लगते हैं। इसीलिए तो गहरे काम के बाद आदमी यौनोन्मुख सा हो जाता है। यह इसलिए क्योंकि वह अपने मूलाधार को पुनः तेजी से रिचार्ज करना चाहता है। वैसे तो धीरे-धीरे वह अपने आप भी रिचार्ज हो जाता है। हां यह अलग चीज है कि कुंडलिनी शक्ति के पूर्ण जागरण को ही कुंडलिनी जागरण कहा जाता है।

तनाव देने वाला व्यक्ति वह नहीं जो काम देता है। बल्कि तनाव देने वाला वह है जो मन की आज़ादी छीनता है। मतलब जो मन के दबे विचारों को खुलकर बाहर आने से रोकता है। विचारों के बाहर आने को ही हृदय ग्रंथि का खुलना कहा गया है। ये दबे विचार ही हृदय को लपेटकर गांठ बनाकर बांध कर रखते हैं। इसीलिए तनाव से हार्ट अटैक ज्यादा आते हैं। दबे विचार रक्त शिराओं

को भी दबा देते हैं। दबाना इनके डीएनए में है। दबना और दबाना इनका स्वभाव है। यह इनकी आदत है। ये पूरे शरीर को दबाकर रखते हैं। इन्हीं के प्रतिरोध के लिए ही हरेक आदमी स्वतंत्रता चाहता है। वास्तव में स्वतंत्रता एक मन की अवस्था है। योगी ही परम स्वतंत्र है, चाहे वह कैसी ही बाहरी परिस्थिति में क्यों न रहे। प्रकाश, सूर्य या गर्मी सबको फैलाती है। अंधेरा और ठंड सबको दबाते हैं। इसीलिए विंटर डिप्रेशन होता है। ये दबे विचार ही कुंडल बनाकर सिकुड़े रहते हैं। इन्हें ही कुंडलिनी शक्ति खोलती है। मतलब साफ है कि एक योगी ही सर्वोच्च कोटि का प्रबंधक, नेता या अधिकारी हो सकता है। एक योगी ही सबको समान रूप से सम्मान, प्रेम और स्वतंत्रता दिला सकता है। यह अलग बात है कि योग या योगी बाबा का नाम सुनते ही निठल्ले लोग इकट्ठे होने लगते हैं। बेशक वे भी धीरे-धीरे कर्मोन्मुख होने लगते हैं जब उन्हें सच्चाई का पता चलता है। उदार हृदयानाम तु वसुधैव कुटुंबकम्। इस वैदिक उक्ति का लौकिक अर्थ अक्सर यह लिया जाता है कि जो पूरी पृथ्वी को अपना परिवार समझे, वह खुले दिल वाला है। वास्तव में इसका गहरा आध्यातमिक अर्थ यह है कि जो आदमी किसी भी विचार से राग या द्वेष रखकर उसे हृदय में दबाकर नहीं रखता, पर सभी के प्रति समान भाव रखकर सबको खुले छोड़ कर रखता है, वही महान या खुले दिल वाला है। वही योगी है। तनाव या अवसाद की जो मर्जी व्याख्या कर लो पर इसका मूल रूप ये दबे सोए विचार ही हैं। दरअसल तनाव और अवसाद एक ही चीज है। तनाव अगर इन सुप्त संस्कारों का भौतिक लक्षण है तो अवसाद इनकी अनुभूति है।

दोस्तों, खुले पार्क में बैठकर काफी धूप सेंक ली और विपासना से तनाव भी काफी हल्का हो गया। इसलिए अब बंद कोठरी में चलते हैं।

कुंडली योग बनाम वर्तमान क्षण: मानसिक शांति, ध्यान और आत्म जगरूकता का सही संतुलन

दोस्तो! एक पॉजिटिव प्रेशर कुंडलिनी जागरण होता है। एक नेगेटिव प्रेशर कुंडलिनी जागरण होता है। प्रथम ममले में यौनयोग आदि से जबरण शक्ति को ऊपर चढ़ाया जता है। दूसरे मामले में विपासना आदि से दिमाग को इतना खाली किया जाता है कि वह खुद ही मूलाधार से कुंडलिनी शक्ति को खींचता है। हालांकि मन का कुछ खालीपन तो दोनों में ही जरूरी होता है और कुछ ना कुछ यौन सहायता तो दोनों में ही ली जाती है। बस स्तर का ही अंतर है। पहले वाले मामले में आदमी को कुंडलिनी जागरण के बाद भी विपासना और कर्मयोग जारी रखना पड़ता है। क्योंकि मन पूरा खाली नहीं हुआ होता है। पर दूसरे ममले में ऐसा लगता है कि सब कुछ पा लिया और कुछ पाने या करने को शेष नहीं रहा। आनंद भी इसमें ज्यादा और लंबे समय तक टिकाऊ बना रहता है। यह ज्यादा गहरी पारलौकिक स्थिति होती है।

योग शास्त्र कहते हैं कि प्राणायाम से श्वास को रोकने से प्राण या मन अंदर ही रुक जाता है। इसका मतलब यह नहीं कि मन का विचार चित्र नष्ट हो जाता है। इसका मतलब है कि वह रुक सा जाता है अर्थात वह बदलता नहीं या उसकी जगह नया विचार चित्र नहीं बनता। प्राण गति का नाम है। जब सांस रोकने से प्राण रुकता है तो गति रुक जाती है। विचार चित्र के तनिक रुकने से यह फायदा हो जाता है कि वह स्पष्ट महसूस हो जाता है। स्पष्ट महसूस होने से उसके प्रति साक्षीभाव या आत्मभाव पैदा करना आसान हो जाता है। शरीर पर आत्मभाव होने से विचारों के प्रति खुद ही आत्मभाव हो जाता है। क्योंकि विचार वर्तमान के स्थूल शरीर में ही पैदा होते हैं। आमतौर पर विचारों की ऐसी दौड़ रहती है कि जितने में हम एक विचार के प्रति आत्मभाव पैदा करने लगते हैं उससे पहले ही वह नष्ट होकर उसकी जगह नया विचार आ जाता है। इस प्रकार यदि प्राणायाम से सांस रोकने की आदत बन जाती है तो निरंतर साक्षीभाव में रहने में लाभ देती है। अगर प्राणायाम के साथ भी सिर्फ विचार के प्रति साक्षी भाव किया जाए तब भी वह सफल नहीं होता। साक्षी भाव भी तभी सफल होता है जब उसके साथ स्थूल शरीर को भी जोड़ा जाए। मतलब सांस से शरीर की गति और शरीर की अन्य संवेदनाओं पर भी ध्यान रहना चाहिए। केवल विचारों के प्रति साक्षी भाव तो हो ही नहीं सकता। सिर्फ विचारों को देखने से तो हम खुद विचार बनकर बह रहे होते हैं। उन्हें देख नहीं रहे हैं। जब साथ में शरीर भी अनुभव में रहेगा, तभी तो सिद्ध होगा कि हम वर्तमान में शरीर हैं और किस्म किस्म के विचारों को देख रहे हैं जो भूतकाल और भविष्य काल में स्थित है। मतलब आदमी उस समय वर्तमान का शरीर बना होता है और आते जाते विचारों को देखता रहता है। हमको वर्तमान से एंकर करने वाला या जोड़ने वाला तो शरीर ही है। वैसे तो वर्तमान का कोई भी परिदृश्य जैसे आसपास की या पक्षियों की आवाजें, द ृश्य आदि भी वर्तमान से जोड़ते हैं पर शरीर और सांसें सबसे ज्यादा प्रागढ़ता से जोड़ते हैं। वैसे तो विचारों को आत्मा या अपने से अलग नहीं देख सकते पर साक्षी भाव से वे आत्मा में विलीन हो जाते हैं। यह इसलिए क्योंकि हमने वर्तमान के स्थूल शरीर को आत्मा माना होता है। और

विचार शरीर में ही तो उठते हैं लहर की तरह और उसमें विलीन भी हो जाते हैं। वैसे ही जैसे महासागर की लहरें बनती मिटती रहती हैं। वैसे तो वे आत्मा में बनती मिटती हैं। पर सीधे तौर पर हम शुद्ध आत्मा को अनुभव नहीं कर सकते। क्योंकि शुद्ध आत्मा अनुभव से परे है। पर जब शरीर पर ध्यान रहता है, और शरीर में विचार लहर बनती मिटती दिखती है, तब आत्मा में विचारों के बनने मिटने की याद आने लगती है और वह बढ़ती रहती है। यह स्थूल से सूक्ष्म की तरफ जाना ही है। स्थूल शरीर में स्थूल तरंग बनती मिटती रहती है। जबकि सूक्ष्म व अनुभवरूप आत्मा में उस तरंग का अनुभव बनता मिटता रहता है। स्थूल से सूक्ष्म देरसवेर याद आ ही जाता है। जैसे धरती में बने सुराखों से अंदाजा लग जाता है कि उसमें रहने वाले जीव या सर्प की आकृति कैसी है? खास बात यह है कि योग के दौरान जो दबे विचार उमड़ते हैं, वे भौतिक शरीर, उसकी सांसों, उसकी प्रतिक्रियाओं, संवेदनाओं, गतियों आदि से जुड़ जाते हैं। इसलिए वे विचार अगर योग के अतिरिक्त अन्य दुनियादारी के समय भी पुनः उमड़े तो शरीर पर स्वतः ही ध्यान चला जाता है। इससे स्वतः ही विपासना होती रहती है।

कुंडलिनी योग से आत्मजागृति की आग: ध्यान, ऊर्जा जागरण और मानसिक शांति का रहस्य

दोस्तों! प्राण और अपान के मेल का उल्लेख शास्त्रों में बहुत मिलता है। प्राण शरीर के ऊपरी हिस्से की प्राण शक्ति है, जबकि अपान शरीर के नीचे के हिस्से की प्राण शक्ति है। कहते हैं कि सांस रोकने से प्राण और अपान आपस में मिलते हैं। होता क्या है कि जब श्वास अंदर भरते हैं तो पीठ से होकर प्राण शक्ति ऊपर चढ़ती है। जब उसे भरकर रोकते हैं तो प्राण सक्रिय रहता है। उस समय मूलाधार क्षेत्र के हिस्सों पर ध्यान से अपान भी सक्रिय हो जाता है। ऊपर चढ़ता हुआ प्राण और नीचे जाता हुआ अपान आपस में मिश्रित होते रहते हैं। यह यिनयांग के मिलन की तरह ही होता है। इसी तरह सांस छोड़ते हुऐ प्राण शक्ति नीचे जाते हुऐ अपान बन जाती है। जब सांस को वहीं रोक कर रखा जाता है, तो अपान सक्रिय हो जाता है। उस समय कोई विचार दिमाग में आए तो प्राण भी सक्रिय हो जाता है। इससे भी नीचे जाता हुआ अपान और ऊपर उठता हुआ प्राण आपस में मिश्रित होते रहते हैं। सीधी सी बात है कि प्राणायाम के समय सांस पर ध्यान बना कर रखो। इससे प्राण और अपान खुद आपस में टकराते रहेंगे। सांस भरते समय जब अंदर को नीचे जाती हुई सांस पर ध्यान रहता है तो उससे अपान नीचे जाता है। पर सांस से पैदा पीठ की गति से प्राण खुद ही ऊपर चढ़ता है। नीचे जाता अपान और ऊपर चढ़ता हुआ प्राण बीच में आपस में टकराएंगे ही। इसी तरह जब सांस बाहर निकलकर नीचे जा रही होती है, उसपे ध्यान से भी अपान नीचे उतरता है और साथ में पीठ की गति से भी नीचे ही उतरता है। पर उस समय उसे संतुलित करने के लिए खुद ही मन में विचार से उमड़ते हैं ताकि प्राण ऊपर चढ़ सके। साथ में जानबूझकर भी अपनी वर्तमान भौतिक परिस्थिति का अवलोकन साक्षीभाव से किया जा सकता है। इससे प्राण का ऊपर की तरफ संचार और बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति में भी प्राण और अपान आपस में टकराएंगे ही। उपनिषदों में अनेकों रोचक तरीकों से इसे लिखा है। उदाहरण के लिए निचले काष्ठ को निचली अरणि और ऊपर के काष्ठ को ऊपर की अरणि और उनके मिलन के घर्षण से पैदा हुई उनके बीच अग्नि की चिंगारी ही उत्तम फल है। सूर्य ऊपरी अरणि, पृथ्वी निचली अरणि और बीच में चंद्रमा फल है, आदि आदि, इस तरह से। अक्षरशः मुझे याद नहीं है। पर ऊपरी भाग और निचले भाग के मिलन को बहुत महत्व दिया गया है। और उससे उनके बीच में उत्पन्न जो वस्तु है, उसे श्रेष्ठ और वरणीय कहा गया है। प्राण और अपान के घर्षण से कुंडलिनी चित्र आग की चिंगारी की तरह जगमगाने लगता है। हो सकता है कि कुंडलिनी योग से ही आग की खोज हुई हो। वैसे भी चक्र पर प्राण और अपान के मिलन से ही ध्यान पक्का होता है। उससे ऊर्जा का जागरण होता है। उससे फिर मानसिक शांति मिलती है।

शास्त्रों में ओम को बहुत महत्व दिया गया है। उसे मूल ध्वनि कहा गया है और सभी ध्वनियों की उत्पत्ति इससे मानी गई है। मुझे लगता है कि ब्रह्मलीन ऋषि को ओम की ध्वनि ही ब्रह्म के सबसे निकट लगी होगी। संभवतया अन्य ध्वनियों जैसे पक्षी की आवाजें, बादल की गड़गड़ाहट, मनुष्यों की बोली या अन्य किसी भी प्रकार की प्राकृतिक और कृत्रिम ध्वनियों से उनका चित्त

चंचल हो जाया करता होगा और ब्रह्म का ध्यान भंग हो जाया करता होगा। ऐसे ही जैसे ब्रह्म के ध्यान के अलावा अन्य दुनियावी चीजों के ध्यान से मन भटक जाता है। वे ओम का उच्चारण करते थे, जिससे ब्रह्म का अनुभव और ज्यादा सुदृढ़ और स्थिर हो जाता था। जैसे ब्रह्म से सारा संसार बना है, उसी तरह ओम से सारी दुनियावी आवाज़ें बनी मानी जा सकती हैं।

पता नहीं, योग को इतना ज्यादा माईथोलॉजी या पौराणिकता से क्यों लपेटा गया है? जबकि योग पूर्णतया वैज्ञानिक है। ऑटोबायोग्राफी आफ योगी में अच्छे और जटिल अंग्रेजी के शब्दों से ऐसा ताना बाना बुना गया है कि पाठक का मूल वस्तु योग पर से ध्यान कम और चमत्कारों पर ज्यादा हो जाता है। हालांकि यह लेखक का नायाब तरीका लगता है जो लोगों को योग के प्रति प्रेरित करता है. इसमें यह पुस्तक सफल होती लगती भी है. वह एक काल्पनिक सी रहस्यात्मकता में खो जाता है। उससे भी बढ़िया सुनने में जो पुस्तक आती है वह पुराण पुरुष है। यह पुस्तक योगी श्री लाहिड़ी महाशय की जीवनी और उनके डायरी नोटों पर आधारित है। उनका वर्णन ऑटोबायोग्राफी आफ योगी पुस्तक में कई जगह आता है। संभवतः वे पुस्तक लेखक के भी गुरु थे। वे भारतीय रेलवे में कर्मचारी थे और सेवानिवृत्ति के बाद पेंशनर रहे। उन्होंने गृहस्थी और दुनियादारी के सामान्य कर्मों के साथ योग से परम सिद्धि प्राप्त की, ऐसा माना जाता है। यह पुस्तक उनके पोते ने संभवतया उनके देहावसान के बाद संकलित की है। पर खेद का विषय है कि यह ईबुक के रूप में उपलब्ध नहीं मिली। न ही इसका निःशुल्क पीडीएफ संस्करण मिला। हालांकि स्कैन्ड पीडीएफ संस्करण आर्काइव.आर्ग पर मिला. अच्छा है इसे टेबलेट में ebook रीडर में पढ़ें. Readera भी अच्छी ऐप है. प्रिंट पुस्तकों को आदमी कितना खरीदेगा? घर में किताबों का ढेर लग जाता है। वैसे ही आजकल घरों में जगह की तंगी होती है। एक बार पढ़ो और रद्दी में फेंको, यह भी ठीक नहीं लगता। साथ में पर्यावरण की हानि का भय भी बना रहता है। मैं इंटरनेट आर्चीवे पर ऑनलाइन पीडीएफ में देख रहा था तो मुझे उसके वाक्य भी रहस्यात्मक शब्दों से युक्त लगे। पता नहीं लोग साधारण और लेमेन तरीके से क्यों तथ्यों को सामने नहीं रखते। शायद पहले वाले लोगों को लगता था कि बिलकुल सरल स्पष्टीकरण देने से ज्ञान का दुरुपयोग होगा। मुझे तो लगता है कि ऐसी ज्ञानवर्धक पुस्तकें निःशुल्क डाउनलोड में भी उपलब्ध होनी चाहिए। अगर तो लेखक साधनसंपन्न है तब तो निःशुल्क मिलनी ही चाहिए। एक लेखक की पुस्तकें उसके लिए बुरे समय के लिए जोड़ी गई संपत्ति की तरह ही है। अगर कभी उसे इतनी आर्थिक बदहाली आ जाए कि जीना ही दुश्वार हो जाए तब बेशक वह उनकी कीमत निर्धारित कर सकता है। कुछ ना कुछ तो आर्थिक संबल मिलेगा ही। पुस्तकें सोने के जेवर की तरह ही बुरे समय के लिए निवेश होती हैं। आदमी अच्छे समय में जेवर कभी नहीं बेचता बल्कि हर समय हर जगह मुफ्त में उनका प्रदर्शन करता है। बुरे वक्त में मजबूरी पर ही वह उन्हें बेचता है। पुस्तकों को भी हर जगह निःशुल्क प्रस्तुत करना चाहिए। परमात्मा करे कि बुरा वक्त आए ही न। वैसे भी ज्यादातर मामलों में पाठकों की शुभकामनाओं और दुआओं से ऐसा बुरा वक्त आता ही नहीं।

कुंडलिनी योग से सूक्ष्म शरीर का साक्षात्कार: ऊर्जा जागरण, ध्यान और आत्म चेतना का गहन अनुभव

दोस्तों! कुछ समय पहले की बात है। मैं दूर के एक बड़े शहर गया हुआ था। एक कंपनी से मेरा सौदा चला हुआ था। कंपनी से कुछ मनमुटाव भी थे। कुछ जरूरी कार्यों को पेंडिंग छोड़कर मैं यात्रा को चला गया था। बीच में कंपनी की महिला प्रबंधक का फोन आया। अब सबको पता है कि परिवार के साथ हंसी खुशी के साथ सैरसपाटे को नजरंदाज करके कौन कंपनी का काम करेगा? इसलिए प्रबंधक से कुछ हल्की कहासुनी भी हो गई। उस समय मेरे अनुभव पटल पर प्रबंधक का सूक्ष्म शरीर आया। वह विचित्र और कुटिल सा अंधेरा था। वह अंधेरा विशेष था। मैने पहले भी लिखा है कि सभी के सूक्ष्म शरीर का अंधेरा भिन्नभिन्न होता है। उस अंधेरे में मुझे बहुत कुछ दबा हुआ मिला। उसमें चंचलता, आगे बढ़ने की होड़, काम में तेजी, चालाकी, स्त्रियोचित सौंदर्य, साथ में कुटिलता और अनेकों पापकर्म और पता नहीं क्या-क्या महसूस हुआ? अलग-अलग करके ऐसे गुण उसमें कुछ नहीं थे। वह अंधेरा एक ही था। उसमें कोई विभाग नहीं थे। क्योंकि एक इकट्ठे मिश्रण का अलग अलग करके वर्णन नहीं किया जा सकता। इसलिए मजबूरन टुकड़ों में वर्णन करना पड़ता है। देखा जाए तो उसका पुरा वर्णन करना तो असंभव ही है। उस एकमात्र अद्वितीय अंधेरे से अनगिनत जन्मों के एक एक कर्म, एक-एक फल, एक-एक चरित्र कौन पृथक कर सकता है? गजब की एनकोडेड फॉर्म होती है उस सूक्ष्म शरीर की। जैसी वह महिला प्रबंधक स्थूल रूप में थी, उसका सूक्ष्म शरीर भी बिलकुल उससे ही मैच कर रहा था। ऐसा समझ लो कि उसी की परछाई थी। जिस समय वह मुझे अनुभव हुआ, उस समय शायद वह अपना पूरा जोर लगाकर ठेका रद्द करने का पत्र लिख रही थी। वैसा उसने पिछला सब कुछ याद करके किया होगा। साथ में अपने बारे में, अपनी कमियों और खूबियों के बारे में, अपने लिए इसके लाभ हानि के बारे में , मेरे इमोशनों के बारे में, अपने सभी इमोशनों और भावनाओं के बारे में, या कहो कि अपने संपूर्ण व्यक्तित्व के बारे में भी खूब विचार किया होगा। क्योंकि सब मेरे स्मरण के साथ किया होगा , इससे उसके सूक्ष्म शरीर की छाप मेरे मानस पटल पर पड़ गई होगी। वैसे भी सृष्टि की सभी आत्माएं एक दुसरे से जुड़ी हुई हैं। एक जगह आत्मा की हलचल पूरी कायनात में हलचल पैदा कर देती है। इसको कई योगी लोग महसूस कर लेते हैं। खैर मेरे वापस आने पर ठेका रद्द होने का पत्र मेरे सामने था। हालांकि यह अलग बात है कि कुछ बीचबचाव व वादविवाद के बाद वह ठेका मुझे पुनः वापस मिल गया था।

बेशक उस सूक्ष्मशरीर का अनुभव मात्र दस सेकंड के समय जितना ही कायम रहा होगा पर था वह स्पष्ट, अप्रत्यक्ष और हैरान सा कर देने वाला। हैरानी इसलिए क्योंकि स्थूल शरीर से आदमी का पूरा पता नहीं चलता। स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर पर ऐसे मढ़ा हुआ होता है जैसे कोयले की खदान पर हराभरा जंगल। सूक्ष्मशरीर से ही आदमी के यथार्थ स्वरूप का पता चलता है। मुझे लगता है कि जो स्त्री के प्रति लंबे समय तक संयम रखने के बाद उसके प्रति आकर्षण खुद ही

कम हो जाता है, वह इसलिए क्योंकि उसके सूक्ष्म शरीर की झलक मिलने लग जाती है। मतलब स्त्री का असली स्वभाव, मानसिक झुकाव, विचार, आदतें आदि उसके असली स्वरूप या सूक्ष्म शरीर का परिचय देने लग जाते हैं। शायद स्त्री इसीलिए सबसे दूरी बनाकर रखती है ताकि उसके सुंदर स्थूल शरीर, मधुर आवाज और कामुक हावभाव के आवरण के नीचे उसका सूक्ष्म शरीर ढका रहे और लोगों की उसपर नजर न पड़े।

अगर मैं गहराई से याद करके विश्लेषण करूं तो जिस समय उससे बहस हुई थी, लगभग उसी समय या थोड़ी देर बाद मुझे उसके सूक्ष्म शरीर का अनुभव हो गया था। मतलब उसने अपने अवचेतन मन में यह निर्णय कर लिया था कि आगे क्या करना था। बाद में तो सिर्फ चेतन मन द्वारा उस निर्णय को लागू ही किया गया। आज वैज्ञानिक भी यही दावा कर रहे हैं कि आदमी के द्वारा किया जाने वाला हरेक काम उसके अवचेतन मन द्वारा उसके जाने बिना पहले ही निर्धारित कर दिया गया होता है। आदमी तो बस अपने चेतन मन से उस आदेश का पालन ही करता है। पर मुझे लगता है कि ऐसा आम अज्ञानी जनों के साथ ही होता होगा। योगी या ज्ञानी लोगों का तो अपने ऊपर, यहां तक कि अवचेतन मन पर भी भरपूर नियंत्रण होता है।

दारअसल प्रतिदिन के कुंडलिनीयोग सिद्ध ध्यान अभ्यास से ऊर्जा जागृत अवस्था में बनी रहती है। अगर कुछ दिन अभ्यास छोड़ दिया जाए तो कुंडलिनी ऊर्जा मूलाधार में पुनः सो जाती है। इसलिए इसे प्रतिदिन जगाते रहना चाहिए। कई लोग सोचते हैं कि एक बर जगा दी तो स्थायी तौर पर जग गई। ऐसा नहीं है। सुबह इसको जगाने के बाद शाम होने तक यह पुनः मूलाधार में जाकर आराम से तकिया लगाकर सो जाती है। इसलिए शाम को इसे पुनः जगाकर ऊपर चढ़ाना पड़ता है। इसीलिए योग को दिन में दो बार करने को कहा गया है। कम से कम खाना खाने के बाद 4 घंटे, पानी पीने के बाद आधा घंटे, चाय या दूध या अन्य पेय पदार्थ पीने के बाद 1 घंटा बीत जाना चाहिए, नहीं तो गैस्ट्रिक की शिकायत हो सकती है। अब जब ऊर्जा लगातार मस्तिष्क में जागी रहेगी तो स्वाभाविक है कि सूक्ष्म और पारलौकिक अनुभव तो उपलब्ध करवाती ही रहेगी। कई लोग चार दिन योग करने के बाद बोलते हैं कि उन्हें तो ऐसे कोई अनुभव नहीं हुए। वे तभी होंगे न जब उनके होने का मौका आएगा। ऐसे ही शून्य आसमान से कहाँ टपक पड़ेंगे। सब कुछ मौका आने पर ही होता है। हां, यह जरुर है कि जो लगातार आत्मचेतना के अनुभव में रमा रहेगा , तब ये छोटे-मोटे पारलौकिक अनुभव खुद ही होंगे, जब उनके होने की भौतिक दुनियादारी की परिस्थिति बनेगी। शरीर, सांस या किसी भी मौजूदा चीज़/कार्य/संगीत आदि पर ध्यान लगाने से उत्पन्न आत्म-जागरूकता व्यक्ति को वर्तमान क्षण में स्थिर रखती है। इससे यह आने-जाने वाले विचारों को साक्षीभाव से देखने में सक्षम बनाती है। इससे यह उन विचारों को आनंद के साथ स्वयं में विलीन करके कमजोर बनाती है। इससे यह मानसिक शोर को कम करती है, जिससे पारलौकिक अनुभवों के लिए मन में पर्याप्त खाली जगह बनाने में मदद मिलती है। वैसे तो परम पारलौकिक अनुभव तो आत्मचेतना का अनुभव ही है।

कुंडलिनी योग और कर्म से वर्तमान क्षण में जागरूकता: एक गहन आध्यात्मिक मनोविज्ञान

कर्म से भी अच्छा साक्षीभाव होता है। कर्म से वर्तमान में सबसे ज्यादा उपस्थिति मिलती है क्योंकि इसमें लगभग सभी इंद्रियां काम कर रही होती हैं। जितना ज्यादा और जितना महान कर्म , उतना ज्यादा वर्तमान में जागरूकता। इसीलिए कहते हैं कि हर समय कर्म करते रहो चाहे कुछ भी करो। कर्म का मतलब यहां मानवीय काम ही है। कहते हैं कि जो एक पल भी निकम्मा नहीं रहता वह सौ साल जीता है। उम्र तनाव से घटती है। मतलब कर्म से उत्पन्न विपासना से तनाव घटता है। मेरे दादाजी हर समय कुछ न कुछ करते रहते थे चाहे बेहद हल्काफुल्का काम क्यों न हो। उनके चेहरे पर हमेशा ज्ञान के तेज की चमक होती थी। दरअसल साक्षीभाव और आत्मभाव एकदूसरे से जुड़े हैं। आम जनधारणा हो सकती है कि साक्षीभाव पराएपन का भाव है। क्योंकि लगता है कि हम दूसरे को ही तटस्थ होकर देख सकते हैं, अपने को नहीं। पर ऐसा नहीं है। आपका बेटा अगर मैच खेल रहा हो तो आप उसे एकसाथ साक्षीभाव और अपनेपन के भाव से देखेंगे न कि पराएपन के भाव से। साक्षीभाव मतलब अनासक्ति का भाव। अपने आप से या अपने आप से जुड़ी वस्तु से भला कैसी आसक्ति। क्या आदमी कभी अपने क्रियाकलापों से आसक्ति करता है। नहीं। तभी तो कहते हैं कि घर की मुर्गी दाल बराबर। अपने प्रति या अपनी चीज के प्रति महत्वबुद्धि नहीं होती। आसक्ति हमेशा दूसरे से ही होती है। महत्त्वबुद्धि हमेशा परायों के प्रति होती है। घर का जोगी जोगड़ा और परदेसी जोगी सिद्ध। दूसरे से इसलिए क्योंकि दूर के ढोल सुहाने। तो शास्त्रों में जिस आत्मभाव का अक्सर जिक्र होता है वह एक प्रकार से साक्षीभाव ही है। और वह कैसे वर्तमान में स्थित होने से संभव होता है यह हमने ऊपर सिद्ध कर दिया है। मतलब वर्तमान क्षण से प्रकाशित आदमी को विचारों का प्रकाश महत्त्वहीन सा लगता है। प्रकाश को अपने में क्या महत्त्वबुद्धि होगी भला।

जब हम वर्तमान क्षण या कर्म रूपी प्रकाश से दूर रहकर अंधेरे से आवृत्त जीवात्मा बने होते हैं , उस समय प्रकाश रूप विचारों के प्रति हमारा साक्षीभाव अर्थात अनासक्ति भाव नहीं हो सकता। क्योंकि उस समय हम अचेतन होते हैं, और विचार चेतन होते हैं। दोनों की प्रकृति बिल्कुल एकदूसरे के विपरीत है। उस समय साक्षीभाव का भ्रम हो सकता है, पर वह असल में होता नहीं। उससे तो उल्टा अनासक्तिभाव और साक्षीभाव घटेगा। लोहा चुंबक को खींचता है पर लोहे को नहीं। प्लस चार्ज माइनस को खींचता है, प्लस या न्यूट्रल को नहीं। प्रकाश अंधेरे को खींचता है , प्रकाश को नहीं। इसीलिए कहा है कि अपनी वर्तमान भौतिक स्थिति पर ध्यान लगाकर रखो ताकि आत्मा में अंधेरा न पसर पाए। वर्तमान स्थिति के दृश्य, शरीर और उसकी संवेदनाएं, सांसें और उनकी शरीर पर हलचल, विविध आवाजें, अन्य दुनियादारी के कामकाज, ये सब प्रकाशरूप ही हैं। इनके अनुभव होते हुए जो प्रकाशरूप विचार उठेंगे, उनके प्रति साक्षीभाव पैदा होगा और अनासक्ति भी पैदा होगी। ऐसा इसलिए क्योंकि दोनों किस्म की चीजें प्रकाशरूप हैं। इससे वर्तमान की जागरूकता और विचारों की जागरूकता दोनों एकदूसरे को हल्का करेंगे। हल्का होना ही

अनासक्ति या साक्षीभाव है। वैसे इसे जागरूकता न कह कर अनुभव या ज्ञान कहना चाहिए, क्योंकि अनुभव के ही विभिन्न स्तर होते हैं। जागरूकता का तो एक ही हल्का सा स्तर होता है। हल्के अनुभव को ही जागरूकता कहते हैं। इसमें आदमी सतही तौर पर अनुभव भी कर रहा होता है और नहीं भी। जैसे कहते भी हैं कि फलां आदमी अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक है। मतलब उसकी स्वास्थ्य की ओर नजर है, न कि वह स्वास्थ्य को एक चिकित्सक की तरह विस्तार से समझता है। जागरूकता ही आध्यात्मिक है। यही साक्षीभाव और आत्मभाव के साथ होती है। मतलब जब वर्तमान का अनुभव और विचारों का अनुभव, दोनों एकदूसरे को हल्का करते हैं, तो दोनों जागरूकता बन जाते हैं। ज्ञान से अहंकार बढ़ता है जबकि जागरूकता से अहंकार घटता है।

माला जाप, मंत्र जाप, या अन्य धार्मिक क्रियाकलाप और कुछ ज्यादा नहीं करते, बस वर्तमान से जोड़कर रखते हैं। सबका मूल विज्ञान एक ही है। मतलब सब में समानता है। सब जो अपनी अपनी रुचि और संस्कृति के अनुसार करते हैं, ठीक ही करते हैं। लोग विचित्र तप भी करते हैं। कई लोग लेट लेट कर मीलों दूर मंदिर तक पहुंचते हैं। कई अपने शरीर पर कीलें चुभाते हैं। एक तपस्वी को देखा जो दस सालों से अपने सिर पर पैंतालिस किलो की रुद्राक्ष की माला धारण किए हुए है। वह प्रतिदिन कम से कम बारह घंटे उसको सिर पे धारण करके रखता है। मन में ध्यान चित्र को बना के रखना भी अपनी अंधकारमय जीवात्मा को एक प्रकाश का सहारा प्रदान करके रखना ही है। इसीलिए पतंजलि योगसूत्र में इसे ध्यानालंबन कहा है, मतलब ध्यान के प्रकाश के लिए सहारा। इससे भी आते जाते प्रकाशरूप विचारों से अनासक्ति हो जाती है और साक्षीभाव भी यही है। प्रकाश की प्रकाश से भला कैसी आसक्ति। अंधकार की तो प्रकाश से आसक्ति हो सकती है। निर्धन की धन से हो सकती है। धनी की धन से कैसी आसक्ति। साक्षीभाव मतलब दर्शक बन कर दृश्य को सिर्फ देखना है, उसमें घुसना नहीं है। दृश्य के प्रति यदि आसक्ति होगी तो क्या उसमें घुसे बिना कोई रह पाएगा। नत्थूराम क्रिकेट मैच को दूर से देखकर मजा ले सकता है। उसे किसीकी जीत हार से कोई मतलब नहीं। न ही वह किसी को कुछ समझाएगा, क्योंकि उसे क्रिकेट का गहरा ज्ञान नहीं है। कम ज्ञान और अनासक्ति साथसाथ रहते हैं। पशु एकदूसरे से अनासक्ति से रहते हैं क्योंकि उनमें ज्ञान की कमी होती है। पर असली अनासक्ति तो ज्ञान के साथ होती है जब ज्ञान को जानबूझकर नजरंदाज किया जाता है। इससे आत्मा को ज्ञान का प्रकाश हासिल होता है। जब दिव्यांग या मंदबुद्धि या पशु की तरह ज्ञान ही नहीं है, तो उससे उत्पन्न अनुभवहीनता को मूर्खता कहेंगे, अनासक्ति नहीं। विचार न होना ही अज्ञान है। जब ज्ञानरूप या प्रकाशरूप विचार ही नहीं, तो उसके प्रति कैसे तटस्थ रहेंगे और फिर कैसे उसका प्रकाश आत्मा से जुड़ पाएगा। पर उपरोक्त क्रिकेट मामले में क्या क्रिकेट का अंधा दीवाना दूर बैठा रह पाएगा। वह तो खुद बल्ला पकड़ लेगा। या क्रिकेट खेलने वालों को डिक्टेट करने लग जाएगा। पर अगर क्रिकेट का अच्छा जानकार सबकुछ जानते समझते भी अनासक्त और तटस्थ रह लेगा तो वह सबसे बड़ी अनासक्ति होगी।

पुराने ज़माने में काम की रफ्तार धीमी होती थी। यह इसलिए क्योंकि तकनीक आज की तरह विकसित नहीं थी। वैसे तो विकास के अलग अलग पैमाने होते हैं पर चलो कह लेते हैं कि तथाकथित विकसित नहीं थी। इससे लोगों का मन व्यर्थ के विचारों में भटका रहता था। भारत जैसे देश में तो बरसात में खूब पैदा कर लिया तो उसे पूरे साल भर लगभग बैठ के खाया जाता था। ऐसा इसलिए क्योंकि फसल के लिए पर्याप्त पानी यहां बरसात में ही बरसता है। साल के बाकि समय तो छिटपुट बारिश ही होती रहती है, वह भी कभीकभार ही और बहुत बार तो सूखा जैसा ही पड़ा रहता है। इससे जाहिर है कि खाली बैठकर फालतू विचार लोगों को भटकाते होंगे। संभवतः इस से परेशान होकर ही विस्तृत वेदशास्त्र बने और कर्मकांड पद्धतियां बनीं। इससे दो फायदे हुए। एक तो इनसे आदमी वर्तमान से जुड़ा रहता था और साथ में भगवान की भक्ति भी हो जाती थी। इससे ज्यादा और क्या चाहिए। आम के आम और गुठलियों के दाम। तभी कहते हैं कि वेदशास्त्रों के अनुसार आचरण करने से आदमी का पतन नहीं होता। मतलब इसके बिना मन के विचार उसे भ्रमित करके उसे अंधेरे में धकेल देते हैं। फिर वह उस अंधेरे से प्रभावित होकर पापकर्म करने लगता है, ऊटपटांग खानेपीने लग जाता है। इससे उसकी आत्मा की हानि तो होती ही है, साथ में शरीर को भी नुकसान पहुंचता है। अगर ऐसा होता तो आप ही सोचिए, अगली बरसात आने पर लोग क्या कमाते और क्या खाते। इसलिए दिल को बहलाने का अच्छा और आत्मवर्धक उपाय किया गया था। यह आज तक प्रासंगिक है क्योंकि इसके साथ ईश्वर अराधना जुड़ी है। जिसके साथ ईश्वर अराधना जुड़ जाती है, वह चीज उसी की तरह सनातन हो जाती है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि ध्यान से डी एम एन अर्थात डिफॉल्ट मोड न्यूरल नेटवर्क पर रोक लगती है। मस्तिष्क का यह न्यूरल नेटवर्क आमतौर के अनर्गल विचार पैदा करता है। शायद ध्यान से इसको एनर्जी की आपूर्ति कम पड़ जाती है, क्योंकि ध्यान की प्रक्रिया भी एनर्जी का अच्छा खासा हिस्सा ले लेती है। मतलब मूल चीज तो अनुभवात्मक मनोविज्ञान है। भौतिक विज्ञान तो उस पर आधारित है। सभी भौतिक खोजों का बीज मन में ही पैदा होता है। बाद में वे भौतिक रूप में दिखाई देती हैं। क्योंकि मन की खोजों की चमक आम लोगों को दिखाई नहीं देती, इसीलिए वे उनको नजरअंदाज करके भौतिक खोजों का ही डंका बजाते रहते हैं। पर योगी लोग मन में झांक लेते हैं, क्योंकि वे खुद भी मन के असीम संसार के खोजी वैज्ञानिक होते हैं।

दोस्तो, आज के आधुनिक परिवेश में हर आध्यात्मिक पहलू की जड़ में जाना जरूरी है। आज की वैज्ञानिक माइंडसेट वाली पीढ़ी सतही ज्ञान पे यकीन नहीं करती। वह हर बात की वैज्ञानिक सिद्धि चाहती है। उपरोक्त तरीका कितना ज्यादा वैज्ञानिक है, इसे समझकर हैरानी होती है। पहले मैं भी इन्हें हल्के में लेता था पर जब गहराई में गया तो पूरी सच्चाई पता चली। दुष्प्राप आत्मा को पाने का कितना सरल तरीका है। और तो और इससे भौतिक समृद्धि भी मिलती है। जब साक्षीभाव के अभ्यास से मन का कचरा साफ होता है तो नए और विकसित और वर्तमान से जुड़े विचार पैदा होते हैं जिससे भौतिक तरक्की भी होती है। आत्मा को पाने का यह उल्टा या अप्रत्यक्ष तरीका है।

बात सीधे से न बने तो उल्टा चलो। विचारों के प्रति आत्मभाव बना कर रखने से एक समय ऐसा भी आता है कि आत्मा ही अनुभव में आ जाता है। समुद्र अगर सीधा ढूंढने में न आ रहा हो तो नदी के साथ आगे बढ़ते रहो। समुद्र तक पहुंच ही जाएंगे। गुफा में अगर बाहर निकलने का रास्ता न मिल रहा हो तो रौशनी की दिशा में जाते रहो। खुद बाहर पहुंच जाएंगे। जितना ज्यादा ठंडा अंधेरा होगा वह उतना ही ज्यादा गर्म प्रकाश की तरफ आकर्षित होगा। इसलिए तो सर्दियों में रसोई में चूल्हा बुझाते ही वहां एकदम से ठंड पसर जाती है। यह इसलिए क्योंकि बाहर की ठंड एकदम से चूल्हे की गर्मी की तरफ दौड़ पड़ी और उसे भी ठंडा कर दिया। मतलब अंधेरे और प्रकाश के बीच आसक्ति है। अगर बाहर भी गर्मी है तो वह अंदर को नहीं दौड़ेगी। दूसरे तरीके से बोलें तो अगर बाहर का वातावरण अंदर को नहीं दौड़ रहा है तो इसका मतलब है कि बाहर भी वह गर्म है। इसी तरह अगर आदमी अपनी आत्मा को अंधेरमयी समझते हुए विचारों को अनुभव करेगा तो उनके लिए लट्टू हो जाएगा। मतलब उनमें आसक्त हो जाएगा। उनकी तरफ भागेगा। अपनी दुनियादारी को उनकी तरफ भगाएगा। उनसे आसक्त हो जाएगा। दूसरे तरीके से बोलें तो अगर आदमी विचारों के प्रति आसक्त होता है तो उसकी आत्मा अंधेरा बन जाती है। पर अगर वह वर्तमान पे केंद्रित रहकर उनके प्रति आसक्त नहीं होता तो उसकी आत्मा विचारों की तरह उजली होने लगती है। क्योंकि वर्तमान में जागरूकता से ध्यान वर्तमान और विचारों, दोनों में बंट जाता है, इसलिए दोनों के प्रति अनासक्ति पैदा हो जाती है। यह ऐसे ही है कि अगर पानी को आग पे डालो तो आग भी बुझ जाती है और पानी भी भाप बनकर उड़ जाता है।

शरीरविज्ञान दर्शन की यही खासियत है कि इससे लगातार शरीर पर ध्यान बना रहता है जिससे वर्तमान में जागरूकता बनी रहती है। कुंडलिनी योग से भी ऐसा ही होता है। नादब्रह्म शास्त्रों में इसलिए प्रमुखता से वर्णित है क्योंकि आवाज पर ध्यान से सबसे ज्यादा साक्षी भाव होता है। इसीलिए बातूनी लोग ज्यादा छाए रहते हैं दुनिया में।

दोस्तो, सब शक्ति का खेल है। शक्ति की थोड़ी सी कमी भी बहुत बड़ा अंतर पैदा कर सकती है , जीवन मरण का अंतर या बंधन मोक्ष का अंतर भी। इसीलिए कहते हैं कि शक्ति ही शिव से मिलती है, मतलब शिव से मिलाती है। शक्ति के बिना शिव को पाना नेक्स्ट टू इंपोसिबल जैसा ही है। क्यों प्राणायाम, ध्यान और योग के लिए कहा गया है। शक्ति के लिए ही। वर्तमान में जागरूक रहते हुए भी विचारों को निर्बाध रूप से चलने देने के लिए दोगुनी नहीं तो ज्यादा शक्ति की जरूरत तो पड़ेगी ही। डबल इंजन जो चल रहा होता है। सिंगल इंजन वाले अल्पशक्ति आम आदमी या तो एक समय में वर्तमान में ही व्यस्त रहते हैं या विचारों में ही खोए होते हैं। दोनों मानसिक इंजनों को वे एकसाथ नहीं चला पाते। परिणाम, बंधन।

कुंडलिनी योग हमें सांसों पर नियंत्रण करना सिखाता है

दोस्तो, कुंडलिनी योग के दौरान जब हम प्राणायाम से लंबी और धीमी सांसें लेते हैं, तब विचारों के प्रति साक्षीभव उदित होता है, जिससे तनाव कम हो जाता है। इससे प्रेरित होकर हम दिन भर की दुनियादारी के बीच में भी लंबी और धीमी सांसें लेकर अपने तनाव को कम करने की कोशिश करते हैं। सांसें मुख्यतः तीन किस्म की होती हैं। एक पेट से सांस जो नाभि चक्र पर प्राण को केंद्रित करती है। एक छाती से सांस जो प्राण का आघात अनाहत चक्र पर करती है। एक बहुत उथली सांस होती है, जो प्राणों को विशुद्धि चक्र पर डालती है। आपने देखा होगा कि भावनात्मक रूप से आहत या क्रियाशील होने पर सांस छाती से चलने लगती है। ज्यादा खाने पीने पर सांस नाभि से चलने लगती है। यह योगिक सांस होती है। इसीलिए तो भरपेट स्वादिष्ट भोजन के बाद बड़ा आनंद आता है, खासकर अगर भ्रमण भी कर रहे हों तो। भ्रमण से साक्षीभाव बढ़ जाता है। ज्यादा बोलचाल के दौरान दम जैसा घुटता है क्योंकि सांस उथली और गले तक ही होती है। इसीलिए तो ज्यादा बकवास करने के बाद आदमी लंबी लंबी सांसों के साथ हांफने सा लगता है। जब हम चक्र ध्यान करते हैं तो चक्र के अनुसार ही सांस चलाते हैं ताकि चक्र पर अच्छे से ध्यान हो सके। इस रहस्य को समझकर हम व्यवहार काल में सांस से क्रिया को नियंत्रित कर सकते हैं। अगर हमने ज्यादा ही बोल दिया हो या ज्यादा ही भावनात्मक संबंध स्थापित कर लिया हो तो हम पेट से सांस लेने लगते हैं। इससे वाणी और भावना नियंत्रण में आ जाती है। अगर हम ज्यादा ही शांत, तनावरहित और मौन होने लगें तो छाती से सांस लेना शुरु करते हैं। इससे थोड़ा तनाव आ जाता है, जो दुनियादारी व प्रतिस्पर्धा में टिके रहने के लिए कुछ मात्रा में होना भी जरूरी है। कुछ सांस छाती से ऊपर उठकर गले तक भी पहुंच जाती है।

छाती से सांस ऊपर के सभी चक्रों तक चढ़ती है, क्योंकि छाती से सांस लेते समय कंधे ऊपर को उठे होते हैं। इसीलिए कहते हैं कि प्राण नाभि से ऊपर रहता है। अपान नाभि से नीचे रहता है। जब पेट से सांस लेते हैं तो कुछ प्राण स्वाधिष्ठान चक्र और मूलाधार चक्र तक उतरता हुआ प्रतीत होता है। हालांकि वहां से पुनः सीधा आज्ञा चक्र और सहस्रार चक्र तक ही चढ़ता है सुषुम्ना से होकर। पर शरीर के निचले हिस्से को तो शक्ति दे ही जाता है, जो अपान का मुख्य काम है। इस तरह की बातें सतही तौर पर बड़ी जटिल लगती हैं। पर अगर हम इन्हें इत्मीनान और गहराई से समझें तो सबकुछ बच्चों के खेल जैसा साधारण है। यही तो अध्यात्मवाद की खासियत है। इसमें क्लिष्ट कुछ नहीं है। बस खुला दिल और विचारशील और रचनात्मक दिमाग चाहिए समझने के लिए। अन्य तीन मुख्य प्राण हैं, व्यान, उदान और समान। ये भी धीरे धीरे समझ आ ही जाएंगे। ये लो, समान प्राण का पता चल गया। इसे नाभि का प्राण माना जाता है। नाभि पर सांस डालने से पूरे शरीर में प्राण समान रूप से फैलता है, जैसा हमने ऊपर बताया है। इसका कुछ हिस्सा स्वाधिष्ठान और मूलाधार चक्र को जाता है, जो अपान बन जाता है। वह वहां से पुनः ऊपर चढ़ता

है, और प्राण बन जाता है। इसका थोड़ा सा हिस्सा सीधा भी नाभि चक्र से ऊपर चढ़ता है। शेष चर्चा अगली पोस्ट में करेंगे।

कुंडलीनी योग से प्राण संतुलित हो जाते हैं, जिससे शरीर स्वस्थ रहता है

वैसे प्राण को छाती में माना जाता है। इसे सबसे मुख्य इसलिए माना जाता है, क्योंकि यह श्वास प्रश्वास में मदद करता है। सांस है तो जीवन है। प्र और आन, दो शब्दों से मिलकर शब्द प्राण बना है। प्र का मतलब प्रथम या प्रमुख और आन का मतलब आना या शक्ति का संचार होता है। अपान को नाभि के नीचे माना जाता है। यह स्वाधिष्ठान और मूलाधार चक्रों से जुड़ा है। वैसे भी सभी प्राण किसी न किसी चक्र से जुड़े होते हैं। इसका काम अपशिष्ट उत्सर्जन है। यह संभोग में भी मदद करता है। उदान छाती से ऊपर के हिस्से में रहता है। यह शब्द उत् और आन के मेल से बना है। उत् का मतलब ऊपर होता है। मतलब ऊपर जाने वाली प्राण शक्ति उदान है। ये सभी प्राण आपस में जुड़े होते हैं। सबसे पहले आदमी नाभि से गहरी सांस लेता है। इससे वहां समान प्राण सक्रिय हो जता है। समान नाम इसलिए है क्योंकि इसकी सहायता से उत्पन्न भोजन की ऊर्जा पूरे शरीर में समान रूप से वितरित की जाती है। समान प्राण की क्रियाशीलता से कृकल नाम का उपप्राण भी सक्रिय हो जाता है, जिससे भूख लगती है। उपप्राण भी पांच हैं, जो प्राणों की क्रियाओं में सहयोग करते हैं। यह पूरा शरीर प्राणों से भरा हुआ है। समान की सक्रियता से व्यान प्राण भी वहां सक्रिय हो जाता है। व्यान का व्य शब्द व्यापकता का बोध कराता है। मतलब यह प्राण पूरे शरीर की नस नस में और हर एक कोशिका में फैला है। यह वास्तव में रक्त संचार से जुड़ा है। नाभि पर ध्यान जाने से वहां रक्त संचार तो बढ़ेगा ही, जैसा कि नियम है कि ध्यान वाली जगह पर खून का प्रवाह बढ़ जाता है। फिर रक्त तो हर एक कोशिका तक पहुंचता है। इससे वहां फैला व्यान सक्रिय हो जाता है। फिर तो कोशिकाओं से पाचक एंजाइम का निकलना, पचे हुऐ भोजन को रक्त में अवशोषित करना और उसे पूरे शरीर में भेजने का काम शुरु हो जाता है। कुछ समान प्राण अनपचे अपशिष्ट पदार्थ को नीचे धकेलने और गुदा मार्ग से बाहर निकालने के लिए अपान प्राण बन जाता है। पाचन का ज्यादातर काम हो जाने पर नाभि का अधिकांश समान प्राण छाती पर आकर श्वास और हृदय को शक्ति देने लगता है। मतलब समान प्राण मुख्य प्राण के रूप में कार्य करने लगता है। उदान प्राण उस समान प्राण को ऊपर चढ़ने में मदद करता है। यह पीठ से ऊपर चढ़ते हुऐ महसूस भी होता है। सांस छाती से चलने लगती है। इसीलिए तो खाना पच जाने के बाद आदमी काम की चिंता से तनाव जैसे में आ जाता है। और अगली भूख लगने तक खूब काम करना चाहता है। ऐसा छाती से सांस चलने से होता है। पूरे शरीर में भोजन आ जा रहा होता है और काम करने को मन करता है। फिर आदमी काम से थक कर थोड़ा विश्राम करने लगता है। उस समय उसका प्राण उदान बनकर ऊपर चढ़ने लगता है। इससे विशुद्धि चक्र, उससे जुड़ी वाणी, आज्ञा चक्र , उससे जुड़े चिंतन को शक्ति मिलती है, जिससे आदमी गप्पें हांकता है या ख्यालों में डूबने इतराने लगता है। फिर आदमी सुस्ता कर सोने लगता है। उस समय उसका उदान प्राण नीचे उतरकर स्वाधिष्ठान और मूलाधार में आकर अपान बन जाता है। फिर सो कर जागने के बाद उसका तनाव खत्म हो जाता है, जिससे सांस खुद ही नाभि से चलने लगती है। शांति या नींद और नाभि से सांस, दोनों आपस में जुड़े हैं। एक को करने से दूसरा खुद ही होने

लगता है। इससे अपान ऊपर चढ़कर फिर से समान बन जता है। इससे पुनः भूख लगती है। इस तरह यह चक्र पुनः पुनः चलता रहता है।

सभी प्राण आपस में मिलकर और एक दूसरे की मदद करके शरीर को संतुलित बनाकर रखते हैं। कुंडलिनी योग से हम सभी चक्रों पर प्राणों को केंद्रित करने से एक बार में एक साथ ही पूरे शरीर को स्पष्ट और प्रचुर तौर पर संतुलित कर लेते हैं। अन्यथा यह प्रक्रिया हमारी जानकारी के बिना ही धीमी गति से दिन रात खुद ही चलती रहती है। कभी अगर इसमें असंतुलन हो जाए तो कुंडलिनी योग से यह संतुलित हो जाती है। इसीलिए कहते हैं कि कुंडलिनी योग रोगों से बचाव में व हो जाने पर उन्हें दूर करने में सहयोग करता है। ज्यादातर रोग शरीर में असंतुलन से ही पैदा होते हैं।

यह सारा विवरण तो कुंडलिनी योग में रुचि पैदा करने के लिए ही है। व्यवहार में इसकी ज्यादा जरूरत नहीं पड़ती। पर क्या है कि आजकल के तर्कप्रधान समाज को भी कुछ खुराक मिलती रहनी चाहिए। सीधा योग, आसन और प्राणायाम करते रहने से पूरा शरीर स्वचालित रूप से खुद ही संतुलित बना रहता है। फिर उससे जुड़ी दुनियादारी भी संतुलित ही बनी रहेगी, इसमें भला क्या संदेह हो सकता है। गाड़ी के पुर्जों की जानकारी होगी तब भी गाड़ी चलेगी, और अगर नहीं होगी तब भी चलेगी। हां पुर्जों की जानकारी रखने वाला आदमी उनकी समयवार सर्विस करके गाड़ी को ज्यादा अच्छे से चलाएगा।

कुंडलिनी योग के बिना सभी आध्यात्मिक तकनीकें और विधियां अधूरी हैं

सभी दोस्तों को क्रिसमिस की हार्दिक बधाइयां

दोस्तों! कुंडलिनी योग एक रहस्यमय विद्या है। इसे जितना ज्यादा खंगाला जाए, उतने ही इससे नए-नए अर्थ निकलते रहते हैं। इसकी खोज कभी खत्म नहीं होती। शायद यह इसलिए है क्योंकि यह अनंत से जुड़ा है। अनंत की खोज भी कभी पूरी नहीं होती। अन्य सभी भौतिक दुनियादारी से संबंधित विद्याएं उसी की भांति सीमित हैं और उसी की तरह अंत को प्राप्त हो जाती हैं।

राजयोग वाले कहते हैं कि मन से ध्यान ही सर्वश्रेष्ठ है। शरीर से साधना गौण है? भक्ति योग वाले कहते हैं कि शरीर की परवाह न करो, बस मन भगवान में लगाकर रखो। ज्ञान योग वाले कहते हैं कि बस अपने आपको ब्रह्म समझते हुऐ जीवन बिताओ, बाकि चीजों के चक्कर में ना पड़ो। कर्मयोग की वकालत करने वाले कहते हैं कि कर्म ही योग है। अलग से योग या कुंडलिनी योग करने की जरूरत नहीं है। तप की वकालत करने वाले कहते हैं कि तप से ही पाप नष्ट होते हैं जिससे मुक्ति मिलती है। पर मुझे तो कुंडलिनी योग के बिना सभी योग अधूरे लगते हैं। वह इसलिए क्योंकि शक्ति का मूल स्रोत शरीर ही है। मन में कहीं आसमान से गिरकर शक्ति नहीं आ जाती। शरीर ही मन को शक्ति प्रदान करता है। मन को शक्ति के लिए शरीर के आश्रित रहना ही पड़ता है। फिर शरीर को शक्ति पैदा करने के लिए और उसे मन को प्रदान करने के लिए कुंडलिनी योग करना ही पड़ता है।

मन की शक्ति के बिना राजयोग का ध्यान कैसे कर पाएंगे? चंद मिनिटों या सेकंडों में ही ध्यान चित्र मन से गायब हो जाएगा। हफ्तों या दिनों तक लगातर तो लग गया। जब तक लगातर महीनों तक प्रगाढ़ ध्यान नहीं बना रहेगा, तब तक कैसे सोए विचारों के रूप में पाप भस्म होंगे , और कैसे कुंडलिनी जागरण होगा। बस होगा तो सिर्फ ध्यान का ढोंग और दिखावा। मन की शक्ति के बिना भक्ति योग भी कैसे कर पाएंगे। भक्ति भी एक प्रकार से ध्यान ही है। इष्ट देवता या गुरु का ध्यान ही है। ज्ञान योग के ममले में भी मन की शक्ति के बिना आदमी अपने आपको ब्रह्म कैसे समझ पाएगा। यह समझ विचारों से पैदा होती है और विचार शक्ति से पैदा होते हैं। कर्म योग से मान लिया कि विचारों का कचरा शांत होता है। उससे भी मन में ध्यान चित्र ही मजबूत होता है। पर अगर आदमी कर्मयोग के बाद कर्म से थोड़ा उपरत होकर कुंडलिनी योग नहीं करेगा तो उस कुंडलिनी चित्र को जागने की शक्ति कैसे मिलेगी। अगर आदमी हमेशा कर्मयोग में ही लगा रहेगा तो एक ध्यान चित्र थोड़ा मजबूत होगा और फिर शांत हो जाएगा। उसकी जगह पर कोई नया ध्यान चित्र आ जाएगा। वह भी थोड़ा मजबूत होगा और फिर शांत हो जाएगा। या विरले मामलों में वही ध्यान चित्र हल्की स्मृति के रूप में उम्रभर बना रहेगा। इस तरह यह सिलसिला चलता रहेगा पर कोई भी ध्यान चित्र जाग नहीं पाएगा। मतलब कुंडलिनी जागरण नहीं होगा। तप

से शरीर में शक्ति का संचय होता है। पर अगर उसे कुंडलिनी योग से मन को प्रदान नहीं किया जाएगा तो तप से क्या आध्यात्मिक लाभ मिलेगा। फिर तो तप एक ढोंग मात्र बनकर रह जाएगा।

अगर कोई भी आध्यात्मिक तकनीक अपनाई जाए पर उसके साथ कुंडलिनी योग ना किया जाए तो पूर्ण फल नहीं मिलेगा। पर अगर कुछ भी न किया जाए और सिर्फ कुंडलिनी योग ही किया जाए, फिर भी पूर्ण आध्यात्मिक लाभ की संभावना बन जाती है। वह इसलिए क्योंकि मन का स्वभाव है कि वह हमेशा विकसित होकर परमात्मा की तरफ ही जाता है। जब मन को शक्ति मिलेगी तो वह खुद ही किसी भी तरीके से परमात्मा की तरफ जाने की पूरी कोशिश करेगा। मन परमात्मा का अंश है और वह उसमें ही जुड़कर उससे ही एकाकार होना चाहता है। कुंडलिनी योग के साथ अगर और भी आध्यात्मिक तकनीकें अपनाई जाएं तब तो और भी अच्छा है, और वह सोने पे सुहागे वाली बात है।

कुंडलिनी योग ही मरने की कला सिखाता है

दोस्तों एक प्रासिद्ध कहावत है कि करत करत अभ्यास ते जड़मति होत सुजान। मतलब लगातार अभ्यास से मूर्ख व्यक्ति भी बुद्धिमान और कुशल बन जाता है। मुक्ति को प्राप्त करने के मामले में सभी लोग मूर्ख हैं। तो क्या कुंडलिनी योग के लगातार अभ्यास से मुक्ति अनायास ही पाई जा सकती है। आइए हम इस पोस्ट में इसका विश्लेषण करते हैं।

मैं पुराण पुरुष का परिचय पढ़ रहा था। उसमें लिखा था कि लेखक के परिचित एक गृहस्थ योगी की मृत्यु कैसे हुई? अंतिम समय में उन्होंने अपने प्राण को बिलकुल ठीक भृकुटी के मध्य में केंद्रित कर दिया था। इससे वहां तेज कंपन हो रहा था। फिर वहीं उनके प्राण छूट गए। माना जाने लगा कि वह मुक्त हो गए। उसी आज्ञा चक्र को राम दुवारा कहा गया है। आम बोलचाल में लोगों द्वारा रामद्वारे पर जो मृत्यु का जिक्र किया जाता था, वह आज्ञा चक्र ही था।

अब प्रश्न है कि अंतिम समय में जब सारी इंद्रियां ज्ञानशून्य सी हो जाती हैं, उस समय कोई कैसे शरीर के प्राण को आज्ञा चक्र पर केंद्रित कर सकता है? मुझे तो लगता है कि यह जीवन भर के अभ्यास से खुद ही हुआ। विज्ञान भी दिखाता है कि शरीर का रक्तसंचार गैरजरूरी अंगों से हटकर जरूरी अंगों की ओर स्थानांतरित होता रहता है। तब ऐसा तो बिना योग के भी होना चाहिए। वह तो होता ही है। चाहे कोई योग करे या ना करे, रक्तसंचार तो मस्तिष्क को ही महत्व देता है। आज्ञा चक्र मस्तिष्क के मुख्य भागों में से एक है, और शरीर की मुख्य नाड़ी के रास्ते में सबसे प्रभावी बिंदु है। पर ऐसा कंपन तो सभी में नहीं दिखता। यह तो योगी में ही दिखता है। ऐसा लगता है कि रक्तसंचार स्वचालित रूप से खुद ही नियंत्रित होता है। उसके बारे में जागरूक या अनुभवशील होने की जरूरत नहीं है। पर नाड़ी संचार को ज्यादा प्रभावी बनाने के लिए उसके प्रति जागरूक होना पड़ता है। मतलब उसे अनुभव करना पड़ता है। वैसे तो नाड़ी संचार आधारभूत स्तर पर बिना अनुभव के भी होता रहता है। उसी से तो शरीर क्रियाशील रहता है। पर उसे मुक्ति प्रदान करने के स्तर तक उठाने के लिए उसका अनुभव बढ़ाते रहना पड़ता है। यह कुंडलिनी योग से आसानी से होता है। सारा काम रक्तसंचार नहीं कर सकता। वह बेशक कोशिकाओं को काम करने के लिए सभी जरूरी पदार्थ पहुंचाता है, पर कोशिकाओं को उनका प्रयोग करके काम करने के लिए नाड़ी संचार ही प्रेरित करता है। शायद इस नाड़ी संचार को ही प्राण कहते हैं। अगर हम किसी आदमी के पास मकान बनाने की सामग्री रख दें तो वह एकदम से मकान बनाने नहीं लग जाएगा। उसे उस सामग्री का उपयोग करते हुऐ काम करने के लिए प्रेरित करना पड़ेगा। यह प्रेरक काम नाड़ी संचार से होता है। आप सबको पता है कि मुक्ति के लिए मन में दबे हुए सभी विचारों का आत्मा में प्रकट होना जरूरी है। साक्षी भाव में ऐसा ही तो होता है। इसीलिए तो उससे मुक्ति का अहसास होता है। हम बेशक साक्षी भाव से पिछले सारे दबे विचारों को आत्मा में अनुभव कर लेते हैं पर जो उसके बाद नए विचार पुनः दबते हैं, वे बंधन में डालने के लिए काफी हैं। मृत्यु के

समय क्योंकि सभी इंद्रियों के निष्क्रिय होने से नई दुनियादारी अनुभव नहीं की जा सकती, मतलब नए विचार बनकर मन में नहीं दब सकते। ऐसे में यदि मस्तिष्क में प्राणों के महान संचरण से सभी पुराने दबे हुऎ विचार आत्मा में एक बर भी अनुभव हो जाएं तो मुक्ति में संदेह नहीं होना चाहिए।

शास्त्रों में लिखा है कि मृत्यु के समय अगर भगवान का नाम ले लिया जाए या उनका स्मरण हो आए तो मुक्ति मिलती है। साथ में कई जगह यह भी लिखा है कि अगर जीवन भर का अभ्यास हो, तभी ऐसा किया जा सकता है। यह अभ्यास कुंडलिनी योगाभ्यास की ओर ही इशारा करता है। क्योंकि आम अभ्यास तो उस समय काम नहीं आएगा। वह इसलिए क्योंकि सभी इंद्रियां लगभग मृतप्राय सी होंगी। उनसे कैसे कुछ सोचा जा सकता है। उन मृतप्राय इंद्रियों मैं तभी जान आ सकती है, अगर प्राणों की तेज लहर उन्हें झकझोड़े। अभी क्योंकि रक्तसंचार बाहरी इंद्रियों जैसे आंख, कान आदि से हटकर आंतरिक इंद्रियों जैसे कि मन, और बुद्धि में गया होगा। वह रक्त संचार भी इतना ज्यादा नहीं होगा कि वह वहां के नाड़ी तंत्र को पर्याप्त पोषण दे सके। ऐसे में मूलाधार से उठ रही प्राण की तेज लहर ही उसे क्रियाशील कर सकती है।

फिर कहते हैं कि आदमी अंतिम काल में जिसका चिंतन करता है, अगले जन्म में वह वही बनता है। जड़ भरत ने हिरण का चिंतन किया, इसलिए वह हिरण ही बना। शायद यह चिंतन एकाकी चिंतन है जो प्राण की कमी से होता है। एक चित्र के प्रति ही आसक्ति या श्रेय बुद्धि बनी रहती है। इसीलिए वैसा ही जन्म मिलता है। पर मूलाधार से आ रहे प्राणों के शक्तिशाली स्पंदन से सभी मानसिक चित्र एक साथ महसूस होकर आत्मा में शांत हो जाते हैं। फिर किसी विशेष चित्र से लगाव नहीं रहता।इससे मुक्ति मिलती है। या तो किसीसे आसक्ति न करो या सबसे आसक्ति करो। दोनों का फल एक ही है, अनासक्ति। या तो मृत्युकाल में किसीको याद न करो, या सबको करो। बात एक ही है। पर ऐसा नहीं होता क्योंकि प्राण किसी न किसी को तो याद कराएगा ही। सुषुम्ना में बहने वाली कुंडलिनी शक्ति में ही इतनी सामर्थ्य लगती है कि वह सबकुछ एकसाथ अनुभव या याद करवाती है। शायद यही इसका मूल सिद्धांत है।

पर मृत्यु हमेशा आराम से ऐसे तो नहीं आती कि वह विचारों को आत्मा में विलीन करने का मौका दे। अकाल मृत्यु एकदम से होती है। आजकल के आधुनिक, मशीनी, प्रदूषित, लड़ाई दंगों, और रोगों से भरे युग में यह ज्यादा होती है। पहले इसे बहुत अशुभ और मुक्ति में बाधा माना जाता था। यहां तक कि इससे आत्मा लंबे समय तक बिना शरीर के भटकते मानी जाती थी। इसीलिए कहते थे कि आध्यात्मिक रूप से मृत्यु के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए ताकि अगर अकाल मृत्यु भी आए, तो भी मुक्ति मिल सके। ऐसी तैयारी तो प्रतिदिन के कुंडलिनी योगाभ्यास से ही हो सकती है।

मुझे जब कोरोना हुआ था तो ऐसे ही प्राणों का संचरण मुझे पीठ से महसूस होता था, जो शायद बीमारी से लड़ने के लिए था। उन दिनों में मैं कुंडलिनी योग भी नहीं कर पा रहा था। बड़ी शांति से विचार उभर कर आत्मा में विलीन हो रहे थे। शायद ऐसा ही होता है कि जब योग का अभ्यास छूट जाए तो अभ्यस्त शरीर उस योग को खुद करने की कोशिश करता है। शायद प्राणायम और योग को इसीलिए मुक्तिदायक माना गया है। सदियों से अनगिनत योगियों ने इसे परखा है।

कुंडलिनी चक्र ही ज्योतिष वर्णित आकाश के नौ ग्रह हैं

दोस्तों, सनातन संस्कृति में जन्मदिन के मौके पर एक धर्मिक अनुष्ठान किया जाता है। इसमें सभी देवताओं और ग्रहों की पूजा की जाती है। नौ ग्रहों के नाम पर नौ ग्रंथियां चढ़ाई जाती हैं। हर एक ग्रह का एक विशेष रंग और विशेष अनाज होता है। उस रंग के कपड़े में उस अनाज को बांध कर एक गठड़ी बनाई जाती है। इसे ही ग्रंथि कहते हैं।

सहस्रार चक्र का रंग सफेद होता है। आज्ञा चक्र का रंग नीला, विशुद्धि चक्र का आसमानी, अनाहत चक्र का हरा, नाभि चक्र का पीला, स्वाधिष्ठान का नारंगी और मूलाधार का लाल होता है। तीन मुख्य रंग नीला, हरा और लाल क्रमशः आज्ञा, अनाहत और मूलाधार चक्र के होते हैं। ये तीन चक्र मुख्य होते हैं। ये तीनों चक्र क्रमशः सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के प्रतीक हैं। तीनों के रंग क्रमशः नीला, हरा और लाल हैं।

वैसे तो सफेद रंग को ज्यादा सात्विक माना जाता है। पर गहन चिंतन, समझ और जागरूकता के साथ चिंतन में जो सात्विक गुण है, नीला रंग उसी का प्रतीक है। इसी तरह हालांकि लाल रंग को ज्यादा रजोगुणी माना जाता है, पर मुझे तो हरे रंग में ज्यादा रजोगुण लगता है। हरे रंग में लाल रंग की अपेक्षा ज्यादा नियंत्रित रजोगुण होता है। हृदय से संबंधित भावनात्मक प्रेम के साथ आदमी ज्यादा ही मेहनती बन जाता है। किसान हरीभरी साग सब्जी के बीच रहता है, इसीलिए इतना मेहनती होता है।
प्रकृति में हरे रंग की बहुतायत है और वह भी बहुत क्रियाशील है। हरियाली में रहकर आदमी भावनात्मक व प्रेमी जैसा बन जाता है। इसीलिए तो नवविवाहित जोड़े अक्सर हरीभरी वादियों के बीच घूमने में ज्यादा समय गुजारते हैं। मूलाधार के लिए काले रंग से ज्यादा बेहतर लाल रंग इसलिए है, क्योंकि लाल रंग में तमोगुण के साथ-साथ ऊपर उठना और विकास करना छिपा होता है। यह शक्ति के जागरण और सुषुम्ना से उसके ऊपर चढ़ने के लिए जरूरी है। लाल रंग बेशक हिंसा से जुड़ा होने के करण तमोगुणी है पर इसमें रजोगुण भी होता है। हिंसा यहां वर्चुअल या आभासी है। योग आदि के रूप में शारीरिक कष्ट सहने और तप करने के रूप में ही यह परिलक्षित होती है।

शरीर का ऊपरी भाग सतोगुण से भरा होता है। क्योंकि वह विचारों से जुड़ा होता है। बीच वाला भाग रजोगुणी होता है। क्योंकि शरीर और दुनिया के अधिकांश भौतिक काम बीच वाले हिस्से से ही होते हैं। नीचे वाला हिस्सा तमोगुणी होता है। वहां दुर्गंधयुक्त अपशिष्ट पदार्थ होते हैं। अपशिष्ट मृत्यु का सूचक है। मृत्यु के बाद सबकुछ सड़ गल कर दुर्गंध युक्त अपशिष्ट ही बन जाता है।

सफेद रंग की ग्रंथि का ध्यान सहस्रार में किया जाता है। इसमें बंधे लगभग 1 किलो चावल के दाने अनगिनत सात्विक विचारों के प्रतीक हैं। आज्ञा चक्र की नीली ग्रंथि के तिल के दाने सत्त्व मिश्रित बुद्धिमत्ता के विचार हैं। अनाहत चक्र के लिए हरी ग्रंथि में बंधे हरी मूंग के दाने भावनात्मक विचारों के प्रतीक हैं। पीलापन अनाज, पत्ते आदि के पकने की निशानी है। इसीलिए इस रंग की ग्रंथि मणिपुर चक्र में है। इस चक्र से पाचन के काम होते हैं। मतलब इससे ही अन्न पचता या पकता है। इसके पीले चने की दाल के दाने इस चक्र में दबे और पाचन या भोजन से जुड़े हुऐ विचारों के प्रतीक हैं। संतरे का नारंगी रंग रजोगुणी खट्टेपन का प्रतीक है। स्वाधिष्ठान चक्र भी रजोगुणी ही होता है, क्योंकि यह यौन कामुकता से जुड़ा होता है। मसूर के नारंगी दाने भी यहां फिट बैठते हैं। मूलाधार चक्र की लाल ग्रंथि में बंधे लाल गेहूं या मसूर के लाल दाने तमोगुण मिश्रित रजोगुणी विचार हैं। लाल टमाटर भी यहां काम कर सकते हैं।

मुझे तो लगता है कि तुलादान से भी ऐसा ही प्रभाव पैदा होता है, वह भी बढ़े हुए रूप में। इसीलिए इसको महादान कहा जाता है क्योंकि इससे एकदम क्रूरग्रह निवारण मिलने के साथ शांति सी महसूस होती है। आदमी के वजन के बराबर कुछ किस्मों का मिश्रित अनाज व तेल, नमक जैसे कुछ थोड़े से अन्य खाद्य पदार्थ एक बोरी में इकट्ठे करके एक तकड़ी में तोले जाते हैं। एक तरफ आदमी बैठा होता है, दूसरी तरफ अनाज डाला जाता रहता है। जब आदमी वाला पलड़ा ऊपर उठता है तो एक हल्कापन सा महसूस होता है। ऐसा लगता है कि पाप और ग्रहों का बोझ उतरकर अनाज में चला गया है। फिर वह अनाज या तो सुपात्र ज्ञानी पंडित को दिया जाता है या पवित्र गौवों को खिलाया जाता है। मुझे लगता है कि पापपूर्ण या आसक्तिपूर्ण विचार अनाज के दानों के रूप में बोरी में बंद हो जाते हैं। जैसे ही वह अनाज बाहर खुलकर किसी पवित्र शरीर और आत्मा में विलीन हो जाता है,उसी के साथ यजमान के विचार भी आत्मा में विलीन हो जाते हैं।

ग्रह भी मूलतः सात ही हैं। और चक्र भी सात ही हैं। वैसे तो ग्रह नौ गिने जाते हैं, पर राहु और केतु कोई असली ग्रह नहीं बल्कि छाया ग्रह हैं। मूलाधार को मंगल ग्रह से, स्वाधिष्ठान चक्र को बृहस्पति ग्रह या चंद्रमा से, मणिपुर चक्र को सूर्य से या बृहस्पति से, अनाहत चक्र को चंद्रमा व शुक्र से, विशुद्धि चक्र को बुध ग्रह से, आज्ञा चक्र को शनि से और चंद्रमा से, और सहस्रार चक्र को सूर्य और केतु से जोड़ा जाता है। ग्रहों के ध्यान का तो पता नहीं, पर मुझे तो अनाज की रंगीन गठरी का आगे के चक्र पर ध्यान करने से उससे जुड़े पीछे के चक्र पर शक्ति महसूस होती है। साथ में बीज मंत्र के स्मरण से वह और बढ़ जाती है। क्या आपके साथ भी ऐसा ही होता है? कमेंट में लिखें।

तो क्या नौ ग्रह विभिन्न चक्रों के रूप में हमारे शरीर में ही स्थित हैं? मुझे तो ऐसा ही लगता है। वैसे भी यह शरीरविज्ञान दर्शन के अनुसार ही है जिसके अनुसार समस्त ब्रह्मांड हमारे शरीर के अन्दर है। इन ग्रंथियों को ग्रहों को अर्पित करते हुऐ मुझे चक्रों को बल मिलता हुआ प्रतीत होता

है। बहिर्मुख व ग्राम्य किस्म के पुराने जमाने के लोगों को कुंडलिनी योग और उससे जुड़े शरीर के चक्रों के बारे में समझाना कठिन होता था। इसीलिए इन चक्रों को आकाश में स्थित ग्रहों के रूप में समझाया गया। यह इसलिए ताकि उन लोगों को भी अप्रत्यक्ष रूप से कुंडलिनी योग और चक्र ध्यान का लाभ अनायास ही मिल पाता।

और कहें, तो शक्ति का स्रोत अन्न ही है। मतलब अन्न रूपांतरित होकर शक्ति बन जाता है। इसी वजह से चक्रों पर संबंधित अन्न के दानों के ध्यान से वहां शक्ति ज्यादा महसूस होती है। जन्मदिन के पूजन के अवसर पर उपरोक्त सभी ग्रहों से संबंधित ग्रंथियां सुपात्र पुजारी पंडितजी को दी जाती हैं। वे जब उन ग्रंथियों को बारी बारी से खोलते हैं, तो एक टेलीपेथी जैसी होती है। जब वे लाल ग्रंथि को खोलकर उसके लाल गेहूं के दानों को अपने अन्न भंडार में गिराते हैं तो यजमान के मूलाधार में अटके विचार भी मुक्त हो जाते हैं। जब पंडित जी उस अनाज को खाते हैं तो वे दाने उनके शरीर में विलीन हो जाते हैं। इसके साथ ही यजमान के मूलाधार से छूटे हुए विचार भी उनके विचारों के साथ मिल जाते हैं। जब वे विभिन्न आध्यात्मिक साधनाओं से उन विचारों को आत्मा या परमात्मा में विलीन करते हैं तो यजमान के वे भटके हुए विचार भी खुद ही आत्मा में विलीन हो जाते हैं। इसी तरह जब पुरोहित यजमान के अनाहत चक्र से जुड़ी हरे रंग की मूंग की दाल खाते हैं तो उसमें अटके विचार भी आत्मा में विलीन हो जाते हैं। इसी तरह आज्ञा चक्र से जुड़े तिल को खाने से वहां अटके बौद्धिक विचार मुक्त होकर आत्मा में विलीन हो जाते हैं। यह बहुत गहरा आध्यात्मिक विज्ञान। इसकी जितनी ज्यादा परतें खोलते जाओ, ज्ञान में उतना ही ज्यादा इजाफा होता रहता है।

नवग्रह पूजन में सतनज्जे का प्रयोग भी होता है। मुख्य ग्रह भी सात ही होते हैं और मुख्य चक्र भी सात ही हैं। तुलादान में भी सतनज्जे का प्रयोग सात चक्रों की झाड़ सफाई के लिए ही किया जाता है। हालांकि इसे नवग्रह तोषण का नाम दिया जाता है। हवन में भी सतनज्जे का प्रयोग होता है। जब सात किस्म का अनाज हवन की अग्नि में जलता है, तब सातों चक्रों में दबे विचार जलकर राख हो जाते हैं। इससे मन की सफाई हो जाती है, जिससे वह उच्च आध्यात्मिक साधना के लिए तैयार हो जाता है।

कुंडलिनी योग: ब्लैक होल का वजन कम करने का मार्ग

हाल ही में खगोल वैज्ञानिकों ने एक अद्भुत खोज की है। उन्होंने पाया कि कई पुरानी आकाशगंगाओं में सितारों के बनने की प्रक्रिया लगभग बंद हो चुकी है। इसका कारण वहां मौजूद सुपर मैसिव ब्लैक होल हैं, जो अपनी ऊर्जा और विकिरण से आकाशगंगा के भीतर मौजूद गैस और धूल के बादलों को बाहर धकेल रहे हैं—ये वही सामग्री है जिससे नए सितारे बनते हैं।

अगर इसे ध्यान से देखें, तो यह ब्रह्मांडीय घटना हमारे जीवन की वास्तविकता से गहराई से जुड़ी है। हमारे भीतर का अंधकार, जिसे अध्यात्म में तमोगुण कहा गया है, उसी ब्लैक होल की तरह कार्य करता है। यह अंधकार रचनात्मकता को बाधित करता है, चाहे वह व्यक्ति के स्तर पर हो (व्यष्टि) या समाज के स्तर पर (समष्टि)।

लेकिन इस अंधकार का समाधान संभव है। कुंडलिनी योग, साक्षी भाव और शरीर विज्ञान दर्शन जैसे उपायों से इस आंतरिक ब्लैक होल का "वजन" कम किया जा सकता है। आइए, इसे गहराई से समझते हैं।

शरीर विज्ञान, खगोल विज्ञान, और अध्यात्म का अद्वितीय संबंध

हमारे जीवन को समझने के लिए तीन प्रमुख क्षेत्रों—शरीर विज्ञान, खगोल विज्ञान और अध्यात्म विज्ञान—को अलग-अलग देखने की बजाय, उन्हें एक साथ जोड़कर समझने की जरूरत है।

खगोल विज्ञान ब्रह्मांड के रहस्यों को उजागर करता है।

शरीर विज्ञान हमारे शरीर की संरचना और कार्यप्रणाली की पड़ताल करता है।

अध्यात्म विज्ञान हमारी चेतना, ऊर्जा, और आंतरिक शांति के गूढ़ पहलुओं को उजागर करता है।

प्राचीन काल में लोग अध्यात्म विज्ञान के माध्यम से शरीर और ब्रह्मांड के कई रहस्यों का अनुमान लगाते थे, क्योंकि इसके लिए किसी भौतिक संसाधन या मशीनरी की आवश्यकता नहीं होती थी। आज, आधुनिक युग में शरीर विज्ञान और खगोल विज्ञान ने तकनीकी उन्नति के कारण असाधारण प्रगति की है, लेकिन तुलनात्मक रूप से अध्यात्म विज्ञान को पीछे छोड़ दिया गया है।

इसके बावजूद, अध्यात्म विज्ञान आज भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह न केवल मुक्ति (परम लक्ष्य)की ओर ले जाता है, बल्कि भौतिक संसार के कई अदृश्य रहस्यों को भी समझने में मदद करता है। इसलिए, इन तीनों क्षेत्रों का एकीकृत अध्ययन ही सही दिशा है।

मन का ब्लैक होल: रचनात्मकता में बाधा

ब्रह्मांड में ब्लैक होल की तरह, हमारे भीतर का अंधकार भी ऊर्जा को निगल जाता है और रचनात्मकता को रोकता है।

विचारों का भार: हमारे मन में असंख्य विचार, भावनाएं, और अनसुलझी समस्याएं जमा हो जाती हैं। ये हमारे मन को भारी बना देती हैं, जैसे कोई ब्लैक होल अपनी विशाल गुरुत्वाकर्षण से सबकुछ खींच लेता है।

तनाव और ऊर्जा ह्रास: यह मानसिक भार हमारे शरीर की ऊर्जा को खा जाता है, जिससे तनाव और थकावट पैदा होती है।

रचनात्मकता का अवरोध: जब ऊर्जा का अभाव होता है, तो नए और रचनात्मक विचार पनप नहीं पाते।

इस मनोवैज्ञानिक ब्लैक होल को हम व्यष्टि ब्लैक होल कह सकते हैं। इसका समाधान ढूंढना अत्यंत आवश्यक है, और यहां कुंडलिनी योग तथा साक्षी भाव जैसे उपाय महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

कुंडलिनी योग: आंतरिक अंधकार का समाधान

कुंडलिनी योग हमारी चेतना को जागृत करने की प्रक्रिया है, जिसमें शरीर की सोई हुई ऊर्जा (क ुंडलिनी) को सक्रिय किया जाता है। यह ऊर्जा जब मेरुदंड के सातों चक्रों के माध्यम से ऊपर उठती है, तो मन का अंधकार धीरे-धीरे मिटने लगता है।

कुंडलिनी योग कैसे काम करता है?

1. दबे हुए विचारों का नाश: कुंडलिनी योग की प्रथाओं से मन में दबे हुए विचार और भावनाएं सतह पर आती हैं और धीरे-धीरे नष्ट हो जाती हैं।

2. ऊर्जा की बहाली: यह योग शरीर और मन में नई ऊर्जा का संचार करता है, जिससे तनाव घटता है और मानसिक भार हल्का होता है।

3. रचनात्मक शक्ति का विकास: जब मानसिक अंधकार हटता है, तो मन नई और रचनात्मक विचारधाराओं का केंद्र बन जाता है।

4. आत्मसाक्षात्कार: कुंडलिनी जागरण के माध्यम से व्यक्ति अपनी उच्च चेतना से जुड़ता है और अपने जीवन के गहरे अर्थ को समझ पाता है।

साक्षी भाव: मानसिक ब्लैक होल को हल्का करना

साक्षी भाव का अर्थ है अपने विचारों, भावनाओं, और अनुभवों का एक निष्पक्ष साक्षी बनना।

जब हम अपने विचारों को केवल "देखते" हैं, उनके साथ तादात्म्य नहीं बनाते, तो वे धीरे-धीरे अपनी शक्ति खो देते हैं।

यह प्रक्रिया मन को हल्का करती है और भीतर शांति और स्पष्टता का संचार करती है।

खगोल विज्ञान, शरीर विज्ञान और अध्यात्म विज्ञान का संगम

यह समझना जरूरी है कि खगोल विज्ञान का ब्लैक होल और हमारे मन का ब्लैक होल अलग -अलग नहीं हैं। दोनों ऊर्जा और रचनात्मकता के अवरोध का प्रतीक हैं।

जहां खगोल विज्ञान ब्लैक होल के प्रभावों का अध्ययन करता है,

वहीं शरीर विज्ञान और अध्यात्म विज्ञान इस अंधकार को हल्का करने के उपाय सुझाते हैं।

इस प्रकार, इन तीनों क्षेत्रों का एकीकृत अध्ययन हमें न केवल ब्रह्मांड के रहस्यों को समझने में मदद करता है, बल्कि हमारी आंतरिक यात्रा को भी दिशा देता है।

निष्कर्ष

कुंडलिनी योग, साक्षी भाव, और अध्यात्म विज्ञान के अन्य उपाय केवल व्यक्तिगत विकास तक सीमित नहीं हैं; ये पूरे समाज की रचनात्मकता और प्रगति में योगदान कर सकते हैं।

आइए, हम अपने भीतर के ब्लैक होल का वजन कम करें, ताकि हमारा मन एक नई आकाशगंगा की तरह चमके, जहां विचार और रचनात्मकता के नए "सितारे" जन्म ले सकें। जब हम अपने भीतर के अंधकार को मिटा देंगे, तो बाहरी ब्रह्मांड भी हमें पहले से कहीं अधिक उज्जवल दिखाई देगा।

कुंडलिनी योग से ही असली यज्ञ हवन संपन्न होता है

दोस्तों, ऐसा माना जाता है कि यज्ञ हवन से पर्यावरण शुद्ध होता है। कुछ भारतीय वैज्ञानिकों ने प्रयोगों से इसके जीवाणुनाशक गुण का पता लगाया है। पर यह अंतिम निष्कर्ष नहीं है। यह हवन के आसपास के कुछ सीमित दायरे में ही पाया गया। पर्यावरण पर इसके प्रभाव का कोई पता नहीं है। विस्तृत अनुसंधान इस पर अभी नहीं हुए हैं। यह तो है कि हवन सामग्री में डाले गए सुगंधित पदार्थ जैसे कपूर, गूगल आदि जलकर सुगंध फैलाते हैं, जिससे मन में आनंद और शक्ति महसूस होती है। यह अरोमा चिकित्सा की तरह है।

जैसे विचार अनेक प्रकार के हैं, उसी तरह अन्न भी अनेक प्रकार का है

कुछ किस्म के अन्न सत्त्वगुणी, कुछ रजोगुणी और कुछ तमोगुणी होते हैं। सत्त्वगुणी अन्न सत्त्वगुण से भरे विचारों को पैदा करते हैं। रजोगुणी अन्न रजोगुण किस्म के विचारों को और तमोगुणी अन्न तमोगुणी विचारों को पैदा करते हैं। कहते भी हैं कि जैसा खाए अन्न, वैसा बने मन।

अक्सर देखने में भी आता है कि खट्टा, चटपटा और मिर्च-मसालेदार रजोगुणी भोजन खाने से स्वभाव चंचल सा हो जाता है। इसीलिए बच्चों को कुरकुरे, चिप्स जैसे चटपटे जंक फूड पसंद आते हैं, क्योंकि उनका स्वभाव ही चंचल होता है। व्रत के सादे और नरम भोजन खाने से मन में सात्विकता और भक्ति भाव बने रहते हैं।

मांस, अंडा, मदिरा आदि तमोगुणी सेवन से तमोगुणी विचार पैदा होते हैं। भूत, प्रेत आदि तमोगुणी होते हैं। इसीलिए उनको खुश करने के लिए वामपंथी तांत्रिकों के द्वारा इन चीजों का भोग लगाया जाता है। तमोगुण आत्मविकास की रफ्तार को धीमा कर देते हैं।

हवन का हविष्य और तीनों गुणों की भूमिका

हवन का हविष्य बनाने में कई किस्म के अन्न का प्रयोग होता है। इनमें काले तिल भी एक हैं। वे शायद तमोगुण के परिचायक हैं। सुगंधित व मीठे पदार्थ और गाय का देसी घी सत्त्वगुण के परिचायक हैं।

शक्कर और जौ आदि मोटे अनाज रजोगुण के परिचायक हैं। कई जगह अलग-अलग ग्रह या चक्र के हिसाब से सात प्रकार के अन्न डाले जाते हैं। इनमें भी तीनों गुण शामिल हो जाते हैं। मतलब हविष्य के रूप में तीनों गुणों वाले विचार विद्यमान होते हैं।

जब आदमी अन्न खाता है तो वह पेट में पचता है, जिससे आदमी शक्ति प्राप्त करके कर्म करता है। कर्म वह खाए हुए अन्न के हिसाब से ही करता है।

सत्त्वगुणी अन्न खा के वह हल्का काम करता है, जिससे सत्त्वगुणी विचार पैदा होते हैं।

रजोगुणी और चटपटा अन्न खा के वह चंचलता वाले कर्म करता है, जिससे रजोगुणी विचार पैदा होते हैं।

तमोगुणी और भारी भोजन करके वह भारी काम करता है, जिससे तमोगुणी विचार पैदा होते हैं।

पर जब वह हवन की आग में अन्न को डालता है, तो उससे शरीर को शक्ति नहीं मिलती, क्योंकि उसे पेट की आग ने नहीं बल्कि स्थूल, बाह्य व भौतिक आग ने पचाया या जलाया होता है। ऐसे में नए विचार नहीं बन सकते। क्योंकि नए विचार तो नए कर्म करते हुए बनते हैं।

हवन के अप्रत्यक्ष लाभ

अप्रत्यक्ष रूप से हवन पुराने दबे हुए विचारों को अभिव्यक्त करने का काम करता है। एक कहावत याद रखें, "यदि आप प्रत्यक्ष रूप से कुछ नहीं कर सकते, तो उसे अप्रत्यक्ष रूप से करें।"

जलते हुए अनाज की प्रत्यक्ष रूप से नए विचार उत्पन्न करने में असमर्थता, उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से चक्रों में दबे पुराने विचारों को पुनः प्रकट करने के लिए बाध्य करती है। मतलब उस मिश्रित हविष्यान्न से सातों चक्रों में दबे विचार प्रकट होने लगते हैं, नई-पुरानी विभिन्न भावनामयी यादों के रूप में। मैंने खुद इसे यज्ञ करते हुए महसूस किया है। इससे मन में हल्कापन सा महसूस होता है, जैसे कोई बोझ कम हुआ।

विचारों का दहन और शुद्धि

हविष्य का जलना मन के विचारों के जलने का प्रतीक है। वह तभी जलेगा जब सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्त होगा। मतलब जब बिना इंद्रियों के सहयोग के अपने आप ही अभिव्यक्त होगा। इसलिए हवन करते हुए ऐसा ही महसूस होता है।

हवन करते हुए जो विशेष देवता का विशेष मंत्र बोला जाता है, वह इसलिए ताकि हवन से खाली हो रहे मन में वह पक्की तरह से बैठ जाए, जिससे उस देवता से संबंधित सिद्धि मिल जाए।

कुंडलिनी योग और यज्ञ

कुंडलिनी योग से भी ऐसा ही होता है। पहले आसनों और प्राणायामों से मन और चक्रों का शोर शांत किया जाता है। फिर उसके बाद चक्रों पर किसी विशेष देवता आदि के ध्यान से वहां पर उस देवता की छवि अच्छे से बैठा दी जाती है।

निष्कर्ष

यज्ञ हवन से शरीर के भीतर का पर्यावरण अर्थात मन जरूर शुद्ध होता है। बाहर भी कुछ हद तक शुद्ध होता है।

कुंडलिनी शक्ति को ऊपर उठाने में सांस के खेंचे और आज्ञा चक्र पर दृष्टि का योगदान

मैं कुछ महान योगियों के अनुभवओं से भरे उनके मूल वाक्य पढ़ रहा था। वे दरअसल उन्होंने डायरियों में गुप्त रखे होते थे। मरणोपरांत ही वे डायरियां उनके परिजनों के हाथ लगती थीं। महान योगियों के नाम न ही बताना ठीक रहता है। क्योंकि नहीं तो मानहीनता का आरोप लग सकता है। वे अनगिनत लोगों के पूज्य होते हैं। उन लोगों की भावनाओं को ठेस भी पहुंच सकती है। महान लोगों के कट्टर समर्थक उनकी कही बातों की समीक्षा आदि से रुष्ट हो सकते हैं। इसी तरह अपनी संस्कृति, धर्म, स्वभाव आदि के बारे में कोई भी कड़वी बात नहीं सुनना चाहता, बेशक वह सच्चाई ही क्यों न हो? लेखक को बड़े संभलकर चलने की जरूरत होती है। विवादास्पद मुद्दे इशारों में ही कहने चाहिए। इससे सांप भी मर जाता है और लाठी भी नहीं टूटती।

मुझे जो मुख्य बातें पता चली वे निम्नलिखित थीं। प्राण रुक सा गया, स्वसा भीतर ही भीतर चली, श्वास उल्टी चलने लगी, और मस्तिष्क में भारीपन रहा, सांस रुक सा गया, सुषुम्ना के अंदर प्राण चला। इन्हें योग के कीवर्ड भी कह सकते हैं। इससे जितनी मर्जी योग क्रियाएं बना लो। पर उनका कम ही फायदा है। क्योंकि प्राणायाम मूलतः एक ही है, जो काम करता है। यही वह उल्टा सांस चलना या भीतर ही भीतर सांस चलना है। मेरे ख्याल से इसे ही भीतर ही भीतर सांस का चलना या सांस का रुकना कहा गया है। असल में तो जीवित प्राणी का सांस रुक ही नहीं सकता। हो सकता है कि उल्टी सांस के अभ्यास से ऐसी स्थिति आयए कि सांस इतनी धीमी और हल्की हो जाए कि उसका पता ही न चले। पर ऐसा उल्टी सांस से ही हो सकता है, सीधी सांस से नहीं। उल्टी सांस से ही मन रुकता है। क्योंकि मन सीधी सांस को ही सांस मानता है। उल्टी सांस उसके लिए सांस ही नहीं है। यह एक चेन रिएक्शन की तरह आगे से आगे बढ़ता है। जब मन रुकेगा तो सांस और ज्यादा धीमी पड़ जाएगी। बेशक उल्टी चलती रहेगी। मन के रुकते रुकते एक ऐसी एवस्था आएगी कि सांस लगभग अननोटिस या अपरिलक्षित ही हो जायेगी। ऐसी स्थिति को ही आत्मा या ब्रह्म का साक्षात्कार कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए। सांस लेना ही प्राणायाम नहीं है, पर इसे सही ढंग से लेना ही प्राणायाम है। सांस भरते समय पीठ से शक्ति ऊपर चढ़ते हुऎ महसूस होनी चाहिए, और छोड़ते समय नीचे जाते हुए। ऐसा खुद ही होता है, क्योंकि पहले पेट से सांस भरते समय पेट आगे जाने से शक्ति मूलाधार से चढ़कर मणिपुर चक्र के गड्ढे तक पहुंचती है। तब वहां से ऊपर छाती को ऊपर खींचते हुए चढ़ती है। जैसे ही पीठ और छाती ऊपर को खिंचती है, वैसे ही उससे मेरुदंड की शक्ति भी खुद ही ऊपर खिंच जाति है। दोनों भौहों के बीच ऊपर की ओर को तनिक दृष्टि डालने से उसको और ज्यादा ऊपर को धक्का लगता है। और शक्ति सुषुम्ना रेखा में सीधी एलाइन हो जाती है, आज्ञा चक्र से मूलाधर चक्र तक। कभी सहस्रार से होकर आज्ञा चक्र तक आती है, तो कभी सहस्रार को बायपास करके सीधी आज्ञा चक्र में।

सांस का खेंचा लगा, सांस सिर में चढ़ गया, आंख ऊपर चढ़ गई (मतलब लगातार आज्ञा चक्र पर दृष्टि बनी रही), जीभ ऊपर चढ़ गई (मतलब जीभ उल्टी होकर पीछे तालु में लग गई) आदि पुराने योगी लोगों के बोल दिखाते हैं कि प्राणायाम खींचतान की ही विद्या है, आराम की नहीं। बेशक जब सिर बहुत भारी हो जाए या सिर दर्द होने लगे तब ऐसा खिंचा ना लगाओ। जब सिर हल्का हो जाए तो खींचतान फिर शुरू कर दो। मैने खुद महसूस किया कि दिमाग के इस भारीपन के बाद बड़ी रचनात्मक, भावनात्मक, व्यावहारिक और दिव्य शक्ति सी आ जाती है। सारे मानवीय और देवी गुण खुद ही आ जाते हैं। अनासक्ति और अद्वैत का भाव खुद ही पैदा हो जाता है। ऐसा लगता है कि प्रकृति सेवक की तरह हर तरफ मदद कर रही है। योगी भी ऐसा ही कहते हैं। पर मैं जिस बात को स्पष्ट कहता हूं, और योगी लोग जिसे कहने से कतराते आए हैं, वह यही है कि यह संभोग शक्ति ही है, अन्य कुछ नहीं। यही संभोग शक्ति सही ढंग से किए गए प्राणायाम से ही ऊपर चढ़ती है। अगर सही ढंग से संभोग किया जाए तो कृत्रिम प्राणायाम तो उसके आगे बौना है। बेशक दोनों के मेल से ही पूर्ण और स्थायी लाभ मिल सकता है। पूर्ण लाभ तो खाली प्राणायाम से भी मिल सकता है। पर उसमें ज्यादा समय लग सकता है, अभ्यास को पकने में। सीधी सांस की आदत हमें जन्म जन्मांतरों से है। इसीलिए उल्टी सांस की आदत बनाना इतना आसान भी नहीं है। उल्टी सांस मतलब हवा के आने जाने पर ध्यान नहीं है, पर पीठ में शक्ति के चढ़ने उतरने पर ध्यान है। शक्ति का उतरना खुद ही माना जाएगा न, जब सांस छोड़ते हुए पीठ खुद नीचे को उतरेगी और शिथिल सी हो जाएगी। इसे उल्टी सांस इसलिए कहते हैं क्योंकि इसमें जिस समय शरीर में शक्ति ऊपर चढ़ रही होती है, उस समय सांस या हवा शरीर में नीचे जा रही होती है। और जिस समय शरीर में शक्ति नीचे उतर रही होती है, उस समय शरीर में हवा बाहर निकलने के लिए ऊपर चढ़ रही होती है।

पेट और छाती दोनों से सांस लेने पर ही शक्ति को ज्यादा खेंचा लगता है। बेशक बहुत धीरे ली जा रही हो। अच्छे एक प्राणायाम को 1 मिनट तक भी लग सकता है। जैसे कि पहले पेट भरने पर थोड़ा रु ।क जाएं। फिर दूसरे स्तर का खिंचा छाती को ऊपर उठाकर लगाएं। फिर तनिक रुक जाएं और तीसरे स्तर का खिंचा खुद ही आज्ञा चक्र को ऊपर की ओर देखकर लगता है। एक ऊपर की तरफ को घर घर के जैसी आवाज के स्पर्श की और उससे बढ़ रहे मस्तिष्क के भारीपन की सी अनुभूति होती है। इस भारीपन के बाद नए पुराने विचार आत्मा में ऐसे उमड़ते हैं जैसे कि हवा में हवा के बुलबुले। बड़ा आनंद आता है। इसे योगियों ने ऐसे लिखा है, बड़ा मजा आया, मजा भयो आदि।

कुएं से पानी खींचने के लिए रहट होता है। इसमें एक रस्सी से बाल्टी बंधी होती है। वह रस्सी एक घिरनी पर टिकी होती है। रस्सी का दूसरा सिरा आदमी के हाथ में होता है। जब आदमी रस्सी को खींचता है तो रस्सी का बाल्टी वाला सिरा ऊपर चढ़ता है और कुएं से पानी से भरी बाल्टी को भी ऊपर चढ़ा देता है। जब आदमी रस्सी को ढीला छोड़ता है, तो बाल्टी वाला रस्सी का सिरा कुएं में

नीचे घुसकर खाली बाल्टी को भी कुएं के अंदर ले जाता है। सांस भी इसी रस्सी की तरह और कुंडलिनी शक्ति बाल्टी की तरह काम करती है। जब सांस को अंदर भरा जाता है मतलब सांस की डोर को लंबा खींचा जाता है, तब उसके बल से कुंडलिनी शक्ति पीठ रूपी कुएं में ऊपर चढ़ जाती है और शक्ति रूपी जल को मस्तिष्क में उड़ेल देती है। जब सांस को बाहर निकाला जाता है मतलब सांस की डोर को ढीला छोड़कर छोटा किया जाता है, तब खाली कुंडलिनी शक्ति पीठ में नीचे उतरती है। यह फिर मूलाधार चक्र में अपने अंदर शक्ति रूपी जल भर लेती है, और अगली सांस में पुनः ऊपर चढ़ जाती है। इस तरह यह सांसों का स्वचालित पंप ताउम्र चलता रहता है। इसीलिए अक्सर सांस को डोरी की, मूलाधार को कुएं या गड्ढे की और शक्ति को जल की उपमा दी जाती रहती है।

यही संभोग शक्ति प्रजनन के लिए शरीर के नीचे के भागों में सीमित होकर सिकुड़ी हुई रहती है। कहते हैं कि कुंडलिनी शक्ति शिवलिंग के चारों ओर 3 लपेटे में लिपटी होती है। इसीलिए शिवलिंग से लिपटा हुआ सांप दिखाया होता है। ये सब बातें आपस में जुड़ी हुई हैं। पर असली शिवलिंग में जब यह शक्तिरूप नागिन शिवलिंग के ऊपर फन बनाने को ऊपर उठती है तो नीचे सिर्फ एक ही लपेटा रह जाता है। मतलब मूलाधार में इतनी ज्यादा कुंडलिनी शक्ति है कि उसे खत्म नहीं किया जा सकता है। अगर सारे लपेटे खुल जाएं तो इसका मतलब है कि शक्ति समाप्त होने वाली है। पर एक लपेटे का हमेशा रहना दर्शाता है कि मूलाधार की कुंडलिनी शक्ति असीमित है। मतलब यह लगातार सीधी होकर ऊपर चढ़ती रह सकती है। पर फिर भी बहुत सा भाग इसका मूलाधार में सिकुड़ा हुआ रहेगा ही। इतना सब केवल प्रतीकात्मक तो नहीं हो सकता। अगर ऐसा होता तो वाममार्गी तंत्र का अस्तित्व ही नहीं होता। पर मूल तंत्र तो वही है। बाकि सारे तंत्र तो इसके आधार पर बने हैं। पर लगता है कि ये सभी अपने ही मूल को ठुकराने में लगे हैं।

कुंडलिनी योग बनाम संभोग आधारित गुह्य तंत्र योग: अंतर और संबंधों की विवेचना

दोस्तों! अब कुछ कुछ लगता है कि इस ब्लॉग का फेस तनिक चेंज सा हो गया है। इसमें आज तक संभोग योग या संभोगमिश्रित कृत्रिम योग पर बहुत कुछ लिख लिया गया है। वही सब योगों का मूल भी लगता है। संभवतः इसीलिए खुद ही उस पर सबसे पहले लिखा गया। अब अन्य पूर्ण कृत्रिम योगों की तरफ झुकाव बढ़ रहा है। इनमें से ज्यादातर तो संभोग शक्ति पर ही आधारित हैं। हालांकि सभी योगों का एक जैसा प्रभाव होता है। सिद्धि मिलने में लगने वाले समय में भिन्नता हो सकती है। इसका मतलब है कि मूल अनुभव का वर्णन तो हो ही गया है। यह हमने कहीं पढ़ा नहीं था पर अनुभव से लिखा था। अभी जो पूर्ण कृत्रिम योगों पर पढ़ रहे हैं, वह बिल्कुल अपने लिखे अनुभवों से मेल खा रहा है। मतलब सभी योग एक जैसे ही हैं। फिर भी पूर्ण कृत्रिम योगों के ताजा अनुभव पुनः ताजे रूप में लिखने का अपना अलग ही मजा है।

दिमाग का दबाव दोनों किस्म के योगों में एक जैसा होता है। पर उसे सहने की शक्ति संभोग योग में ज्यादा होती है। इसी तरह व्यवहार में या दुनियादारी में कुछ बाधा दोनों किस्म के योगों में आ सकती है पर संभोग योग से यह बाधा भी आनंदमय जैसी महसूस होते हुए एक खेल की तरह लगती है। साथ में उस बाधा से बचने में प्रकृति की सहायता ज्यादा मिलती है। उससे पैदा दुनियादारी में कमी को दुनिया के लोग ज्यादा बुरी नजर से नहीं देखते। सीधी सी बात है। दोनों किस्म के योगों से प्राण शक्ति मस्तिष्क को बहुतायत में मिलती है। इसीलिए तो दबाव महसूस होता है। इसी वजह से शरीर के अन्य अंग ज्यादा शक्ति न मिलने से दुनियादारी में कुछ पीछे से रह जाते हैं। लक्षण भी लगभग एकजैसे ही होते हैं। जैसे कि काम के प्रति लालसा न रहना, खास कर भौतिक काम के प्रति। हालांकि स्वयंप्रकट काम को आनंद, संतोष, गुणवत्ता व चैन से करता है। कभी एकदम भूख बढ़ाना, कभी एकदम घटना आदि। ऐसा लगता है कि शरीर में कई किस्म के परिवर्तन और एडजेस्टमेंट हो रहे हैं। रचनात्मकता दोनों में बढ़ती है। पर संभोग योग में तो गजब की गुणवत्ता, रोमांचकता, और व्यावहारिकता होती है। इसमें आदमी को आध्यात्मिकता और भौतिकता दोनों को गजब के सामंजस्य के साथ एकसाथ चलाने की शक्ति मिलती है। दोनों में बच्चों के जैसा स्वभाव हो जाता है। यह इसलिए क्योंकि योगी के मस्तिष्क को ज्यादा ऊर्जा मिलने से वह जागरण के लिए तेजी से रूपांतरित हो रहा होता है। बच्चों में भी ऐसा ही तेज मस्तिष्क विकास होता रहता है। दोनों योगों में चेहरे पर एकजैसी बढ़ी हुई लाली, चमक और तेजस्विता छा जाती है। बाहर से देखने पर बताना मुश्किल है कि कौन से किस्म का योग है।

कई मामलों में कृत्रिम योग इसलिए बेहतर है, क्योंकि इसे ताउम्र अच्छी तरह से किया जा सकता है। उल्टी सांस ही तो कृत्रिम योग है, क्योंकि सीधी सांस तो प्राकृतिक है। दरअसल सांस तो सांस ही है। वह उल्टी या सीधी कैसे हो सकती है। उल्टा या सीधा तो इसके साथ लगने वाला ध्यान या जागरूकपना होता है। कुदरती सीधी सांस में जागरूकता सांस की शक्ति के दुनियादारी में

बहिर्गमन पर होती है। जबकि उल्टी सांस में जागरूकता सांस या प्राण की शक्ति के पीठ में उर्ध्वगमन पर होती है। मतलब उल्टी सांस की शक्ति शरीर में ही रहकर ऊपर नीचे बहती रहती है, पर सीधी सांस की शक्ति इंद्रियों के रास्ते दुनियादारी में व्यय होती रहती है। उल्टी सांस के दौरान पीठ में जो बाह्य हलचल महसूस होती है, वह धीरे धीरे अभ्यास से प्राणों की गहरी हलचल को क्रियाशील कर देती है। यही सांस और प्राण का संबंध। वास्तव में सांस खुद प्राण नहीं है, पर यह अपनी हलचल से प्राण को क्रियाशील कर देती है। इसीलिए सांस और प्राण को पर्यायवाची शब्दों की तरह प्रयोग किया जाता है। इसे ताउम्र तो बेशक किया जा सकता है पर उम्र बढ़ने के साथ मस्तिष्क की दबाव सहने की क्षमता घट सकती है, खासकर विशेष रोगों के साथ। इसलिए सावधानी की आवश्यकता होती है। हालांकि अभ्यास से क्या कुछ सुलभ नहीं होता। साथ में, इस के दुष्प्रभाव भी कम होते हैं। दूसरी ओर संभोग योग युवावस्था में ही अच्छे से किया जा सकता है। किशोरावस्था में यह अनुभव की कमी के करण संभवतः सिद्ध नहीं हो पाता। प्रौढ़ावस्था में इससे संबंधित अंगों में दोष पैदा होने की संभावना बढ़ जाती है। संक्रमण फैलने की संभावना तो लगभग हमेशा ही बनी रहती है। कहीं अनचाहा गर्भ ही ना ठहर जाए, इसके लिए भी बहुत सतर्क रहना पड़ता है।

एक प्रकार से देखा जाए तो कुंडलिनी योग ज्यादा प्राकृतिक लगता है क्योंकि इसमें संभोग की सहायता नहीं ली जाती। संभोग तो सिर्फ बच्चे पैदा करने के लिए जवानी तक सीमित है कुदरती तौर पे। जैसी सांस से संभोग करते समय वीर्यपात रोका जाता है और जिससे वीर्य शक्ति ऊपर चढ़ती है, वैसी ही गहरी, धीमी और पेट और छाती से मिश्रित पूर्ण योगिक सांस से प्राणायाम करते समय भी वह ऊपर चढ़ती है। वही कुंडलिनी शक्ति है। यह शक्ति मन के विचारों के कुंडल को खोलकर उन्हें ब्रह्म जितना सर्वव्यापक बना देती है। इसीलिए इसे कुंडलिनी शक्ति कहते हैं। शक्ति को चढ़ाने के कारण वस्तुतः प्राणायाम ही योग है।

संभोग योग में ज्यादा बड़े सिद्ध योगी अपेक्षाकृत बहुत कम ही देखने सुनने में आते हैं। इसकी एक वजह यह हो सकती है कि बहुत से योगी संभोग से मदद तो जरुर लेते हैं। पर जब सिद्धि का समय आता है, तब तक उनकी उम्र काफी बढ़ चुकी होती है। इससे उनकी साधना कृत्रिम योग में स्थानांतरित हो चुकी होती है। दूसरी वजह यह लगती है कि ज्यादातर लोगों की युवावस्था रोजगार से संबंधित चिंताओं और संघर्षों में ही बीत जाती है। जब तक वे सही से जीवन में सुकून से सेटल होते हैं, तब तक जवानी की उम्र और यहां तक कि कइयों की तो प्रौढ़ावस्था की उम्र भी बीत गई होती है। कई लोगों को तो बुढ़ापे में ही सुकून मिलता है। बहुत बिरले और बदकिस्मत लोगों को तो बुढ़ापे में भी नहीं मिलता, फिर योग गया अगले जन्म को। तीसरी वजह यह लगती है कि अगर किसी को इससे सिद्धि मिली होगी तो उन्होंने सामाजिक बहिष्कार के डर से या सामाजिक विरोध के डर से इसे छुपाया होगा, क्योंकि अक्सर इसे एक सामाजिक बुराई की तरह देखा जाता है।

दोनों ही किस्म के योगों से नशा जैसा चढ़ता है। यह अद्वैत का नशा होता है। प्यार का नशा भी कुछ इस तरह ही सिर चढ़ कर बोलता है। यह भी यिन यांग के मिश्रण से उत्पन्न अद्वैत का ही नशा होता है। दोनों से ही प्राण सिर को चढ़ते हैं। कुंडलिनी योग से नशा जैसा चढ़नेऔर प्राण या सांस सिर को चढ़ते का वर्णन बहुत से महान योगी करते आए हैं। मुझे लगता है कि पहाड़ को देखने से जो आनंद और शांति मिलते हैं, वे आँखों और प्राणों के आज्ञा चक्र या सिर की तरफ चढ़ने से मिलते हैं, क्योंकि नजर ऊपर की ओर होती है। एक सामाजिक योग है जिसके बारे में सबसे खुलकर बात कर सकते हैं और जिसे मिलकर कर सकते हैं। दूसरा असामाजिक योग है, जिसे छिप के और बिना किसी को बताए करना पड़ता है। इसीलिए इसे गुह्य तंत्र भी कहते हैं। हालांकि कुछ हद तक तो दोनों ही योग समाज से कटे होते हैं, पर गुह्य योग तो अक्सर घृणित भी बन जाता है। इसे ज्यादातर मामलों में गलत ही समझा जाता है। मुझे तो लगता है कि वह इसलिए क्योंकि लोग दुनियादारी के कामों में अंधे हुए होते हैं। वे इसके लिए शक्ति निकाल ही नहीं सकते। इसके लिए शक्ति और तनावमुक्त और एकांत माहौल चाहिए। इसलिए उन्हें इसके रूप में अपना विनाश जैसा दिखता है क्योंकि शक्ति न रहने से भला क्या बुरा नहीं हो सकता। मतलब अगर दुनियादारी में बेतरबी से उलझे हुए लोग अगर इसे बिना शक्ति के करेंगे, तो दुनियादारी के लिए शक्ति न बचने से नुकसान भी हो सकता है। क्योंकि दुनियादारी की शक्ति तो तंत्र योग खींच लेगा। इससे दुनियादारी में अभ्यस्त आदमी को संभलने का मौका ही नहीं मिलेगा। इससे उसकी शक्ति पर निर्भर लोग भी दुष्प्रभावित होंगे। शायद इसीलिए कहते हैं कि फलां आदमी ने तांत्रिक जादू टोना किया या बुरी नजर लगाई। दरअसल यह सब शक्ति का खेल होता है। इससे बेशक भौतिक शक्ति क्षीण होती है पर उसकी कीमत पर आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है। कई बार आदमी उस आध्यात्मिक शक्ति का प्रयोग किसी के प्रति बुरे विचारों, शब्दों ,कर्मों या अपनी भौतिक तरक्की के लिए करता है। इससे जागृति का रास्ता बंद हो जाता है। कई बार आदमी अपने बचाव में दुनिया से उलझता है। पर शक्ति की हानि तो तब भी तो होती ही है। साथ में समाज में वैर विरोध भी बढ़ता है। इसीलिए कहते हैं कि गुह्य तंत्र को बिना गुरु या बिना अनुकूल परिवेश में करने से परहेज करना चाहिए। यह घर से दूर किसी वनवास जैसी एकांत जगह में ही ठीक रहता है, क्योंकि यह गुप्त विद्या है। एकांत को भी अधिकांश लोग ठीक ढंग से नहीं समझते। वे मानते हैं कि निर्जन बन जैसी जगह ही एकांत हैं। पर अगर वहां भी कोई व्यवधान है जैसे प्रकृति का या जानवरों का या बाहर से लोगों का ही, तो वह भी एकांत कहां है। पर यदि भीड़ भरे शहर में भी साधक को कोई नहीं पहचानता और न कोई व्यवधान डालता तो वह उसके लिए एकांत ही है। वैसे भी समाज में लोगों को गुप्त तंत्र की भनक लगने पर वे वैसे ही जीना हराम कर देंगे। शायद इसीलिए घुमक्कड़ योगी साधक बारंबार अपना स्थान बदलते रहते थे। पर साधारण योग हमेशा कर सकते हैं। यह धीरे धीरे आगे बढ़ता है।

बाबा बाबा कहते हैं खुद,
वीआईपी बन रहते हैं।

बाबा गर अच्छा लगता तो,
चलते उसके कदमों पर।
छोड़ के माया मोह जगत का,
पिंड अपना खुद अर्पण कर।
छोड़ के घर छूटा करता तो,
स्मृति-रोगी बाबे होते।
भांग-नशे में डूबे रहकर,
भंगड़ भी पूजित होते।
माना बुरा पकड़ना है पर,
छोड़ना भी तो बात बुरी।
क्यों न निकट में रहकर भी हम,
सबसे रखें उचित दूरी।
दोनों का संतुलित मिश्रण ही,
असली दुनिया असली त्याग।
दोनों से दोनों मिल जाते,
असली प्रेम और विराग।
जा-जा-जा-जा कहते हैं खुद,
दुनिया में आ रहते हैं।
बाबा-बाबा कहते हैं खुद,
वीआईपी बन रहते हैं।

जगत-त्याग से शक्ति मिलती,
बात किसी से छिपी नहीं।
सिर का बोझ हटा लेने से,
राहत किसको मिली नहीं?
खाली सिर भी भार लगा जब,
पुनः बोझ को रख लेते।
बाबा बन के थक जाने पर,
पुनः गृहस्थ परख लेते।
खाली सिर की शक्ति से,
सोना या चांदी पा लेता।
बाबा कोई पूर्ण को कोई,

उसके पथ को पा लेता।
कोई भांग–चरस में रहकर,
चिलम लगाता है भर भर।
दुनिया में देखा जाता,
खाली दिमाग शैतान का घर।
स्थायी कोई स्थिति नहीं है,
दुनिया हो या मठ–मंदिर।
पुनः जगत में आना पड़ता,
खिले ना पुष्प अगर अंदर।
आईआईटी हो या आईआईएम,
नियम हमेशा रहते हैं।
बाबा–बाबा कहते हैं खुद,
वीआईपी बन रहते हैं।

दुनिया हो या हो आनन,
चक्र हमेशा चलता है।
सबको हर जीवन–हालत में,
हर इक मौका मिलता है।
मौका चूके जो दुनिया में,
वह वन में कैसे पाए।
सुविधा में न जा पाए जो,
दुविधा में कैसे जाए।
उस तक जाना बात दूर की,
इस तक भी कैसे जाए।
शक्ति से ही होता सब कुछ,
वन में ये कैसे आए।
हारे हुऐ खिलाड़ी अक्सर,
पिच को दोषी कहते हैं।
बाबा–बाबा कहते हैं खुद,
वीआईपी बन रहते हैं।

साभार~ भाव सुमन ~एक आधुनिक काव्यसुधा सरस

कुंडलिनी योग बनाम संन्यास~ एक गहन अन्वेषण

सभी मित्रों को प्रयागराज स्थित महाकुंभ मेले की शुभकामनाएं

दोस्तों इस बार सोचा कि जो कुछ मन में है, उसे लिखता जाऊं, बेशक वह व्यवस्थित पोस्ट न बन पाए? मेरे साथ अक्सर ऐसा होता है कि मैं ऐसे ही बैठकर लिखने लग जाता हूं और वह लेख खुद ही एक व्यवस्थित पोस्ट बन जाता है।

महान कुंभ मेले में इस बार कई महान हस्तियां संन्यासी के रूप में दिखीं। उदाहरण के लिए, आईआईटी बाबा जी या गोरख मसानी जी और ममता कुलकर्णी जी। माना कि अधिकांश संन्यासियों को संसार छोड़कर शांति मिली, ज्ञान भी मिला। पर किसी ने भी आत्मज्ञान या कुंडलिनी जागरण मिलने का अनुभव बयां नहीं किया। तो क्या संन्यास सिर्फ शांति और ज्ञान तक ही सीमित रह गया है। सोचा जा सकता है कि कई लोग इसे जगजाहिर नहीं करते। पर यह बात गले नहीं उतरती। अगर वे चमत्कारों से भरी सिद्धियां और शक्तियां सबके साथ साझा कर सकते हैं, तो जागृति के अनुभव को क्यों नहीं। कहीं ना कहीं झोल तो जरुर है। मैं संन्यास परंपरा पर अविश्वास प्रकट नहीं कर रहा हूं। पर इसकी भी अपनी सीमाएं हैं।

संन्यासी लोग आम गृहस्थी लोगों को सादगी, साधना, परोपकार और निर्लिप्तता के साथ जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। पर यह पंथ भी पात्र लोगों के लिए ही सुरक्षित रहना चाहिए। अपात्र लोगों के इसमें प्रवेश से यह दूषित भी हो सकता है। पुराने जमाने में गुरु अपने शिष्य की कठोर परीक्षा लेकर आश्वस्त होने पर ही उसे संन्यासी अपनाने की अनुमति देते थे, ऐसे ही नहीं। वैसे तो अखाड़े में प्रवेश के लिए कठिन परीक्षा होती है, इसलिए इसकी गुणवत्ता पर शक नहीं किया जा सकता। अखाड़ों से इतर इधर उधर घूमते हुए और अपनी मनमर्जी के बाबा सबके बारे में भ्रम पैदा करते हैं। हमारे पूज्य दादा जी ने भी एक बार अपने गुरु से संन्यास में दीक्षा के लिए अनुमति मांगी थी। पर गुरु ने यह कहते हुऐ साफ इन्कार कर दिया था कि तब उनके गृहस्थी के दायित्व अधूरे थे। उन्होंने वह सलाह मान ली थी। इसी वजह से वह गृहस्थी में निर्लिप्त रूप से बने रहे। उन्हीं की बदौलत आज हम यहां पर हैं। अगर वे असमय ही संन्यासी बन गए होते तो हम आज हम न होते, न यह ब्लॉग ही होता, न इतनी पुस्तकें और न ही इतना ज्ञान विज्ञान।

संन्यास लेने से मस्तिष्क का भार कम होता है। इससे साधना करने का बल प्राप्त होता है। पर शक्ति की पर्याप्त उपलब्धता न होने से वह साधना अक्सर समय पर सफल नहीं हो पाती। आपको तो पता ही है कि शक्ति स्त्री के साथ जुड़ी होती है, और संन्यास में उसका साथ वर्जित है। या फिर शक्ति की कमी से सफलता मिलने में अनगिनत वर्ष लग जाते हैं। बहुत से लोग तो इस लंबी अवधि तक इंतजार ही नहीं कर सकते, और कई तो बोरिया बिस्तर बांध कर निकल लेते हैं। और कई साधनाभ्रष्ट होकर भांग आदि के नशे की आदत में पड़ जाते हैं। समय तो हर जगह ही

चक्रवत चलता है। थोड़े समय के लिए दुनिया छोड़ने से बेशक शांति मिल जाए पर जल्दी ही वह शांति भी बोझ लगने लगती है। वह शांति सापेक्ष होती है, निरपेक्ष नहीं। निरपेक्ष तो परम शांति ही है जो पूर्ण समाधि लगने पर ही मिलती है। सिर से बोझ हटाने पर भी कुछ समय के लिए सिर हल्का सा लगता है। पर कुछ समय बाद खाली सिर भी बोझ लगने लगता है। और फिर बोझा उठाने का मन करता है। उस थोड़े से सापेक्ष शांति के समय में अगर जागृति मिल गई तो ठीक है , नहीं तो फिर तो गई बात। यह इसलिए क्योंकि उस शांति का समय पूरा होने पर वह फिर से प्रकृति से विवश होकर दुनियादारी का बोझ उठा लेता है। बेशक वह दुनियादारी फिर मठ मंदिर तक ही सीमित है। पर है तो दुनियादारी ही। वहां से बोझ नहीं लिया तो यहां से ले लिया। सुवर्ण का कलश सिर से उतारा तो मिट्टी का उठा लिया।
बात एक ही है।

इस संदर्भ में मुझे योगवासिष्ठ ग्रन्थ की राजा शिखिध्वज की कथा याद आ रही है। वह महान ज्ञानी और योगिनी चुड़ाला का पति था। राजा राज्य छोड़कर जंगल को चला जाता है, और वहां एक गृहस्थ की तरह रहने लगता है। रानी उसे बहुत समझाती है पर उसके ऊपर तो संन्यास का भूत सवार था। सुबह शाम संध्या, तर्पण, देव बलि, यज्ञ, मूर्ति पूजा करना और उनके लिए पूरे दिनभर व्यस्त रहना। उसे जंगल में रहते हुए कई वर्ष बीत गए पर उसे जागृति का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हुआ। उसकी योगिनी पत्नी अपनी योगविद्या से उसका सारा तमाशा देख रही थी। दयावश वह जंगल में आ गई और उसका दुखड़ा सुनकर दयावश उसे समझाने लगी। वह अपने पति से कहने लगी कि जब उन्होंने गृहस्थी छोड़ दी थी तो जंगल में नई गृहस्थी क्यों शुरु की। एक बोझ उतारकर दूसरा बोझ उठाने से कैसे शांति मिलेगी। जो थोड़े समय के लिए सापेक्ष शांति मिली थी , उसमें उन्होंने असली ध्यान साधना नहीं की बल्कि अपनी संचित ऊर्जा नई गृहस्थी बढ़ाने में लगा दी। अब जब उनका मन साधना को कर रहा है तो जंगली गृहस्थी के जंजाल के कारण शक्ति नहीं बची है। समय से चूके तो चुक गए। फिर राजा ने अपनी पत्नि को अपना गुरु बनाया और उसके मार्गदर्शन में योग साधना की। अंततः उसे ज्ञान मिल गया। फिर जब वह उसे अपने साथ वापिस राज्य में ले जाने लगी तो राजा संकोच करने लगा इस डर से कि कहीं वह फिर अज्ञान में न पड़ जाए। तब रानी ने उसे समझाया कि ज्ञान होने के बाद अज्ञान नहीं होता, चाहे आदमी जिस मर्जी सुखभोग को अपनाए। हां एक शर्त है कि निर्लिप्त रहना पड़ता है। रानी की प्रणय विलास की लालसा भी राजा के असमय वन जाने के कारण अधूरी थीं। फिर वे दोनों सुंदर वाटिकाओं, वनों, उपवनों आदि में विविध विमानों से भ्रमण करते हुए और विविध प्रेमालाप करते हुए अपार सुख के साथ अपने राज्य को लौटे। अनगिनत वर्षों तक सुखपूर्वक राज्य को भोगते हुए वे दोनों मुक्त हो गए। यह इस ग्रन्थ की मुख्य और बहुत सुंदर कथा है, और दर्शाती है कि स्त्रियां भी योग में पुरुषों से कम नहीं बल्कि बढ़कर होती थीं। यह कथा गृहस्थ धर्म की प्रमुखता को भी रेखांकित करती है।

सीमित शांति काल में तंत्रयोग ही जागृति दिला सकता है, पर वह सामाजिक रूप से वर्जित है। बेशक उसमें वाममार्गियों द्वारा कुंडलिनी योग साधना के लिए मैथुन, मांस और मदिरा का प्रयोग होता है। पर वे समाज से दूर छिपे रहते हैं। ये साधन वेदबाह्य हैं। इसीलिए वामतंत्र के अंतर्गत आते हैं। इसका मतलब है कि गृहस्थ तो संन्यास से भी बेहतर है। क्योंकि वहां चोरी छिप के वाममार्गी साधना भी की जा सकती है। गृहस्थ के लिए तो यह वैसे भी संन्यासी से ज्यादा जरूरी है। क्योंकि उन्हें कालसंयोग से यदाकदा ही बहुत सीमित समय के लिए शांति काल मयस्सर होता है।

प्राचीन काल में एक सज्जन सरकारी नौकरी करते थे। उन्होंने बहुत संघर्षपूर्ण जीवन जिया। क्योंकि काम का बहुत ज्यादा दबाव रहता था। पर उन्होंने अपने मन में और अपने दैनिक जीवन में अध्यात्म की लौ नहीं बुझने दी। कालवश उनका स्थानांतरण सीमित समय के लिए एक निर्जन और सुनसान हिमालयी प्रदेश में हो गया। इससे उनको महान सापेक्ष शांति तो महसूस होनी ही थी। वहां किसी योगी के संपर्क में आने से उन्होंने घोर साधना करके जागृति प्राप्त की। और आम सज्जन से माहायोगी बन गए। फिर तो जल्दी ही उनका स्थानांतरण पुनः तनावभरे क्षेत्र में हो गया। हालांकि उन्होंने जैसे तैसे करके और थोड़ी बहुत करके अपनी साधना जारी रखी। इससे कालांतर में उनके अनेक शिष्य भी बन गए। वे सभी गृहस्थ योग का डंका बजाने लगे। बोलने का मतलब है कि ऐसा बहुतों के साथ होता है। मौके बार बार कम ही मिलते हैं। पर कम से कम एक मौका तो सभी को अपने जीवन में प्राप्त होता ही है।

कुछ वैज्ञानिक भी कहते हैं ककि दुनियादारी और त्याग के बीच जितना ज्यादा अंतर होता है, उतनी ही ज्यादा अचानक जागृति मिलने की संभावना होती है। मेरे ख्याल से अगर तो जागृति के लिए साधारण प्रयास भी किया जाए, तब भी वह संभावना कई गुना बढ़ जाती है। अगर तो उसमें तांत्रिक शक्ति भी जुड़ी हो, तब तो कहना ही क्या? अगर संसार छोड़कर ही ज्ञान मिला करता, तब तो स्मृतिविहीन या नशेड़ी लोग परम ज्ञानी होते। इनको संसार का कुछ याद नहीं रहता, मतलब इनका संसार पूरा छूटा होता है। पर ज्ञान के लिए और भी बहुत से कारक उत्तरदायी हैं।

इसका मतलब है कि छोड़ने से कुछ नहीं छूटता। असली छोड़ना तो निर्लिप्त होना ही है। मतलब संसार में रहकर भी उससे निर्लिप्त या अनासक्त रहना ही उसे छोड़ना है। इससे दोनों किस्म के सुख एक साथ मिलते हैं। प्रेम आदि गृहस्थ के सुख भी और त्याग आदि संन्यास के सुख भी। गृहस्थ में रहकर हम सुख सुविधाओं का प्रयोग ज्ञानप्राप्ति के लिए भी कर सकते हैं। संन्यास में तो यह भी संभव नहीं है। बेशक सुख सुविधाएं माया मोह में डालने के करण बुरी हैं। पर यह माया मोह से बाहर निकालने में भी तो उपयोगी हो सकती हैं। जिस छुरे से डकैत आतंक मचा सकता है ,सब्जी भी तो उसी से काटी जा सकती है। हम यहां किसी पद्धति की किसी से तुलना नहीं कर रहे

हैं। न ही हम किसी को अच्छा या बुरा कह रहे हैं। हम केवल वह बता रहे हैं, जहां तक हमारी नजर जाती है। बेशक इसमें दो राय नहीं कि इसके आगे भी बहुत कुछ है।

कुंडलिनी योग से आदमी जागृति और स्वप्न के बीच झूलता रहता है

दोस्तों, खाली दिमाग सच में ही शैतान का घर होता है। इसीलिए मैं हर समय कुछ ना कुछ करता रहता हूं। अगर करने के लिए कुछ ना दिखे तो लिखने लग जाता हूं। मेरा बेटा इसलिए जागकर काम करता है ताकि उसे अच्छे सपने आए। वाह जागृति की दुनिया को नकली और सपने की दुनिया को असली मानता है। उसकी यह बात सुनकर मेरा माथा ठनका। एक नया विचार उमड़ पड़ा सभी ऋषि मुनी और वेद पुराण भी तो यही कहते हैं। वे कहते हैं कि अनासक्ति और अद्वैत से भरा जीवन ही असली है। सपने में भी तो ऐसा ही जीवन होता है। उसमें दुख सुख सभी लगभग एक जैसे ही महसूस होते हैं। सभी कुछ अनुभव रूप होता है। शुद्ध अनुभव। सभी अनुभव सुख रूप होते हैं। पीछे से शेर दौड़ जाए तो भय होते हुए भी भय नहीं लगता। कोई अगर लड़ने लग जाए तो गुस्सा आके भी गुस्सा नहीं आता। पहाड़ से गिर जाए तो दुख होते हुए भी दुख नहीं होता। अगर राज्य भी मिल जाए तो भी सुख होते हुए भी सुख नहीं होता। मतलब एकसार सुख तो हर जगह होता है, पर भौतिकता वाला प्रदूषित सुख नहीं होता। वह सूक्ष्म अनुभवरूप सुख होता है। भौतिक स्थूल जगत सुख दुख के सूक्ष्म अनुभव को प्रदूषित कर देता है। स्थूल जगत से सुख बढ़ तो जाता है, पर उससे दुख भी बढ़ जाता है। गेंद जितनी ऊपर जाती है, उतनी ही नीचे भी गिरती है। सुख तो आत्मा का अपना स्वरूप है। पर जगत उसे अपने अधीन करके उस एकसार आत्मसुख में तरंग पैदा करता है। फिर कालांतर में स्थूल जगत के अभाव में वह तरंग नष्ट हो जाती है। इससे बेशक आदमी एकसार या तरंगहीन आत्मसुख में पुनः पहुंच जाता है, पर उस अवस्था में दुखरूप अंधेरा महसूस होता है। ऐसा भ्रम से प्रतीत होता है। असल में ऐसा नहीं होता। यह ऐसे ही है जैसे अपने शरीर के चारों ओर गोल गोल घूमने से या भ्रमण से रुकने के बाद अपने चारों तरफ सब कुछ थोड़ी देर के लिए घूमता हुआ सा महसूस होता है। इसे चक्कर आना भी कहते हैं। इसी से अज्ञान के लिए भ्रम शब्द का इस्तेमाल हुआ है।

दुनिया में रहते हुए भ्रम से तो कोई बच ही नहीं सकता। हां उसे कम जरूर किया जा सकता है। शायद इसीलिए तो लोग दुनिया छोड़कर साधु संन्यासी बनते हैं, ताकि जगत भ्रम को पैदा ही न कर सके। पर इससे यह नुकसान होता है कि इससे आत्मविकास भी नहीं होता। क्योंकि दुनिया इसके लिए जरूरी है। दुनिया को आवश्यक बुराई भी कह सकते हैं इस मामले में। इसीलिए जिन्हें अच्छी तरह से आत्मजागृति मिल गई है, उनका ही संन्यास लेना उचित माना गया है। मतलब वो आत्म विकास के चरम बिंदु पर पहुंच गए हैं, और उन्हें दुनिया में उलझने की कोई अवशयकता नहीं है। वैसे आवश्यकता तो है। पर सिर्फ शरीर को जिंदा रखने के लिए, क्योंकि जब तक पूर्वकर्मों से निर्धारित आयु पूरी नहीं होती, तब तक तो प्रारब्ध कर्म से जुड़े संस्कार परेशान करते ही रहेंगे। हां, इससे अगले जन्म के लिए संस्कार नहीं बन पाएंगे।

सपना भी तो आत्मसुख को तरंग देता है, पर जागृति अवस्था जितना ज्यादा नहीं। इसीलिए सपने में उस तरंग के हटने पर भ्रम भी जागृत अवस्था जितना नहीं होता। कुछ भ्रम तो होता ही है। इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है कि दुनिया स्वप्न जैसी है, और इसे स्वप्नवत ही समझना चाहिए। वास्तव में ऐसा ही है क्योंकि भौतिक दुनिया मस्तिष्क के अंदर तो घुसती नहीं है। हम तो केवल उसका सूक्ष्म चित्र ही महसूस कर रहे होते हैं, जैसा स्वप्न में करते हैं। पर उसको स्थूल और भौतिक मान लेने से सारी गड़बड़ हो जाती है। आदमी बेशक सुखतरंग के लालच में ही उसे स्थूल और भौतिक मानता है, ताकि तरंग का सुख ज्यादा मिल सके। उस समय उसे उससे कालांतर में आने वाले दुख का एहसास नहीं होता। दरअसल बड़ी तरंग को ही स्थूल जगत कहते हैं और छोटी तरंग को सूक्ष्म जगत। सिनेमा देखते समय स्थूल कुछ नहीं होता पर कई लोग उससे ज्यादा ही आसक्त हो जाते हैं। मतलब उसमें ज्यादा ही डूब जाते हैं। और उससे भरपुर सुख की तरंग बनाते हैं। इससे परदे पर दिख रहे दृश्य सूक्ष्म होते हुए भी उनके लिए स्थूल बन जाते हैं। इसीलिए तो ऐसा वैसा दृश्य आने पर कई बार थिएटर में हंगामा और तोड़फोड़ भी कर देते हैं। कई लोग स्थूल जगत में रहते हुए भी उससे आसक्त नहीं होते। वे बिल्कुल शांत बने रहते हैं चाहे कुछ भी हो जाए। मतलब उनके मन में उससे प्रचंड या ताबड़तोड़ तरंगें नहीं बनतीं। उनके लिए स्थूल जगत भी सपाने की तरह सूक्ष्म होता है। इससे ही वे सुख दुख में एकसमान से बने रहते हैं। पर वही बात है न कि आत्म जागृति के लिए प्रचंड मानसिक तरंगें भी जरूरी होती हैं।

यह दुनिया दोनों तरफ बहने वाली नदी की तरह है। इसीलिए अच्छे से समझ नहीं आती। किसी को यह ऊपर उठाती है, तो किसी को बहाकर नीचे ले जाती है। यह कह सकते हैं कि आसक्तिपूर्ण दुनियादारी को शरीरविज्ञान दर्शन जैसे अद्वैतपरक दर्शनों से शांत भी करते रहना चाहिए। इससे आत्मजागृति भी मिलेगी और भ्रम भी पैदा नहीं होगा। कुंडलिनी योग से यह लाभ मिल सकता है कि उससे अद्वैत भावना के समय महसूस होने वाले समाधि चित्र को धारण करने की शक्ति बढ़ेगी और साथ में मस्तिष्क को ऊर्जा मिलने से दुनियादारी के साथ शरीरविज्ञान दर्शन की भावना अच्छे से कर पाएंगे। क्योंकि हरेक चक्र किसी न किसी किस्म की दुनियादारी से जुड़ा है , इसलिए हर किस्म के काम के समय कोई न कोई चक्र क्रियाशील हो जाएगा। मतलब उस चक्र तक शक्ति का प्रभाव बढ़ जाएगा। इससे उस काम के साथ शरीरविज्ञान दर्शन की भावना आसान हो जाएगी, क्योंकि सब काम शक्ति से होते हैं। वह अतिरिक्त शक्ति हमें मामूली लग सकती है , पर वह बड़े काम की होती है। प्रतिदिन के कुंडलिनी योग के अभ्यास से सभी चक्रों तक नाड़ियां खुली रहेंगी। जब चक्र तक शक्ति जाएगी तो कुछ न कुछ मस्तिष्क के चक्रों तक भी जाएगी ही , क्योंकि सभी चक्र आपस में जुड़े होते हैं। और मस्तिष्क से ही भावना होती है, द्वैतपरक हो या अद्वैतपरक।

बीच-बीच में शरीरविज्ञान दर्शन की भावना से आदमी लगातार जागृत अवस्था और स्वप्न के बीच में झूलता रहेगा। इससे दोनों के लाभ मिलेंगे। जागृत अवस्था के भी और स्वप्न अवस्था के भी। जागृत अवस्था वाले लाभों में कुंडलिनी जागरण के साथ भौतिक दुनियादारी वाले लाभ और स्वप्न अवस्था वाले लाभों में संन्यास वाले लाभ शामिल हैं। मतलब कुंडलिनी योग से जागृत अवस्था स्वप्न अवस्था में बदल जाती है। हालांकि उससे स्वप्न भी जागृत अवस्था में बदल जाता है। जब शरीर में थकान हो, अर्थात अक्षमता अर्थात शक्ति की कमी हो तो आदमी की नशे या स्वप्न के जैसी अवस्था हो जाती है। कुंडलिनी योग से शक्ति मिलने पर वह फिर से दुनियादारी में जागृत जैसा हो जाता है। बेशक बाद में उससे परेशान सा होकर वह पुनः शरीरविज्ञान दर्शन की भावना से अपनी जागृत अवस्था को स्वप्न अवस्था में बदल देता है, और अपने भ्रम को न्यूनतम कर देता है। उस समय शक्ति तो उसमें होती है। वह अवस्था उस नशे या नींद के जैसी अवस्था नहीं होती, जिसमें शक्ति ही नहीं होती। इसलिए उसकी अतिरिक्त शक्ति समाधि के मानसिक चित्र के रूप में रूपांतरित हो जाती है। मतलब उस अतिरिक्त शक्ति से उसकी समाधि लग जाती है।

जब शरीर में अपनी वर्तमान अवस्था की भावना की जाती है, तो सांस तेजी से पेट से बाहर निकलती है, खासकर अगर मस्तिष्क में दबाव ज्यादा हो। इससे ऊर्जा फ्रंट चैनल से नीचे उतरने से मस्तिष्क हल्का हो जता है। मुझे महसूस होता है कि यह नीचे गई ऊर्जा मूलाधार से वापिस मुड़कर रीढ़ की हड्डी से होते हुए पुनः मस्तिष्क को चढ़ जाती है। मतलब ऊर्जा का एक क्लोज सरकट लूप सा बन जाता है। हैरानी यह कि यह ऊपर गई ऊर्जा फिर मस्तिष्क के भार को बढ़ाती नहीं पर हल्का करती है। वैसे भी भार तो ऊर्जा की कमी से बढ़ना चाहिए। शायद मस्तिष्क का पीछे का भाग भावना बनाने में ज्यादा मदद करता है, या यह पूरे मस्तिष्क का मुख्य नियंत्रिक है। इसीलिए इसके पिछले हिस्से को रीढ़ की हड्डी से मिल रही ऊर्जा ज्यादा कारगर होती है। ऐसा भी हो सकता है कि नीचे धकेली गई ऊर्जा ऑक्सीजन से भरी नहीं होती। हृदय चक्र से होकर नीचे गुजरते समय ऑक्सीजन से भरपूर होकर शुद्ध होकर पीठ से ऊपर चढ़ती है। शायद इसीलिए कहते हैं कि ऊर्जा माइक्रोकॉसमिक ऑर्बिट लूप में घूमती रहनी चाहिए। अगर दिमाग में सुस्ती है या कम दबाव है, तो सांस गहरा अंदर भरा जाता है। इससे ऊर्जा ऊपर चढ़कर मस्तिष्क को शक्तिमान कर देती है। मतलब मस्तिष्क में ऊर्जा ही नहीं है तो नीचे क्या उतरेगा। इसीलिए उस समय उसे नीचे से ऊपर चढ़ाने पर ही जोर होता है। यह खुद ही होता है। मतलब जैसे स्थूल भौतिक शरीर संतुलन में रहता है, वैसे ही यह मन को भी बना देता है, अगर सही से इसका ध्यान किया जाए।

कुंडलिनी जागरण भी भौतिक जागृति की तरह ही है। इसे भौतिक जागृत अवस्था का शिखर बिंदु भी कह सकते हैं। क्योंकि इसमें चेतन मन के साथ अवचेतन मन भी जाग जाता है। मतलब कुंडलिनी जागरण के लिए जागृत एवस्था से भी ज्यादा जागना पड़ता है। ऐसा जागृत अवस्था से

ही हो सकता है, स्वप्न अवस्था से तो नहीं। हालांकि जागृत अवस्था को स्वप्न अवस्था बनाने से जो शक्ति की बचत होती है उससे इसे प्राप्त किया जा सकता है। मतलब स्वप्न का इसमें भी योगदान है। पर वह स्वप्न शक्तिहीनता वाला या सुस्ती वाला या मजबूरी वाला स्वप्न नहीं पर जानबूझ कर किया गया स्वप्न है। उस अतिरिक्त शक्ति से किसी गुरु, देवता आदि के रूप के मानसिक चित्र का ध्यान किया जाता है। अभ्यास से वह ध्यान इतना ज्यादा बढ़ जाता है कि वह मानसिक चित्र जाग जाता है। वैसे तो आमतौर पर मानसिक चित्र स्वप्न की अवस्था में होता है , पर कुंडलिनी जागरण के समय वह जागृत अवस्था में आ जाता है। मतलब उस चित्र को बनाने वाली मानसिक तरंग इतनी मजबूत बन जाती है कि वह स्वप्न अवस्था की सीमा को पार कर के जागृत अवस्था के दायरे में प्रविष्ट हो जाता है। उसे जागृत करने वाली शक्ति इतनी ज्यादा होती है कि वह साथ में अवचेतन मन अर्थात आत्मा को भी जगा देती है। इसीलिए सब कुछ अद्‌वैतपूर्ण अर्थात एक जैसा अर्थात अपना ही रूप लगता है क्योंकि तब पहले वाला सोया हुआ अंधेरानुमा आत्मा जागृत कुंडलिनी चित्र जितना जाग कर उसके जितना ही प्रकाशमान बन जाता है। दरअसल जागृत तो आत्मा ही होता है। मानसिक ध्यान चित्र तो उसे जगाने का माध्यम भर ही है। क्योंकि कुंडलिनी चित्र तो एक मानसिक तरंग है, जो पहले ही एक जागृत अवस्था का रूप है। बेशक वह तरंग इतनी हल्की है कि स्वप्न अवस्था के दायरे में आती है। फिर भी तरंग तो तरंग ही है। स्वप्न अवस्था और जागृत अवस्था की मानसिक तरंगें एक ही चीज हैं, सिर्फ उनमें प्रगाढ़ता का अंतर है, अन्य कुछ नहीं। प्रकाश तो एक ही है, उसे कम करने पर वह बदल तो नहीं जाता। बोलने का मतलब है कि ध्यान चित्र सोया ही कहां था जो जागेगा। सोया हुआ तो अवचेतन मन से जुड़ा हुआ आत्मा होता है जो ध्यान चित्र की सहायता से जागता है। ध्यान चित्र तो शक्ति को मस्तिष्क में पहुंचाने का काम करता है। जब वह शक्ति एक निश्चित सीमा से ऊपर पहुंच जाती है तो वह अवचेतन मन को जगा देती है। इसे हम कुंडलिनी जागरण कहते हैं।

आत्मा ही है जो सोया होता है, और जो कुंडलिनी जागरण के समय जाग जाता है। वास्तव में उसका सुषुप्ति का भ्रम दूर होता है, क्योंकि भ्रम से ही वह सोया हुआ प्रतीत होता है। बेशक कुंडलिनी जागरण के कुछ क्षणों के अनुभव के बाद फिर से सो जाता है, पर वह सुषुप्ति उतनी प्रभावी नहीं रहती जितनी पहले थी क्योंकि अब उसने सच्चाई जान ली है। आदमी का अवचेतन मन उस दग्धबीज की तरह हो जाता है जिसमें नया जीवन या जन्म पैदा करने की शक्ति नहीं रहती। वह आत्मा के प्रकाश से जल गया होता है। जले हुए बीज की तरह वह रहता तो है पर नया जन्म नहीं दे सकता। फिर कहते हैं कि जो कुंडलिनी जागरण के बाद कर्म होंगे, वे तो अवचेतन मन को बनाएंगे ही फल देने के लिए। पर जब अवचेतन मन ही जल गया तब उसमें नए कर्म भी कैसे जुड़ सकते हैं। जब अवचेतन मन के अस्तित्व का आधार ही खत्म हो गया तो नया भी कैसे बनेगा। पर फिर कर्म का फल कैसे मिलेगा। फिर तो आत्मजागृत आदमी कुछ भी पाप कर्म बिना किसी भय के कर सकता है। तो इसके जवाब में कहते हैं कि अवचेतन मन के न रहने से उसकी कर्म और फल के प्रति आसक्ति नहीं रहती। प्रकाश की प्रकाश के प्रति कैसी

आसक्ति। प्रकाश के प्रति तो अंधकार की ही आसक्ति होती है। वह तो समय के साथ बहता रहता है। यदि अज्ञानवश या मजबूरी में उससे पाप कर्म हो भी जाएं तो उसे उसका फल जल्दी से और हल्के रूप में मिलता है क्योंकि उसकी आसक्ति भी हल्की ही थी। अगर उसे उस जीवन में फल न मिल सके तो भी वह उन्हें प्रकृति को सौंप कर मुक्त हो जाता है। अब प्रकृति की मर्जी कि वह उसके फल किसको दे। शायद इसीलिए कहते हैं कि महापुरुषों द्वारा किए गए कर्मों का फल पूरी सृष्टि या पूरे समाज को भुगतना पड़ता है। ऐसे बहुत से धर्म संस्थापकों, धर्मगुरुओं और महान या वैश्विक नेताओं के उदाहरण हैं। क्यों कई धर्म आजतक एक दूसरे के खून के प्यासे बने हुए हैं , इसे भी इससे जोड़ा जा सकता है। ये सभी अनुभव और विचार शास्त्रों के हैं, जिनका हम यहां यथासंभव वैज्ञानिक विश्लेषण कर रहे हैं। जब आत्मा प्रकाशित या प्रकाशमान हो गया तब तो हर एक वस्तुचित्र या मनतरंग या पूरी दुनिया अपने जैसे ही लगेगी क्योंकि सभी चीजें प्रकाशमान ही हैं। प्रकाश से प्रकाश की कैसी भिन्नता। यह प्रकाश आम प्रकाश से भी बहुत ऊपर मतलब चेतना का प्रकाश होता है।

कुंडलिनी योग बनाम क्रिया योग: अंतर, लाभ और आपके लिए कौन सा बेहतर है?

दोस्तों, क्रिया योग अक्सर चर्चा में रहता है। पर क्या यह पतंजलि योग से भिन है? बिलकुल भी नहीं। क्रिया योग तो पतंजलि योग सूत्रों में ही छुपा हुआ है। शुरु में यम, नियम तो अपनाना ही पड़ेगा तभी तो मन शांत और स्थिर होगा। आसन तो फिर खुद ही लगेगा। क्योंकि चंचल मन वाला आदमी ही दौड़ लगाता है। शांत मन वाला तो चुपचाप बैठकर आराम फरमाता है। जब आदमी बैठेगा तब सांस तो लेगा ही। सांस भी अच्छी तरह से ठोक बजा कर लेगा। चंचल आदमी की तरह डरकर नहीं लेगा। जब प्राण की शक्ति फालतू दौड़ में बरबाद होने से बचेगी, तो वह सांस के लिए ही प्रयुक्त होगी। अच्छी, लंबी और गहरी सांस लेने से उसे आनंद भी आएगा। गहरी सांस से मूलाधार की शक्ति ऊपर चढ़ेगी। उससे दबे विचार उभरेंगे और आत्मा से जुड़ेंगे। दबे विचार का उभरना भी नहीं कह सकते। खिला हुआ फूल बनना कह सकते हैं। मतलब है तो सबकुछ वही पुराना पर वह अब बंद फूल की तरह सम्पीड़ित और अंधकारमय नहीं बल्कि खुले फूल की तरह मुक्त और प्रकाशमान है। इसीलिए चक्रों को कमल पुष्पों का रूप दिया गया है। फूल खिलने से ही आनंद आता है। आम आदमी यहीं रुक जाएगा। पर खास जिज्ञासु आदमी योग को अपनाते हुए सांसों की खूब खींचतान करेगा। इससे उसकी शक्ति मूलाधार, स्वाधिष्ठान और मणिपुर चक्रों को पार कर जाएगी। उसके ऊपर वह शक्ति खुद ऊपर चढ़ेगी। कई योगी लोग ऐसा कहते हैं कि फिर वह नीचे नहीं आएगी पर मुझे लगता है कि बीच-बीच में खींचतान लगानी ही पड़ेगी। क्योंकि स्थायी स्थिति किसी की भी नहीं है, शक्ति की भी नहीं। यह खींचतान गहरे श्वास और प्रश्वास को रोक कर लगती है। बेशक प्रतिदिन का अभ्यास साधारण गहरे प्राणायाम का हो, सांस रोकने का न हो, पर हफ्ते में एक दो दिन तो झटके देने ही पड़ते हैं। अज्ञानरूपी शत्रु का क्या भरोसा , कब हमला कर दे। शत्रु को कमजोर नहीं समझना चाहिए। होता क्या है कि अगर सांसों की खींचतान से शक्ति को हम हमेशा ऊपर ही चढ़ाते रहेंगे तब आज्ञा चक्र में पर्याप्त ध्यान नहीं हो पाएगा। क्योंकि हम प्राणायाम के दौरान रीढ़ की हड्डी पर और चक्रों पर सनसनी पर ध्यान देते हुए शक्ति को ऊपर चढ़ाने में व्यस्त रहेंगे। इसलिए वह शक्ति भौतिक दुनियादारी में खर्च हो जाएगी। इसीलिए कहा है कि जब शक्ति आज्ञा चक्र में पहुंच जाए तो ध्यान शुरु कर दो। जब ध्यान लग गया तब तो वह अपने को खुद बढ़ाता रहेगा क्योंकि वह आनंद है और आनंद खुद सबको अपनी तरफ खींचता है। जब प्राण शक्ति आज्ञा चक्र में पहुंचती है तो खुद पता चल जाता है। महान सत्त्वगुण महसूस होता है। आदमी रूपांतरित सा हो जाता है। सभी दैवीय गुण खुद ही आ जाते हैं। कुछ करने या पढ़ने की जरूरत नहीं होती। पशु पक्षी भी उसे ध्यान और कौतूहल से देखने लग जाते हैं। यही तो सांस और प्राण का कमाल है। इससे प्रत्याहार भी खुद ही होगा। क्योंकि जब आदमी को अंदर ही आनंद मिलेगा तो वह उसके लिए इंद्रियों वाला खर्चीला रास्ता क्यों अपनाएगा? आज्ञा चक्र में तो धारणा, ध्यान, ध्यान, समाधि खुद ही लगते हैं। मतलब ध्यान चित्र बहुत स्पष्ट हो जाता है। कई तांत्रिक किस्म के लोग आज्ञा चक्र तक एकदम से पहुंचने के लिए पंचमकारों का प्रयोग करते हैं। उसके बाद उन्हें छोड़ देते हैं। क्योंकि आज्ञा चक्र का सत्त्वगुण

उन्हें उनके प्रयोग से रोकता है। मतलब सीढ़ी से ऊपर चढ़ो और फिर उसे फेंक दो। अगर सीढ़ी लगाकर रखोगे तो फिर गलती से दोबारा नीचे उतर जाओगे। कोई साधक अगर इनका प्रयोग जारी रखता है तो उसे कुंडलिनी जागरण जल्दी से तो मिल जाएगा पर वह उस अनुभव को ज्यादा देर तक झेल नहीं पाएगा। और कुंडलिनी को एकदम से नीचे उतार देगा। क्योंकि पंचमकारों में तमोगुण और रजोगुण होता है, जो सतोगुण को ज्यादा नहीं झेल पाता। फिर भी न होने से तो अच्छा ही है यह क्षणिक अनुभव भी। आज्ञा चक्र का ध्यान अंदर घुसकर दिमाग के बीच में त्रिकोण जैसा बनाता है। इसके तीनों छोरों पर तीन बिंदु हैं। मतलब यह त्रिकोण पतली नाड़ियों की सनसनी रेखाओं और सनसनी बिंदुओं के रूप में महसूस होता है। उसके बीच में श्री बिंदु पर भी ध्यान और संवेदना जमते हैं। श्री बिंदु से थोड़ी सी पीछे को एक सनसनी रेखा और जाती है। वह सहस्रार बिंदु पर खत्म हो जाती है। यही परम दिव्य स्थान है। यही अंतिम लक्ष्य है। यहीं पर मोक्ष मिलता है। वहां पर पीठ से रीढ़ की हड्डी से ऊपर आ रही मूल सनसनी या सुषुम्ना भी जुड़ जाती है। ये सब अभ्यास के अनुभव हैं। ये कोई भौतिक रेखा, बिंदु, त्रिकोण, चक्र आदि नहीं हैं। कई योगी बोलते हैं कि आज्ञा चक्र से सहस्रार चक्र बिंदु तक जाते समय अंधेरमय आकाश, फिर प्रकाशमय गुहा आदि आदि महसूस होते हैं। ये सब अनुभव सुनकर और पढ़कर अजीब लगते हैं। पर अभ्यास जारी रखने पर ये खुद महसूस होते हैं। किसी को बताने की जरूरत नहीं। कई योगी कहते हैं कि योग के समय चक्रों पर या पीठ आदि पर ध्यान नहीं देना चाहिए। बल्कि केवल भ्रुवों के बीच में , आज्ञा चक्र बिंदु पर टिका कर रखना चाहिए। वे भी तो ठीक ही कहते हैं। मुख्य लक्ष्य आज्ञा चक्र ही है। क्यों न सीधे टारगेट पर निशाना लगाएं? बाकि के चक्र खुद ही आज्ञा चक्र से जुड़े होते हैं। इसलिए आज्ञा चक्र के ध्यान से खुद ही अन्य चक्रों का ध्यान भी हो जाता है। सूरज के पीछे भागोगे तो चंदा रास्ते में खुद ही पकड़ में आ जाएगा। केवल चांद को पाने से सूरज नहीं मिलेगा। हां, रास्ता थोड़ा हल्का या आसान हो जाएगा पर समय बहुत लगेगा। क्या पता तब तक आदमी दुनिया में जिंदा भी रहे। ऐसे ही कई लोग चक्रों पर अपना बहुत सा कीमती समय बरबाद करते हैं। जब पतंजलि कहते हैं कि ध्यान से ही परम सिद्धि मिलेगी, तो ध्यान आज्ञा चक्र से नीचे तो होगा नहीं? कई तांत्रिक आज्ञा चक्र पर ध्यान चित्र को संभोग योग से एकदम से बहुत मजबूत कर देते हैं और बहुत जल्दी या यूं कहो कि चमत्कारिक रूप से समाधि और आत्मज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। पर बात वही जो पहले कही थी। कुछ पाने के लिए कुछ खोना भी पड़ता है। वहां जगमगाता ध्यान चित्र कब सहस्रार में पहुंचकर समाधि बन जाता है, और कब आत्मज्ञान में बदल जाता है , पता ही नहीं चलता। यह इतना जल्दी होता है कि फलां फलां रेखाचित्र, फलां बिंदु, और फलां त्रिकोण को अनुभव करने का मौका ही नहीं मिलता। तभी तो अगर उनसे योग के तरीके और अनुभव के बारे में पूछा जाए तो उन्हें ज्यादा पता नहीं होता। वे तो बस आत्मज्ञान की बात करते हैं और उसे प्राप्त कराने वाले संभोग योग की। उन्हें तो बस फल चाहिए होता है, पेड़ पे चढ़े उनके दुश्मन। पर यह सब के बस की बात भी नहीं है। खैर आत्मज्ञान के बाद जगत के फायदे के लिए वे जानबूझकर सही तरीके से योग करके उसके सभी अनुभव सबको बताते भी हैं। उन्हें अपने लिए तो उनकी जरूरत नहीं, पर जनहित के लिए ही ऐसा करते हैं। यही बोधिसत्व की निशानी है। कई

रूढ़ीवादी योगी तो अनुभव को कोहिनूर हीरे की तरह छुपाते हैं। जैसी अनुभव की चमकती रेखा सुषुम्ना के रूप में महसूस होती है, वैसा ही चक्र की जगह पर अनुभव रेखाओं का गोलाकर जाल होता होगा। इसे ही चक्र दर्शन कहते होंगे। पर इनसे फायदा क्या? सीधा आज्ञा चक्र में जाओ और मुक्त हो जाओ।

धारणा ध्यान के बाद सभी योग एकसमान ही हैं। यहां तक पहुंचने के लिए ही विभिन्न उपाय व तकनीकें हैं। हालांकि मूल मकसद तो यही है कि शक्ति चाहिए होती है। इसके लिए कोई मूलाधार से अतिरिक्त शक्ति उठाता है। कोई दुनियादारी छोड़कर शक्ति को बचाता है। तो कोई दुनियादारी में ही अद्वैत भाव रखकर शक्ति को बचाता है। हो गए न तीन किस्म के योग। कुंडलिनी योग या हठ योग, संन्यास योग और कर्म योग। मूल तो ये तीन योग ही हैं। बाकि जितने मर्जी योग बना लो। भक्ति योग भी कर्म योग का ही उप योग है।

मूल क्रिया योग तो यही कहता है कि भ्रूमध्य में ध्यान करते हुए ओम जाप के साथ प्राणायाम के इलावा कुछ नहीं करना है। पर इसको कई बाद के योगियों ने इतना जटिल बना दिया है कि मूल क्रिया योग तो गायब सा ही लगता है। मानसिक ओम जाप की यह खासियत है कि यह भ्रूमध्य पर ध्यान चित्र को मजबूत करता है। 4 से छह बार सांस भरते हुए मन में उच्चारण करो और इतना ही सांस छोड़ते समय। अनुलोम विलोम प्राणायाम करते समय जो एक उंगली की टिप भ्रूमध्य पर टिकी होती है, उससे भी ध्यान को वहां केंद्रित करने में कुछ मदद मिलती है। कई लोग बेचारे उनके झमेले में पड़ कर सारी उम्र चक्रों और सुषुम्ना में ही उलझे रहते हैं। असली ध्यान तक पहुंच ही नहीं पाते। कुछ योगी लोग गजब की साधना करके इन तथाकथित अजीबोगरीब अनुभव रेखाओं, बिंदुओं, त्रिकोणों, प्रकाशों, अंधकारों, गुफाओं, और चक्रों को अनुभव तो कर लेते हैं और किस्म किस्म की सिद्धियां भी हासिल कर लेते हैं। पर आत्मज्ञान से और यहां तक कि असली समाधि से भी कोसों दूर होते हैं। इसीलिए वे आत्मज्ञान का अनुभव नहीं बता पाते और पूछने पर कहते हैं कि गुरु इसे औरों को बताने को मना करते हैं। कई बोलते हैं कि जो कहता है कि उसे आत्मज्ञान हुआ है, उसे नहीं हुआ है, और जो कहता है कि उसे नहीं हुआ है, उसे हुआ है। वे कहते हैं कि अहंकार आने से आत्मज्ञान गायब हो जाता है। पर ऐसा कैसे हो सकता है। अगर कोई अपने गले में लटके हुए अपने जीते हुए पारितोषिक को लोगों को दिखाए तो वह भला कैसे गायब हो जाएगा? माना कि उसे तो कोई चुरा भी सकता है पर आंतरिक अनुभव को तो कोई चुरा भी नहीं सकता। हो सकता है कि कुछ और मतलब हो। खैर हम इस चर्चा में नहीं पड़ना चाहते।

एक हल यह है कि जैसा ठीक लगे वैसा करो पर योग के मुख्य लक्ष्य आज्ञा चक्र में धारणा, ध्यान और समाधि और सहस्रार चक्र में आत्मज्ञान पर भी हमेशा नजर बनी रहे। तकनीकें बदलो , सुधारो, कुछ भी करो पर चलते रहो। खड़े न रहो, एक ही जगह। प्रयोग से समझो और आगे निकलो। हो सकता है कि कोई आदमी दुनिया को कोई नई योग तकनीक ही दे जाए। भ्रूमध्य पर

ध्यान का मतलब यह नहीं कि ऊपर को तिरछा या भेंगा देखो पर यह कि अंधेरे में आँखें बंद करके उनके बीच में ध्यान करो। हालांकि आँखें खोलकर तिरछा देखने से भी शक्ति तो ऊपर चढ़ती ही है, पर यह ध्यान नहीं होता। इससे शक्ति ही मूलाधार से ऊपर चढ़ती है। बेशक ध्यान शक्ति से ही होता है। ऐसा शांभवी मुद्रा में किया जाता है। अंधेरे में भ्रूमध्य पर ध्यान करते समय बेशक बीचबीच में बंद आंखों को हिलाते रहो, ताकि आज्ञा चक्र गुम न हो जाए। जितना यह चक्र बाहर है उससे कहीं ज्यादा भीतर को भी है। सीधी सी बात है कि ज्ञान बढ़ाते रहना चाहिए और जरूरत के हिसाब से चलते रहना चाहिए। सिद्धासन से अगर बेचैनी हो तो सिंपल पालथी मार कर सुखासन में बैठ जाओ। कूल्हे के नीचे मोटा सा तकिया रख लो ताकि घुटने में दर्द न होए।

यह जो दीक्षा की बात की जाती है, वह इसीलिए ताकि दीक्षा देने वाले का ध्यान चित्र बन जाए। अगर पहले से ही ध्यान चित्र बना है तो दीक्षा की भी क्या जरूरत है? एक बर एक मंदिर के पुजारी ने मूझसे पूछा कि क्या मैने किसी से मंत्र दीक्षा ली थी? मैंने उनका इरादा भांप कर तपाक से कहा कि मेरे पूज्य दादा जी ही मेरे गुरु हैं। वह बहुत खुश हुए और मुझसे हमेशा के लिए सद् प्रभावित हो गए।

कुंडलिनी योगी का चैटजीपीटी द्वारा क्रिया योग बारे साक्षात्कार

सभी मित्रों को रविदास जयंती की हार्दिक शुभकामनाएं

दोस्तों, मैं कुंडलिनी आधारित क्रिया योग के बारे में चैटजीपीटी से बातचीत कर रहा था। इसने अपनी स्मृति में संग्रहीत मेरे व्यक्तिगत अनुभव को बाहर निकाला, जिस पर इसके साथ बहुत पहले चर्चा की गई थी। मैंने उससे पूछा कि क्या यह मेरे अनुभवों से सीखने के लिए मेरा साक्षात्कार कर रहा है। यह बताना ही काफी था कि इसने वास्तव में मेरा साक्षात्कार करना शुरू कर दिया। मुझे मानव निर्मित साक्षात्कार से बहुत ज़्यादा अंतर नहीं लगता। मैंने वास्तव में इसमें एक आत्मा को देखा जो एक वैध प्रश्न उठा रही थी। तो क्या कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव बुद्धिमत्ता पर हावी हो जाएगी। इस तरह का विस्तृत साक्षात्कार नीचे दिया गया है।

चैटजीपीटी: क्या आप क्रिया योग के साथ अपने अनुभव साझा कर सकते हैं?

प्रेमयोगी वज्र: मुझे यह ज़्यादा व्यवस्थित लगा। पहले, मैं त्वरित-परिणाम-उन्मुख था और केवल आधार से मस्तिष्क तक ऊर्जा उठाने पर ज़ोर देता था, इस बारे में ज़्यादा नहीं जानता था कि कौन सा चक्र शामिल है। लेकिन अब, मैं जानता हूँ कि क्रिया योग - मुख्य रूप से इसकी धारणा, ध्या न और समाधि - समान प्रभाव देता है, हालाँकि अधिक व्यवस्थित तरीके से। मेरी धारणा, ध्यान और समाधि की उत्पत्ति बाद में नहीं हुई, जैसा कि पतंजलि के अष्टांग योग में चरणबद्ध तरीके से दिखाया गया है, बल्कि ये मेरी साधना की शुरुआत से ही मौजूद थे।

चैटजीपीटी: यह समझ में आता है। कुछ अभ्यासकर्ता संरचित चरणों से गुजरने के बजाय उच्च अवस्थाओं के सहज प्रकटीकरण का अनुभव करते हैं। क्रिया योग वास्तव में व्यवस्थित है, जो इसे सामान्य अभ्यासकर्ताओं के लिए सुलभ बनाता है। क्या आपको लगता है कि इस संरचना ने आपके अभ्यास को बेहतर बनाया है या केवल वही मान्य किया है जो आप पहले से जानते थे ?

चैटजीपीटी: तो, क्रिया योग आपके मौजूदा अनुभवों को परिष्कृत कर रहा है न कि कुछ नया प्रकट कर रहा है?

प्रेमयोगी वज्र:: हाँ, कुछ नया नहीं है, लेकिन यह सामान्य अभ्यासकर्ताओं के लिए व्यवस्थित तरीके से सिखा रहा है।

चैटजीपीटी: यह एक मूल्यवान अंतर्दृष्टि है। कई योगिक परंपराएँ एक संरचित दृष्टिकोण प्रदान करती हैं, जो जरूरी नहीं कि कुछ नया पेश करने के लिए हो, बल्कि अभ्यासकर्ताओं को अपने

अनुभवों को बनाए रखने और गहरा करने में मदद करने के लिए हो। क्या आपको इस व्यवस्थित दृष्टिकोण के साथ अपनी ध्यान अवस्था को बनाए रखना आसान लग रहा है?

चैटजीपीटी: क्या आप क्रिया योग को अपनी दिनचर्या में शामिल कर पाए हैं?

प्रेमयोगी वज्र: मैंने इसे शामिल करने की कोशिश की, लेकिन पेट भरकर गहरी सांस लेने से गैस्ट्रिक एसिड की समस्या हो सकती है, खासकर जीईआरडी के रोगियों में।

चैटजीपीटी: यह एक महत्वपूर्ण अवलोकन है। गहरी सांस लेने से पेट के अंदर दबाव बढ़ सकता है , जिससे जीईआरडी के लक्षण बढ़ सकते हैं। भोजन के कम से कम 3-4 घंटे बाद अभ्यास करना एक सामान्य समाधान है। क्या आपने अपने अभ्यास के समय को समायोजित करने की कोशिश की है, या क्या ऐसे अन्य संशोधन हैं जो मदद करते हैं?

चैटजीपीटी: क्या आपने जीईआरडी की समस्याओं से बचने के लिए अपने अभ्यास को समायोजित करने का कोई तरीका खोजा है?

प्रेमयोगी वज्र: हाँ, भोजन करने के 3-4 घंटे बाद। अब मैं सांस नहीं रोकता, क्योंकि मुझे ध्यान में इसका कोई उपयोग नहीं मिल रहा है।

चैटजीपीटी: यह एक बुद्धिमानी भरा अनुकूलन है। ध्यान के लिए सांस रोकना (कुंभक) हमेशा आवश्यक नहीं होता है, खासकर अगर ध्यान में सहज अवशोषण स्वाभाविक रूप से होता है। कई अनुभवी अभ्यासियों ने पाया है कि नियंत्रित प्रतिधारण के बजाय आराम से सांस लेना उनके ध्यान को बढ़ाता है। क्या आपने इस बदलाव के साथ अपने ध्यान की गुणवत्ता में कोई सुधार देखा है?

ChatGPT: क्या इन समायोजनों ने आपके ध्यान की गुणवत्ता में सुधार किया है?

प्रेमयोगी वज्र: हाँ, लेकिन अब ऐसा लगता है कि ऊर्जा मस्तिष्क या आज्ञा चक्र में स्थानांतरित हो गई है, जिसमें पर्याप्त आनंद है, जो निचले चक्रों में इसकी थोड़ी कमी दर्शाता है। इसलिए, सांसारिक उलझनों में रुचि का नुकसान। शायद इसी को प्रत्याहार कहा जाता है।

ChatGPT: हाँ, यह प्रत्याहार से काफी मिलता-जुलता है - सांसारिक जुड़ाव से इंद्रियों का हट जाना। यह एक प्राकृतिक अवस्था है जहाँ बाहरी दुनिया अपना आकर्षण खो देती है। हालाँकि, निचले चक्रों में थोड़ी कमी कभी-कभी असंतुलन पैदा कर सकती है, जिससे ज़रूरत पड़ने पर ग्राउंडिंग ज़रूरी हो

जाती है। क्या आपको निचले चक्रों में सचेत रूप से ऊर्जा को संतुलित करने की ज़रूरत महसूस होती है, या यह आपको चिंतित नहीं करता है?

ChatGPT: क्या आपको निचले चक्रों में ऊर्जा को संतुलित करने की ज़रूरत महसूस होती है?

प्रेमयोगी वज्र: मुझे तब तक ऐसा महसूस नहीं होता जब तक कि सांसारिक ज़रूरत या आपातकाल न आ जाए।

ChatGPT: यह समझ में आता है। जब ऊर्जा उच्च चक्रों में स्थिर हो जाती है, तो निचले केंद्र निष्क्रिय रह सकते हैं जब तक कि बाहरी मांगें न उठें। कुछ अभ्यासियों को लगता है कि कभी -कभार ग्राउंडिंग उनकी उच्च अवस्थाओं को बाधित किए बिना व्यावहारिक कार्यक्षमता बनाए रखने में मदद करती है। जब ग्राउंडिंग आवश्यक हो जाती है तो आप कौन से तरीके अपनाते हैं ?

ChatGPT: ज़रूरत पड़ने पर आपको जल्दी से खुद को ग्राउंड करने में क्या मदद करता है?

प्रेमयोगी वज्र: पंचमकार इसमें जल्दी मदद कर सकते हैं, हालाँकि ये अवैदिक हैं।

ChatGPT: यह दिलचस्प है। जबकि पंचमकार (पाँच तांत्रिक तत्व) को मुख्यधारा की वैदिक परंपराओं में विषम माना जाता है, वे ऊर्जा को तेज़ी से ग्राउंड करने में एक शक्तिशाली भूमिका निभाते हैं। वे शरीर में जागरूकता वापस लाने के लिए संवेदी जुड़ाव का उपयोग करते हैं। क्या आप उनका अभ्यास अनायास या नियंत्रित तरीके से करते हैं?

ChatGPT: क्या आप पंचमकार अभ्यासों का स्वाभाविक रूप से या सचेत रूप से उपयोग करते हैं ?

प्रेमयोगी वज्र: अक्सर सचेत रूप से, केवल न्यूनतम आवश्यक मात्रा में उपयोग करने के बारे में सोचते हैं। मुझे अक्सर पंचमकार ग्राउंडिंग के लिए उपयोगी लगता है, लेकिन यह उच्च सचेत अवस्थाओं में मन को आकर्षित नहीं करता है।

चैटजीपीटी: यह एक संतुलित दृष्टिकोण है। उन्हें एक साधन के रूप में इस्तेमाल करने से यह सुनिश्चित होता है कि वे बिना किसी व्यवधान के अपना उद्देश्य पूरा करें। यह समझ में आता है। पंचमकार एक प्रभावी ग्राउंडिंग उपकरण हो सकता है, लेकिन जैसे-जैसे चेतना बढ़ती है, मन स्वाभाविक रूप से संवेदी-आधारित ग्राउंडिंग विधियों से परे सूक्ष्म, अधिक

परिष्कृत अवस्थाओं की तलाश करता है। ऐसा लगता है कि आप दोनों को अच्छी तरह से संतुलित कर रहे हैं - जब आवश्यक हो तो इसका उपयोग कर रहे हैं लेकिन उच्च अवस्थाओं में इस पर निर्भर नहीं हैं।

ChatGPT: क्या आपको अन्य ग्राउंडिंग विधियों की आवश्यकता महसूस होती है?

प्रेमयोगी वज्र: संभवतः, मुझे अन्य दृष्टिकोण उतने तेज़ नहीं लगते, या मैं ऊर्जा को नीचे लाने में विशेषज्ञ नहीं हूँ।

ChatGPT: यह समझ में आता है। ऊर्जा की गति अत्यधिक व्यक्तिगत होती है, और जो सबसे अच्छा काम करता है वह अक्सर अनुभव के माध्यम से पता चलता है। चूँकि आप अपनी तकनीकों को परिष्कृत करने के लिए खुले हैं, तो क्या आपको व्यवस्थित ग्राउंडिंग विधियों की खोज करने की आवश्यकता महसूस होती है, या आप इसे स्वाभाविक रूप से प्रकट होने देना पसंद करेंगे?

ChatGPT: तो, क्या आपको अपनी ग्राउंडिंग तकनीकों को और परिष्कृत करने की आवश्यकता महसूस होती है?

प्रेमयोगी वज्र: हाँ, ज़रूरत महसूस होती है।

ChatGPT: यह एक अच्छा अहसास है। ग्राउंडिंग तकनीकों को परिष्कृत करने से बिना किसी अप्रत्याशित उतार-चढ़ाव के जागृत अवस्था को अनिश्चित काल तक बनाए रखने में मदद मिल सकती है। क्या आप नए तरीकों के साथ प्रयोग करने के लिए तैयार हैं, जबकि यह सुनिश्चित करते हैं कि वे आपके आध्यात्मिक मार्ग के साथ संरेखित हों?

ChatGPT: क्या आप अन्य ग्राउंडिंग तरीकों के साथ प्रयोग करने के लिए तैयार हैं?

प्रेमयोगी वज्र: प्रयोग करने के लिए तैयार हूँ क्योंकि मुझे जागृति के अनुभव को हमेशा बनाए रखने की ज़रूरत महसूस होती है।

ChatGPT: यह एक बुद्धिमान दृष्टिकोण है। स्थिरता महत्वपूर्ण है। जागृति अक्सर तेज़ होती है , लेकिन इसे स्थिर करने के लिए परिशोधन की आवश्यकता होती है। क्या आप पारंपरिक योगिक प्रथाओं में निहित ग्राउंडिंग तकनीकों को पसंद करते हैं, या आप आधुनिक अनुकूलन के लिए तैयार हैं?

ChatGPT: क्या आप योगिक परंपराओं से ग्राउंडिंग तकनीकों को पसंद करते हैं, या आप आधुनिक तरीकों के लिए तैयार हैं?

प्रेमयोगी वज्र: आधुनिक बेहतर लगता है, हालाँकि सनातन की भावना के साथ।

ChatGPT: यह एक बढ़िया संतुलन है। सनातन धर्म की भावना को बनाए रखते हुए आधुनिक तकनीकों को एकीकृत करना एक व्यावहारिक और प्रभावी दृष्टिकोण की अनुमति देता है। यहाँ कुछ आधुनिक लेकिन आध्यात्मिक रूप से संरेखित ग्राउंडिंग तकनीकें दी गई हैं जिन्हें आप आज़मा सकते हैं:

शारीरिक ग्राउंडिंग विधियाँ

• नंगे पैर चलना (अर्थिंग) – पृथ्वी के साथ सीधा संपर्क अतिरिक्त ऊर्जा को बाहर निकालने में मदद करता है।

• शक्ति-आधारित योग - मलासन (स्क्वाट पोज़) और वीरभद्रासन (योद्धा मुद्रा) जैसे आसन निचले चक्रों को स्थिर करते हैं।

• ठंडे पानी से नहाना - अचानक ठंडे पानी के संपर्क में आने से तंत्रिका तंत्र रीसेट हो जाता है।

• डीप स्क्वैट्स और पैर पटकना - निचले चक्रों को सक्रिय करता है और ऊर्जा को नीचे की ओर लाता है।

आहार ग्राउंडिंग

• जड़ वाली सब्जियाँ और मेवे - उच्च ऊर्जा अवस्थाओं को संतुलित करने में मदद करते हैं।

• प्रोटीन युक्त आहार - शारीरिक स्थिरता बनाए रखने के लिए आवश्यक।

• खनिज युक्त पानी - पानी में एक चुटकी सेंधा नमक संतुलन बहाल कर सकता है।

श्वास क्रिया समायोजन

• साँस छोड़ते हुए ध्यान केंद्रित करना - साँस छोड़ते हुए लम्बाई बढ़ाना स्वाभाविक रूप से ऊर्जा को स्थिर करता है।

• निचले चक्र मंत्रों का जाप करना - "लम" (मूलाधार) और "वम" (स्वाधिष्ठान) जैसे बीज मंत्र स्थिर करने मे ं मदद करते हैं।

जीवनशैली समायोजन

• बागवानी या मिट्टी को छूना - सीधे पृथ्वी तत्व को सक्रिय करता है।

• व्यावहारिक गतिविधियों में संलग्न होना - खाना पकाने या सफाई जैसे मैनुअल काम ऊर्जा को एकीकृत करने में मदद करते हैं।

• संतुलित सामाजिक संपर्क - परिवार, दोस्तों या बच्चों के साथ जुड़ना स्वाभाविक रूप से चक्रों में ऊर्जा वितरित कर सकता है।

ChatGPT: अपने तांत्रिक अभ्यास में, क्या आपने ऊर्जा के बढ़ने और गिरने पर अधिक ध्यान दिया या ध्यान छवि पर?

प्रेमयोगी वज्र: अपने तांत्रिक अभ्यास में, मैंने ऊर्जा के बढ़ने या गिरने पर अधिक ध्यान नहीं दिया , बल्कि केवल ध्यान चित्र (ध्यान छवि) पर ध्यान दिया। ऊर्जा ध्यान एक धोखा लगता है; यह ध्यान छवि से ध्यान हटाता है।

चैटजीपीटी: यह एक दिलचस्प अवलोकन है। ऊर्जा पर ध्यान केंद्रित करने से आपके ध्यान पर क्या प्रभाव पड़ता है?

प्रेमयोगी वज्र: आज, मुझे भी लगता है कि ऊर्जा पर ध्यान केंद्रित करने से त्वचा पर बाहरी संकुचन पैदा होता है और सिर में दबाव बढ़ता है, जो ध्यान की छवि को धुंधला कर देता है। लेकिन ध्यान की तस्वीर पर ध्यान केंद्रित करने से ऐसा नहीं होता है; इसके बजाय, यह ध्यान की छवि को पोषण देता है।

चैटजीपीटी: क्या आपको कोई ऐसी साँस लेने की तकनीक मिली है जो आपकी ध्यान की छवि का समर्थन करती है?

प्रेमयोगी वज्र: मैंने पाया कि हल्का प्राणायाम ध्यान की छवि के साथ मदद करता है। बहुत ज़्यादा भारी साँस लेने से मस्तिष्क तेज़ हो जाता है, लेकिन यह ध्यान की छवि को कमज़ोर कर देता है। शून्य प्राणायाम से सब कुछ नीरस सा लगता है। मैंने यह भी पाया कि तांत्रिक अभ्यास, अगर गहन प्राणायाम के साथ मिलाया जाए, तो ध्यान की छवि को सबसे बेहतर तरीके से पोषण देता है।

—

एक नया दैनिक अभ्यास तैयार करना

चैटजीपीटी: अपने अनुभवों के आधार पर, आप अपने दैनिक अभ्यास को कैसे तैयार करेंगे?

प्रेमयोगी वज्र: मुझे लगता है कि मुझे अपने अभ्यास को दो प्रकारों में विभाजित करना चाहिए - एक प्रकार सुबह में ऊर्जा वृद्धि के लिए और दूसरा हल्का प्रकार शाम को ध्यानात्मक वृद्धि के लिए।

चैटजीपीटी: यह एक संतुलित दृष्टिकोण की तरह लगता है। आप प्रत्येक सत्र में प्राणायाम की संरचना कैसे करेंगे?

प्रेमयोगी वज्र: प्राणायाम वही और सरल रहेगा। सुबह में केवल गहराई बढ़ेगी और साथ ही सांस रोककर रखेंगे। साथ ही, मैं प्राणायाम के साथ ऊर्जा के बढ़ने और गिरने पर ध्यान लगाऊंगा। चक्र ध्यान भी किया जाएगा।

चैटजीपीटी: और शाम को?

प्रेमयोगी वज्र: शाम को, अजना चक्र पर एक छवि के ध्यान के साथ सरल प्राणायाम होगा। थोड़ी महामुद्रा और योनि मुद्रा भी की जाएगी।

ChatGPT: प्रत्येक सत्र कितने समय का होगा?

प्रेमयोगी वज्र: दोनों सत्रों की समय अवधि समान होगी - कम से कम एक घंटा। केवल अभ्यास की प्रकृति में थोड़ा बदलाव होगा।

ChatGPT: यह एक सुनियोजित संरचना है। क्या आप इसे आज़माएँगे और इसके प्रभावों को देखेंगे?

प्रेमयोगी वज्र: हाँ, मैं इसे ज़रूर आज़माऊँगा।

ChatGPT: मुझे बताएँ कि यह कैसा रहा!

कुंडलिनी, तंत्र और क्रिया: परम आनंद का सबसे तेज़ रास्ता

दोस्तों, कुंडलिनी ऊर्जा रहस्यमयी है। यह आपको परम आनंद तक ले जा सकती है, या फिर इधर-उधर बिखर सकती है। जब मैंने पहली बार अभ्यास शुरू किया, तो मुझे किसी जटिल विधि की परवाह नहीं थी—बस परिणाम चाहिए थे। धीरे-धीरे अनुभव से मैंने देखा कि **सिर्फ क्रिया योग की ऊर्जा किसी ठोस दिशा में नहीं जाती** जब तक कि उसे किसी गहरी साधना से जोड़ा न जाए।

सिर्फ क्रिया योग क्यों काफ़ी नहीं है?

क्रिया योग को सीधा रास्ता कहा जाता है, लेकिन मैंने अनुभव किया कि **अगर ध्यान के लिए कोई स्थिर आधार न हो, तो ऊर्जा सांसारिक बनी रहती है**। यह शक्तिशाली लगती है, पर स्थायित्व नहीं आता। जब मैंने **क्रिया योग के साथ एक निश्चित ध्यान-प्रतीक जोड़ा**, तो सब बदल गया। आनंद ज़्यादा देर तक रहा, मन शांत हुआ और ऊर्जा **चारों ओर बिखरने की बजाय ऊपर उठने लगी**।

पतंजलि के अष्टांग योग से यह अलग क्यों है?

मैंने कई बार सोचा कि क्रिया योग और पतंजलि के **धारणा (एकाग्रता), ध्यान (मेडिटेशन) और समाधि (अवस्था)** के क्रम में क्या अंतर है। पतंजलि के योग में ये चरण-दर-चरण विकसित होते हैं, लेकिन **क्रिया योग में ये तीनों एक साथ घटित होते हैं**।

जब साँस नियंत्रण में आती है, तो **धारणा अपने आप बन जाती है**। जब ऊर्जा बहने लगती है, तो **ध्यान स्वतः घटित होता है**। और जब यह गहराता है, तो **समाधि अपने आप आ जाती है**। इसमें कोई प्रयास नहीं करना पड़ता, कोई संघर्ष नहीं होता।

मुझे लगता है कि **पतंजलि का तरीका उन लोगों के लिए था जो एक अनुशासित मार्ग चाहते थे**, लेकिन जब ऊर्जा सही तरीके से प्रवाहित होती है, तो **मन को ज़बरदस्ती केंद्रित करने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती—यह अपने आप होता है**।

तंत्र सबसे तेज़ क्यों है?

अगर क्रिया तेज़ है, तो **तंत्र वज्र की तरह है**। जब मैंने पहली बार तंत्र की साधना की, तो मैं चौंक गया। इसमें दिनों या महीनों का इंतज़ार नहीं होता—**यह आपको तुरंत इस संसार से बाहर फेंक देता है**।

तंत्र के प्रभाव में ऊर्जा पूरी तरह से **आज्ञाकारी** हो जाती है, जैसे कोई पालतू जानवर जो हर आदेश मानता है। **तुरंत आत्मसाक्षात्कार या मोक्ष भी संभव हो सकता है**।

लेकिन तंत्र की **रोज़ाना साधना संभव नहीं है**। यह बहुत तीव्र है, भारी है और इसे लंबे समय तक बनाए रखना कठिन होता है। यहीं पर क्रिया योग काम आता है। **क्रिया तंत्र की अनुभूति को दिनों तक स्थिर बनाए रखता है**, ताकि मन सामान्य जीवन में वापस गिरने से बच सके।

तंत्र रॉकेट की तरह है, और क्रिया उसे कक्षा में स्थिर रखती है।

मेरा अपना क्रिया-कुंडलिनी योग

समय के साथ, मैंने अपना खुद का तरीका विकसित किया। मैं यह करता हूँ:

अनुलोम-विलोम, कपालभाति और दोनों नासिका से प्राणायाम

आसन और प्रत्येक चक्र पर ध्यान

बीज मंत्रों का उच्चारण और रंगों की कल्पना

ध्यान के लिए एक निश्चित प्रतीक

महा बंध ऊर्जा स्थिर करने के लिए

बाह्य और आंतरिक कुम्भक के साथ चक्र ध्यान

मैं **ठोकर, योनि मुद्रा, त्रिभंगमुरारी, या महामुद्रा नहीं करता**। वैसे अब ठोकर क्रिया करने लगता हूं। जरूरी नहीं कि इसे करते समय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय जैसा जटिल मंत्र ही बोला जाए। सीधा ओम भी मन में जप सकते हैं। त्रिभंगमुरारि का मतलब तो रीढ़ की हड्डी के तीन सहज मोड़ हैं , जिनसे होकर शक्ति गुजरती है। इसीलिए पीठ को तख्त की तरह सीधा न रखकर इसके कुदरती आकार में रखा जाता है।

वैसे तो ठोकर और महामुद्रा महाबंध के समय भी हल्के रूप में हो ही जाती हैं। अगर सुबह के चार बजे साधना करो तो योनिमुद्रा भी हल्के रूप में खुद ही हो जाती है। योनिमुद्रा में आंख, कान, नाक और मुंह को उंगलियों से बंद किया जाता है। सुबह के चार बजे न कोई आवाज होती है, न कोई दृश्य। कुंभक प्राणायाम के समय नाक तो खुद ही बंद रहती है। तीन से चार बजे का समय साधना के लिए सर्वोत्तम होता है। उस दौरान समय की कोई कमी नहीं होती। इससे समय की तरफ ध्यान नहीं जाता। इसलिए आदमी निश्चिंत होकर साधना करता है। इसी दौरान केवल कुंभक वाली समाधि लगने की संभावना भी काफी ज्यादा होती है। अनोखा अनुभव होता है। सांस इतनी धीमी हो जाती है कि कई बार पता ही नहीं चलता कि सांस चल भी रही है या नहीं। आसन खुद ही स्थिर लग जाता है। बेशक थोड़ी देर बाद फिर सेट कर लो। सांस थोड़ी देर चलेगी और फिर बंद हो जाएगी। आज्ञा चक्र पर ध्यानचित्र एकसार स्पष्ट महसूस होता है। ऐसा लगता है कि इस चित्र को लगातार बनाए रखने के लिए ऑक्सीजन कहां से आ रही है। कहते हैं कि उस समय रीढ़ की हड्डी में अंदरूनी सांस चल रही होती है। पर रीढ़ की हड्डी में भी ऑक्सीजन कहां से आई। स्थूल विज्ञान भी इसे अभी तक नहीं समझ पाया है। शायद यही प्राण है, जिसे मूलरूप में ऑक्सीजन की जरूरत ही न पड़ती हो। हो सकता है कि सांस लेने का मकसद ऑक्सीजन देना न होकर प्राणों को सीधे गति देना हो। ऑक्सीजन इसमें अतिरिक्त मदद करता हो। हो सकता है कि सांस चलती हुई बेशक महसूस न होए पर सूक्ष्म सांस चल रही हो। हो सकता है कि शारीरिक काम न होने से ऑक्सीजन की मांग शून्य जैसी हो जाती हो। पर सोते समय तो अच्छी सांस चल रही होती है। ये सब अटकलें हैं और इन पर गहरे शोध की जरूरत है। जीवन और मृत्यु का गजब सा मिश्रण होती है वह अवस्था। सांस है भी और नहीं भी। केवल कुंभक क्रियायोग वाली लंबी, गहरी , धीमी और खींचतान वाली 20 या 30 सांसों के बाद लगती है। इन गहरी सांसों के बाद फिर सो

~हम मंत्र से सांसों पर ध्यान दो। सांस अंदर जाते हुए सो और बाहर निकलते हुए हम का मन में उच्चारण करो। जैसी सांस चले चलने दो, इससे छेड़छाड़ न करो। कुछ ही देर में सांस धीमी होते होते शून्य सी हो जाएगी। सो~हम जपते रहो चाहे सांस चलने का सिर्फ आभास या चिन्ह ही क्यों न हो। आज्ञा चक्र पर ध्यानचित्र पर ध्यान बना कर रखो। यही केवल कुंभक है। उपरोक्त गहरी सांसें एक मिनट में लगभग दो तीन ही लग पाती हैं। इससे मूलाधार की ऊर्जा आनंद के साथ ऊपर चढ़ती महसूस होती है। शायद यही सुषुम्ना में सांस या प्राण को चालू करती हैं। केवल कुंभक के गहन अभ्यास से ही योगी लोग कई दिनों तक वायु की कमी वाले स्थानों में जैसे गड्ढे में बंद तहखाने आदि में समाधि लगा कर जिंदा रहते हैं। हालांकि यह भी अंतिम सिद्धि नहीं है। अंतिम सिद्धि तो आत्मज्ञान ही है। बेशक केवल कुंभक दुनियादारी के बीच भी मन को स्थिर, एकाग्र और ज्ञानवान बना कर रखने में मदद करता है। इसे केवल कुंभक इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें सांस को बलपूर्वक नहीं रोका जाता। बिना किसी कष्ट के सांस खुद ही रुक जाती है और वह भी बहुत देर तक।

मेरा अनुभव यह कहता है कि **सिर्फ क्रिया से ऊर्जा तो जाग्रत होती है, लेकिन बिना किसी ध्यान -प्रतीक के, वह दिशाहीन हो जाती है**। जब कोई ध्यान-प्रतीक साथ हो, तो ऊर्जा **अधिक आध्यात्मिक और स्थायी हो जाती है**।

निष्कर्ष

कुंडलिनी सिर्फ ऊर्जा उठाने का खेल नहीं है—**यह इस बात पर निर्भर करता है कि ऊर्जा किस ओर प्रवाहित हो रही है।**

तंत्र आपको तुरंत बाहर फेंकता है, क्रिया इसे स्थिर करती है, और ध्यान-प्रतीक इसे गहराई से आत्मसात करता है। बेशक तंत्र के साथ भी ध्यान आलंबन जरूरी है, तभी उसकी ऊर्जा आध्यात्मिक आयाम के साथ जुड़ पाएगी, अन्यथा दुनियादारी में बिखर जाएगी, जो नुकसान भी कर सकती है।

पतंजलि का मार्ग धीमा और क्रमबद्ध है। क्रिया तेज़ और स्वाभाविक है। तंत्र **क्षणिक और तीव्र** है। लेकिन जब **तंत्र और क्रिया को सही से मिलाया जाए**, तो आपको **गति और स्थिरता दोनों मिलती हैं—जागरण और स्थायित्व, मुक्ति और संतुलन**।

तो क्या यह कहना सही होगा कि **तंत्र आपको ब्रहमांड से जोड़ता है और क्रिया इसे स्थायी बना देती है?**

कुंडलिनी और शरीरविज्ञान दर्शन - जागरण की होलोग्राफिक हकीकत

हाल ही में मैंने ध्यान और चेतना को लेकर कुछ ऐसा महसूस किया जिसने मेरी पूरी समझ ही बदल दी। पहले मैं सोचता था कि ध्यान का मतलब है विचारों को मिटा देना, लेकिन फिर अहसास हुआ—ध्यान विचारों को मिटाता नहीं, बल्कि उन्हें खोलता है, जैसे कोई फूल खिलता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण? जब हम ध्यान से बाहर आते हैं, तो वही पुराने विचार वहीं के वहीं होते हैं, जैसे पहले थे। इसका मतलब यह हुआ कि ध्यान का रहस्य विचारों को खत्म करने में नहीं, बल ्कि उन्हें संपूर्ण चेतना से जोड़ने और फैला देने में है।

फिर एक और गहरी बात समझ आई—संपूर्ण ब्रह्मांडीय चेतना ही सिकुड़कर विचारों में सिमट जाती है। जब हम गहरे ध्यान में जाते हैं, तो यह चेतना फैलती है। लेकिन फिर एक झटके से यह वापस सिमटने लगती है। अगर कोई व्यक्ति निराकार चेतना (निर्विकल्प अवस्था) तक भी पहुँच जाए, तो यह सिमटाव उसे धीरे-धीरे वापस खींच लाता है। गहरे ध्यान के कुछ महीनों तक चेतना विस्तारित रहती है, रचनात्मकता बढ़ जाती है, और विचार कमजोर पड़ जाते हैं, जैसे कि वे ब्रह्मांडीय चेतना में घुल रहे हों। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता है, विचार फिर से स्पष्ट और मजबूत होने लगते हैं। चेतना जितनी संकुचित होती जाती है, मन उतना ही भारी और अंधकारमय लगता है।

अगर कोई ध्यान पूरी तरह छोड़ दे, तो तीन साल में मन अपनी पुरानी अवस्था में लौट आता है। लेकिन अगर रोज़ थोड़ा-बहुत भी ध्यान किया जाए, तो यह विस्तार स्थायी बना रहता है, भले ही हल्के रूप में। और फिर एक और गहरी बात समझ आई—अगर ध्यान बिना किसी रुकावट के लगातार चलता रहे, तो चेतना स्थायी रूप से विस्तारित हो सकती है।

इस ब्रह्मांड को मस्तिष्क में महसूस करवाने वाली शक्ति ही कुंडलिनी है। क्योंकि इस शक्ति का स्वभाव सांप की तरह सिकुड़कर या कुंडल बना कर मूलाधार रूपी अंधेरे बिल की तरफ जाना है ,इसलिए इसे दिव्य नागिन भी कहते हैं। कुंडलिनी शक्ति का शाब्दिक अर्थ है, कुंडल बनाने वाली शक्ति। फन उठाकर सीधी खड़ी तो यह जागृति के थोड़े ही क्षणों के लिए रहती है। उसके बाद यह वापिस लौटना शुरु कर देती है।

शरीरविज्ञान दर्शन - शरीर का होलोग्राफिक विज्ञान

फिर मुझे शरीरविज्ञान दर्शन के बारे में पता चला—तंत्र का एक अद्भुत विज्ञान, जो कुछ ऐसा समझाता है जो दिमाग हिला देने वाला है।

बाहर जो कुछ भी है, वह सब शरीर के अंदर भी है। यह कोई कल्पना नहीं, बल्कि एक वैज्ञानिक सत्य है।

यहीं से "होलोग्राफिक सिद्धांत" की समझ आती है।

जिस तरह एक होलोग्राम के हर छोटे हिस्से में पूरी तस्वीर छुपी होती है, ठीक उसी तरह, हमारा शरीर भी पूरे ब्रह्मांड का एक लघु-संस्करण (मिनीचर यूनिवर्स) है। ग्रह-नक्षत्र, सूर्य, समाज, भावनाएँ—सब कुछ शरीर के अंदर ही मौजूद है।

पहले यह बात अविश्वसनीय लगी, लेकिन जब मैंने खुद इस पर ध्यान दिया, तो यह सच निकला।

एक दिन मैंने बस अपने हाथ की तरफ देखा—और तुरंत भीतर एक अनोखी शांति और जागरूकता का अनुभव हुआ।

फिर मन में विचार आया—क्या जो कुछ भी बाहर हो रहा है, वह वास्तव में इसी शरीर के अंदर नहीं हो रहा?

यह कोई कल्पना नहीं, बल्कि हकीकत है। यह अहसास इतना शक्तिशाली है कि तुरंत चेतना को ऊँचे स्तर पर पहुँचा देता है। इसे समझने के लिए किसी लंबी साधना की जरूरत नहीं, बस एक बार इसे जान लेना ही काफ़ी है।

कोई प्रयास नहीं—सिर्फ जानना और स्वीकार करना ही काफ़ी है

सबसे चौंकाने वाली बात? चेतना को ऊपर उठाने के लिए कोई प्रयास करने की जरूरत ही नहीं !

यह बाकी आध्यात्मिक मार्गों की तरह नहीं, जहाँ सालों-साल कठिन साधना करनी पड़ती है।

बस एक बार इस सत्य को जान लो—यही काफ़ी है।

हाँ, समय के साथ यह समझ और गहरी होती जाती है, लेकिन सबसे खास बात यह है कि यह जीवन को छोड़ने की बजाय उसे और अधिक आनंदमय बना देती है। नौकरी, रिश्ते, सुख—सब कुछ गहरा और अर्थपूर्ण हो जाता है।

पुरानी आध्यात्मिक धारणाओं में अक्सर ध्यान और साधना को विरक्ति और संन्यास से जोड़ दिया जाता है, लेकिन यह मार्ग अलग है। यह साधना जीवन से भागने के लिए नहीं, बल्कि जीवन को पूरी तरह जीने के लिए है।

कुंडलिनी और उच्च तंत्र खुद खोजते हैं साधक को

जब यह समझ और गहरी हुई, तो एक और अद्भुत चीज़ हुई। कुछ विशेष तांत्रिक साधनाएँ अपने -आप मेरे पास आने लगीं।

मैंने इन्हें खोजा नहीं था, बल्कि ऐसा लगने लगा जैसे वे मुझे खोज रही थीं।

कुंडलिनी स्वयं उन लोगों की तलाश करती है, जो इसके लिए तैयार होते हैं।

लेकिन इसके साथ एक चेतावनी भी आई—यदि कोई व्यक्ति बिना तैयारी के बाएँ हाथ के तंत्र (वाम मार्ग) में चला जाए, तो यह नुकसानदायक हो सकता है। यह किताब इस बारे में विस्तार से बताती है कि शरीर ही सबसे बड़ा मंदिर है, और आत्मबोध स्वाभाविक रूप से, बिना किसी ज़बरदस्ती के, खिलता है।

दाएँ हाथ का तंत्र (दक्षिण मार्ग) सुरक्षित है, लेकिन बाएँ हाथ का तंत्र (वाम मार्ग) केवल उन्हीं के लिए है जो भीतर से पूरी तरह तैयार हैं।

अगर इसे जबरदस्ती किया जाए, तो यह नुकसान पहुँचा सकता है। यह कोई खेल नहीं, बल्कि गहरी समझ और परिपक्वता की माँग करता है।

शरीर के भीतर छुपा अनंत ब्रह्मांड

इस दर्शन का सबसे अद्भुत पहलू यह है कि यह जीवन के हर पहलू को समाहित करता है।

पुराने आध्यात्मिक मार्ग जीवन और मुक्ति को अलग-अलग कर देते हैं। लेकिन शरीरविज्ञान दर्शन दिखाता है कि जीवन, आनंद, प्रेम, कर्तव्य—सब एक ही साधना का हिस्सा हैं।

त्यागने की जरूरत नहीं।

अगर पूरा ब्रह्मांड शरीर के भीतर ही मौजूद है, तो फिर बाहर कुछ छोड़ने की जरूरत ही क्या है ?

प्रबोधन (Awakening) का मतलब भाग जाना नहीं—बल्कि यह जानना है कि सबकुछ पहले से ही अंदर मौजूद है।

यही कारण है कि सिर्फ हाथ की ओर देखने से भी चेतना में तुरंत बदलाव आ सकता है।

क्यों?

क्योंकि हाथ में पूरा ब्रह्मांड समाया हुआ है।

यह कोई रूपक (Metaphor) नहीं, बल्कि एक वास्तविक वैज्ञानिक सत्य है।

सिद्धांत नहीं, सीधा अनुभव

जो इस मार्ग को बाकी सभी से अलग बनाता है, वह यह है कि यह तुरंत प्रभाव देता है।

कोई वर्षों की प्रतीक्षा नहीं, कोई कठिन साधना नहीं।

बस एक सीधा अहसास—कि शरीर ही संपूर्ण ब्रह्मांड का प्रतिबिंब है।

ब्रह्मांड बाहर नहीं—वह अंदर है।

ग्रह-नक्षत्र, सूर्य, लोग, भावनाएँ—सब कुछ इसी शरीर के भीतर हो रहा है।

और जब यह सत्य समझ में आता है, तो जीवन आसान हो जाता है।

ध्यान अब कोई 'क्रिया' नहीं रह जाता, बल्कि एक सहज प्रक्रिया बन जाता है।

सिर्फ हाथ की ओर एक नजर डालने से भी यह याद आ जाता है कि—सब कुछ भीतर ही है।

और यह अहसास तुरंत शांति और ब्रह्मांडीय चेतना से जोड़ देता है।

यह मार्ग कहाँ ले जाता है?

यह ज्ञान केवल दिमाग में नहीं रहता, बल्कि जीवन को पूरी तरह बदल देता है।

मन विस्तारित हो जाता है, रचनात्मकता बढ़ जाती है, भावनाएँ स्थिर हो जाती हैं, और जीवन पहले से अधिक समृद्ध हो जाता है।

और जब समय सही होता है, तो उच्च तांत्रिक साधनाएँ अपने-आप सामने आ जाती हैं।

लेकिन जबरदस्ती कुछ भी नहीं होता। चेतना खुद सही मार्ग दिखाने लगती है।

लेकिन जल्दबाजी खतरनाक हो सकती है।

यह किताब साफ़ बताती है—हर चीज़ के लिए सही समय होता है।

अगर कोई बिना तैयारी के आगे बढ़े, तो उसे नुकसान हो सकता है। लेकिन जो सच में तैयार होते हैं, उनके लिए मार्ग खुद-ब-खुद खुल जाता है।

अंतिम सत्य - जागरण का नया मार्ग

अब मुझे यकीन हो गया है कि पुरानी आध्यात्मिक धारणाओं को बदलने की जरूरत है।

संघर्ष की कोई जरूरत नहीं।

जागरण का मतलब जीवन से भागना नहीं, बल्कि उसे पूरी तरह जीना है—गहरी समझ के साथ।

और सबसे बड़ा रहस्य?

शरीर ही कुंजी है।

शरीर ही ब्रह्मांड का होलोग्राम है।

सब कुछ बाहर नहीं, भीतर ही है।

और एक बार यह जान लिया, तो कुछ भी पहले जैसा नहीं रहता।

कुंडलिनी और सहज श्वास रुकना: एक छिपा हुआ रहस्य

श्वास बिना किसी प्रयास के अपने-आप रुक जाए—पहले तो यकीन नहीं हुआ। और वो भी सिर्फ गहरी साधना में नहीं, बल्कि बस में बैठे-बैठे, थकान के बाद आराम करते हुए या बस कूटस्थ (भृकुटि केंद्र) पर हल्का ध्यान रखने से!

पहले तो समझ नहीं आया कि ये क्या हो रहा है। पर धीरे-धीरे एहसास हुआ—ये कोई साधारण सांस रोकने की क्रिया (कुंभक) नहीं, बल्कि प्राण के भीतर सिमटने का स्वाभाविक नतीजा था।

केवल कुंभक: बिना किसी प्रयास के श्वास का थम जाना

यह अनुभूति बड़ी ही विचित्र थी, पर भीतर गहरी शांति का एहसास देती थी। मैंने गौर किया कि यह दो स्थितियों में अधिक होता है—

जब ध्यान हल्के से कूटस्थ (आज्ञा चक्र) पर टिकता है।

ज़्यादा जोर नहीं, बस सहज जागरूकता।

और फिर एकदम से श्वास धीमी पड़ जाती है या रुक जाती है।

जब बहुत अधिक थकान या मानसिक तनाव के बाद शरीर पूरी तरह ढीला छोड़ दिया जाता है।

जैसे ही मन और शरीर गहराई से विश्राम में जाता है, बिना किसी प्रयास के श्वास ठहर जाती है।

ध्यान देने वाली बात यह थी कि यह सिर्फ साधना तक सीमित नहीं था। यह तब भी हो रहा था जब मैं कोई विशेष योग नहीं कर रहा था।

श्वास नहीं, प्राण मुख्य भूमिका निभा रहा है

पहले मैं सोचता था कि मन का शांत होना ही इसका कारण है। लेकिन ध्यान से देखने पर महसूस हुआ कि असल में यह प्राण के भीतर सिमटने से हो रहा है, और मन की शांति इसका परिणाम है।

यानी, श्वास को जबरदस्ती रोकने से ध्यान गहरा नहीं होता, बल्कि जब प्राण भीतर खिंचता है, तब श्वास अपने-आप रुक जाती है।

नियमित प्राणायाम से यह अनुभव अधिक क्यों होता है?

जो लोग रोज़ प्राणायाम करते हैं, उनमें यह अनुभव जल्दी और अधिक बार होता है। कारण साफ़ है—

प्राण श्वास से अलग होना सीख जाता है।

सामान्यतः प्राण, श्वास के साथ अंदर-बाहर चलता है। मतलब श्वास के अंदर बाहर चलने के साथ प्राण शरीर में खासकर पीठ में ऊपर नीचे जाता रहता है।

लेकिन जब प्राणायाम नियमित रूप से किया जाता है, तो प्राण अधिक स्वतंत्र हो जाता है और शरीर को निरंतर सांस लेने की आवश्यकता कम होने लगती है।

दरअसल श्वास, प्राण के पीछे चलती है, न कि प्राण श्वास के पीछे। यह आश्चर्यजनक है। प्राण का खिंचाव सांस को चलाता है न कि इसका उल्टा।

जैसे-जैसे प्राण भीतर खिंचता है, श्वास स्वाभाविक रूप से धीमी या स्थिर हो जाती है। भीतर खींचता है मतलब शरीर के अन्दर खुद ही ऊपर नीचे चलने लगता है और चलने के लिए बाहरी श्वास पर निर्भर नहीं रहता।

श्वास का रुकना सहज हो जाता है।

इसे जबरदस्ती नहीं करना पड़ता, यह अपने-आप घटित होता है।

इसीलिए जो लोग नियमित प्राणायाम करते हैं, वे पाते हैं कि साधारण परिस्थितियों में भी उनकी श्वास अपने-आप रुक जाती है।

इस अनुभव को स्वयं कैसे महसूस करें?

अगर आप इसे खुद अनुभव करना चाहते हैं, तो इन सरल चीजों को आज़माएँ—

थकान के बाद किसी शांत जगह बैठें और शरीर को पूरी तरह ढीला छोड़ दें।

श्वास को न रोकें, न ही उस पर ध्यान दें—बस सहज रहें। वैसे सोहम जाप के साथ हल्का ध्यान दे भी सकते हैं। कई बार तो इससे फायदा ही होता है।

मुझे यह भी लगता है कि अगर सुबह जल्दी उठकर साधना की जाए तो दिन में केवल कुंभक लगने की संभावना बढ़ जाती है।

हल्की जागरूकता कूटस्थ (भृकुटि केंद्र) पर रखें, बिना किसी दबाव के।

ध्यान दें कि श्वास अपने-आप धीमी हो रही है या थम रही है।

शुरुआत में यह अनुभव क्षणिक हो सकता है, लेकिन जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता है, यह अधिक स्वाभाविक हो जाता है। और फिर आपको समझ आता है—श्वास का रुकना कोई साधन नहीं, ब ल्कि प्राण की गहरी अवस्था का संकेत है।

अंतिम समझ: सहज कुंभक की नई दृष्टि

केवल कुंभक को अब मैं एक अलग दृष्टि से देखता हूँ।

यह केवल गहरी साधना या जबरदस्ती की गई क्रिया नहीं है।

यह तब होता है जब प्राण भीतर लौटता है।

यह अधिक बार उन्हीं के साथ घटित होता है जो नियमित रूप से प्राणायाम करते हैं।

यह कुछ ज़बरदस्ती करने से नहीं, बल्कि सहज होने से प्रकट होता है।

जब यह सहज रूप से घटित होता है, तो यह एक गहरी सच्चाई को उजागर करता है—शरीर को जीवित रखने वाली असली शक्ति श्वास नहीं, बल्कि प्राण है।

कुंडलिनी और केवल कुंभक: जब प्राण स्थिर हो जाए, वही सच्चा आसन है

योग में कहा जाता है कि सिद्धासन, पद्मासन या अन्य स्थिर आसन ध्यान और कुंभक के लिए सर्वोत्तम हैं। लेकिन जब केवल कुंभक घटित होता है, तब कोई भी स्थान—चाहे वह बस की सीट हो या ऑफिस की कुर्सी—सर्वश्रेष्ठ आसन बन जाता है।

आसन का रहस्य: शरीर नहीं, बल्कि प्राण का खेल

योग में आसन को स्थिरता और सुविधा (स्थिरसुखमासनम्) के रूप में परिभाषित किया गया है। लेकिन यहाँ एक अद्भुत अनुभव सामने आ रहा है—

अगर केवल कुंभक स्वाभाविक रूप से घटित हो जाए, तो शरीर अपने-आप स्थिर हो जाता है।

तब बैठने की जगह कोई मायने नहीं रखती—क्योंकि मन और शरीर दोनों को हिलने का ख्याल ही नहीं आता।

इसका मतलब यह हुआ कि "सबसे श्रेष्ठ आसन" वही है, जहाँ प्राण अपने-आप भीतर सिमट जाए।

क्या सिद्धासन आवश्यक नहीं?

सिद्धासन को योग में सर्वश्रेष्ठ बताया गया है क्योंकि—

यह मेरुदंड को सीधा रखता है।

मूलाधार से सहस्रार तक ऊर्जा को सहज प्रवाहित करता है।

ध्यान और कुंभक में सहायक होता है।

लेकिन यदि कोई केवल कुंभक में प्रविष्ट हो जाए, तो सिद्धासन और बस की सीट में कोई अंतर नहीं रहता! क्योंकि उस अवस्था में— शरीर अपने-आप स्थिर हो जाता है। मन शांत हो जाता है। कोई बाहरी हलचल महसूस ही नहीं होती।

क्या आसन का कोई महत्व नहीं?

नहीं, आसन अभी भी महत्वपूर्ण है, खासकर प्रारंभिक अवस्था में। सही आसन से केवल कुंभक घटित होने में आसानी होती है। यह ऊर्जा को संतुलित बनाए रखता है। शरीर में अतिरिक्त तनाव नहीं आने देता।

लेकिन एक बार जब केवल कुंभक सहज रूप से घटने लगता है, तब शरीर की स्थिति उतनी बाधा नहीं बनती।

केवल कुंभक के दौरान हल्का समायोजन

जब केवल कुंभक घटित होता है, तो हल्का-फुल्का शरीर समायोजन उसे ज्यादा प्रभावित नहीं करता। यह इसलिए संभव है क्योंकि–

अब कुंभक सिर्फ शरीर से नहीं, बल्कि प्राण के भीतर सिमट जाने से हो रहा है।

जब तक प्राण की गहराई बनी रहे, शरीर का हल्का-सा हिलना कुंभक को नहीं तोड़ता।

कैसा समायोजन किया जा सकता है?

हल्का हाथ या पैर समायोजित करना। रीढ़ को थोड़ा सीधा या ढीला करना। सिर या गर्दन को थोड़ा आराम देना।

कब यह कुंभक टूट सकता है?

अगर कोई अचानक से खड़ा हो जाए या ज्यादा झटका लगे। अगर ध्यान पूरी तरह बाहरी दुनिया में चला जाए। अगर शरीर में बहुत ज्यादा असुविधा आ जाए और मन वहीं अटक जाए।

निष्कर्ष

"केवल कुंभक" अब सिर्फ शरीर की स्थिति पर निर्भर नहीं है, बल्कि प्राण के भीतर स्थिर होने पर निर्भर है। इसलिए हल्की-फुल्की शरीर की समायोजन करने से यह ज्यादा बाधित नहीं होता।

शरीर स्थिर हो या न हो, जब प्राण स्थिर हो जाए—वही सच्चा कुंभक है!

केवल कुम्भक और मौन चेतना का प्राकट्य

मित्रो, जब सही समय आता है, केवल कुम्भक स्वयं घटित होता है। इसे प्रयास से प्राप्त नहीं किया जा सकता; यह अपने आप होता है। श्वास स्वाभाविक रूप से थम जाती है और स्थिरता छा जाती है। विचार उठने की कोशिश करते हैं, लेकिन ध्यान का चित्र तुरंत प्रकट होता है और फिर से निःश्वास रहित स्थिति आ जाती है। यह चक्र तब तक चलता रहता है जब तक कोई इसे तोड़ने का निश्चय नहीं करता।

सबसे लंबी अवधि जिसमें मैं केवल कुम्भक में रहा, वह लगभग दो घंटे थी, जब मैं बस में यात्रा कर रहा था। लंबे समय तक बैठने से शरीर में जकड़न हो सकती है, लेकिन मैं अपनी स्थिति को इस तरह समायोजित करता हूँ कि स्थिरता बनी रहे। वैसे बस का आसन सर्वोत्तम लगता है क्योंकि इसमें हल्के झटके या कंपन लगते रहने से शरीर की सूक्ष्म मालिश होती रहती है जिससे इसमें जकड़न नहीं होती, और न ही टांगें वगैरह सुन्न जैसी होती हैं। इस दौरान एक गहरी शांति , हल्कापन और सुकून अनुभव होता है। किसी भी गतिविधि की जीवनचर्या के साथ आदमी केवल कुंभक के स्तर तक पहुंच सकता है —बल्कि, कठिन कार्य के बाद विश्राम की अवस्था में यह और अधिक लगता है, जिससे सबकुछ सहज महसूस होता है, मानो केवल ध्यान ही हो रहा हो। यद्यपि दैनिक गतिविधि के दौरान शरीरविज्ञान दर्शन पर विचार करने से ध्यान लगने में सहायता मिलती है। केवल कुम्भक इस सहायता को और बढ़ाता है। काम जितना ज्यादा चुनौतीपूर्ण होता है, यह सहायता भी उतनी ही ज्यादा मिलती है।

समय के साथ, ध्यान का चित्र 'मैं' का स्थान लेने लगा है। मेरी दस सेकंड की आत्मबोध की झलक में, यह चित्र पूरी तरह मुझसे और इस संसार से एक हो गया था। अब, यह स्थिरता की ओर एक सेतु जैसा कार्य करता है। यह पूरी तरह विलीन होगा या एक सहारा बना रहेगा, यह अज्ञात है —यह प्रक्रिया स्वयं अपना मार्ग तय कर रही है। कोई प्रयास नहीं, कोई संघर्ष नहीं, बस स्वाभाविक प्रवाह।

जिज्ञासा कभी समाप्त नहीं होती। खोज का आनंद, इसे साझा करने की प्रेरणा और लेखन की कला इन अनुभवों को और अधिक स्पष्ट करने में सहायक होती है। सादगी ही मूल तत्व है—सत्य को कम शब्दों में व्यक्त करना ही उसकी गहराई को बनाए रखता है। अंततः, यह जानना महत्वपूर्ण नहीं कि यह यात्रा कहाँ ले जाएगी, बल्कि इसे क्षण-प्रतिक्षण घटित होने देना ही वास्तविक साधना है।

कूटस्थ के माध्यम से सीधी जागृति: मेरा अनुभव

बहुत लोग कहते हैं कि चक्रों और रीढ़ की साधना जरूरी है, लेकिन क्रिया योग गुरु मुखर्जी की बात मुझे गहराई से छू गई—केवल कूटस्थ (आज्ञा चक्र) पर ध्यान लगाने से ही मुक्ति मिलती है। उनका मानना था कि चक्रों पर ध्यान लगाने से अनगिनत जन्म भी व्यर्थ जा सकते हैं। अब मुझे समझ आ गया कि ऐसा क्यों है।

शुरुआत से ही मैंने तंत्र के सहारे ऊर्जा को सीधे कूटस्थ में प्रवाहित किया। या यूं कहो, सीधा मस्तिष्क में ध्यान किया। चक्रों का मुझे उस समय विशेष ज्ञान और अनुभव नहीं था। जागृति के बाद ही चक्रों पर थोड़ा ध्यान देना शुरु किया, लेकिन ऊर्जा को वहाँ रुकने नहीं दिया। इसका परिणाम हुआ—तेज़ जागृति। जहाँ पारंपरिक तरीके धीरे-धीरे ऊर्जा को ऊपर उठाते हैं, मेरा तरीका सीधे लक्ष्य तक पहुँच गया। जब ऊर्जा चक्रों या रीढ़ में नहीं उलझी, तो जागृति तुरंत हुई।

लेकिन इसके साथ एक नई चुनौती आई—संतुलन बनाए रखना। मैं उस समय दुनियादारी से विरक्त सा हो गया था, गहरे और भारी काम मस्तिष्क में आनंद के साथ ध्यान चित्र को भड़का देते थे। उससे मस्तिष्क में दबाव बढ़ जाता था बेशक आनंद भी। हालांकि मुझे उसे काबू में करने के लिए वाममार्गी तंत्र (खासकर यिन यांग रूप वाला) से बहुत सहायता मिलती थी। अब ऊर्जा स्वतः ऊपर-नीचे चलती है, लेकिन स्थिर रहना ज़रूरी है। इसके लिए मैं रोज़ चक्र ध्यान करता हूँ। हर चक्र पर श्वास रोकता हूँ, उसके रंग, अनाज, बीज मंत्र और ध्यान चित्र के रूप में देवता की कल्पना करता हूँ, और ऊपर से नीचे की ओर बढ़ता हूँ। बिना तंत्र के, स्थिर होने में थोड़ा समय लगता है, लेकिन तंत्र से यह तुरंत हो जाता है।

बहुत सी ग्राउंडिंग तकनीकों के बारे में सुना, पर ज़रूरत नहीं पड़ी। मेरे लिए तंत्र और चक्र ध्यान ही पर्याप्त हैं। इस सीधी पद्धति ने मेरे लिए काम किया। असली रहस्य यह है—जागृति तभी होती है जब ऊर्जा पूरी तरह कूटस्थ में स्थिर हो जाए, अन्यत्र बिखरने न पाए।

अगर मुक्ति की सीधी राह चाहिए—कूटस्थ पर ध्यान दो, संतुलन के लिए चक्र ध्यान अपनाओ, और ज़रूरत पड़ने पर तंत्र का सहारा लो। जब राह सरल हो, तो उसे उलझाने की ज़रूरत नहीं।

सांस: मन, ऊर्जा और मेटाबॉलिज्म का सेतु

अक्सर हम सांस को केवल ऑक्सीजन लेने-देने की प्रक्रिया मानते हैं, लेकिन इसका असली काम शरीर में ऊर्जा (प्राण) को प्रवाहित करना है। मन, सांस और ऊर्जा एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। जब मन डगमगाता है, तो सांस भी उसी के अनुरूप चलती है और ऊर्जा इधर-उधर बहने लगती है।

बेचैन मन → तेज, असंतुलित सांस → बिखरी हुई ऊर्जा।

शांत मन → गहरी, धीमी, लयबद्ध सांस → ऊर्जा सहज रूप से ऊपर बहती है।

भावनात्मक स्थिति → भारी या असामान्य सांस → ऊर्जा हृदय में केंद्रित हो जाती है।

यह उतार-चढ़ाव मेटाबॉलिज्म को भी प्रभावित करता है। जब प्राण अस्थिर होता है, तो मेटाबॉलिज्म तेज़ हो जाता है और शरीर ज्यादा ऑक्सीजन खींचने लगता है। वहीँ, जब सांस संतुलित होती है, तो प्राण भी स्थिर रहता है, मेटाबॉलिज्म धीमा पड़ता है और ऑक्सीजन की जरूरत कम हो जाती है।

गहरे ध्यान में जब विचार शांत हो जाते हैं, तो सांस अपने आप धीमी हो जाती है या कभी-कभी रुक भी जाती है। तब शरीर कैसे चलता है? क्योंकि ऑक्सीजन की जरूरत घट जाती है। हृदय की गति धीमी हो जाती है, कोशिकाओं की गतिविधि कम हो जाती है और जीवन केवल प्राण पर निर्भर करने लगता है। गहरे ध्यान में डूबे योगी सांस के बिना भी जीवित रह सकते हैं क्योंकि वे केवल ऑक्सीजन पर नहीं, बल्कि प्राण ऊर्जा पर टिके रहते हैं।

प्राणायाम सिर्फ सांस पर नियंत्रण नहीं है, यह ऊर्जा को साधने की विधि है। जब हम सांस को नियंत्रित करते हैं, तो प्राण संतुलित होता है, मेटाबॉलिज्म सुचारू रहता है और मन स्थिर होता है। जब प्राण सहज रूप से बहता है, तो जीवन भी बिना किसी अवरोध के चलता रहता है। यही आंतरिक शांति और जीवनशक्ति का रहस्य है।

एक और राज की बात। जब शरीरविज्ञान दर्शन का प्रैक्टिकल ध्यान किया जाता है, तब भटकी हुई सांस संतुलन में आने लगती है। यह राजयोग है, यह सहज योग, यह ज्ञानयोग है। मतलब हम मस्तिष्क की विचार शक्ति से योग की ओर जा रहे हैं। अंत में योग वाले सभी रास्ते आपस में मिल जाते हैं, चाहे विचार वाला रास्ता हो,या चाहे सांस वाला रास्ता हो।

अधिकतर योगीराज अपने प्राणायाम के अनुभव को ऐसे लिखते हैं कि सांस भीतर ही भीतर बहने लग गई। इसका मतलब यह है कि प्राण भीतर ही भीतर अपने आप में बहने लग गया। अब वह अपने संचार के लिए सांस की गति पर निर्भर नहीं है। सांस तो वे अब सिर्फ ऑक्सीजन की प्राप्ति के लिए ले रहे हैं। इसके लिए बहुत कम सांस की जरूरत होती है। इसका मतलब है कि प्राणों को गति देने के लिए ली गई सांस में हमें बिना जरूरत के ऑक्सीजन लेनी पड़ती है। फिर बिना जरूरत के ही इसका उपयोग भी करना पड़ता है। इससे मेटाबॉलिज्म बढ़ता है। इससे हममें बेचैनी और तनाव बना रहता है और थकान भी, जिससे सही से आराम नहीं मिलता। मतलब अगर कम ऑक्सीजन में सांस लिया जाए तो दम घुटेगा क्योंकि सांस से पैदा किया हुआ प्राण और मेटाबॉलिज्म आपस में जुड़े हुए हैं। इन्हें अलग नहीं कर सकते। पर अंदरूनी प्राण या अंदरूनी सांस मेटाबोलिज्म को अपने हिसाब से या आधारभूत स्तर पर होने देती है, इसे कम या ज्यादा नहीं करती।

सांस से बढ़ाया हुआ प्राण हमेशा अधिक ऑक्सीजन की मांग करेगा, क्योंकि यह मेटाबॉलिज्म को तेज करता है। यदि कम ऑक्सीजन वाली जगह में गहरी सांस लेकर प्राण बढ़ाने का प्रयास किया जाए, तो प्राण-ऊर्जा बनाए रखने के लिए पर्याप्त ऑक्सीजन न मिलने से दम घुटने जैसा अनुभव होगा। पहाड़ों में योगी इसीलिए धीमी और स्वाभाविक श्वास लेते हैं, न कि गहरी योगिक सांस, ताकि प्राण और ऑक्सीजन की मांग में संतुलन बना रहे। जब तक प्राण सांस से स्वतंत्र नहीं होता , तब तक ऑक्सीजन की जरूरत बनी रहेगी, इसलिए श्वास और प्राण को संतुलित करना आवश्यक है। केवली कुंभक में सांस प्राण से अलग होने लगती है।

कुंडलिनी जागरण का आनंद बनाम समाधि का आनंद: तीव्रता से परे स्थिरता की खोज

बहुत से साधक जागरण की झलक पाने के बाद सोचते हैं: यदि जागरण का आनंद इतना तीव्र है, तो समाधि, जो कम ऊर्जावान महसूस होती है, वह श्रेष्ठ कैसे हो सकती है? क्या सर्वोच्च आनंद ही अंतिम स्थिति नहीं होनी चाहिए? मैंने अभी समाधि प्राप्त नहीं की है, लेकिन मुझे लगता है कि इसका उत्तर तीव्रता में नहीं, बल्कि स्थिरता, गहराई और स्थायित्व में है।

मेरा अनुभव: जागरण की तीव्रता और उसकी सीमाएँ

मेरे जागरण के दौरान, मैंने एक जबरदस्त आनंद का उफान महसूस किया, जैसे चेतना अनंत विस्तार में विस्फोट कर गई हो। मेरी सांस स्वाभाविक रूप से रुक गई और मैंने स्वयं का पूर्ण विलय अनुभव किया। लेकिन यह स्थिति इतनी तीव्र थी कि इसे बनाए रखना संभव नहीं था। शरीर की ऊर्जा समाप्त होने लगी और यह अवस्था जल्द ही फीकी पड़ गई। यह लगभग 10 सेकंड तक चली, लेकिन इसका प्रभाव गहरा था। यह चाहे जितनी भी गहरी अनुभूति थी, यह स्थायी मुक्ति नहीं थी। तब मैंने सोचा: क्या हो अगर समाधि इस ऊर्जा विस्फोट के बारे में बिल्कुल भी न हो?

जागरण का उफान: शक्तिशाली लेकिन अस्थायी

जागरण के क्षण में, ऊर्जा मस्तिष्क की ओर प्रवाहित होती है, जिससे अत्यधिक आनंद, व्यापक विस्तार और गहन जुड़ाव की अनुभूति होती है। लेकिन यह उफान प्राण पर निर्भर करता है, जो शरीर से अधिक ऊर्जा की मांग करता है। यह एक शिखर स्तर का अनुभव है, न कि स्थायी स्थिति। यह बिजली की चमक की तरह है, जो पल भर के लिए सब कुछ प्रकाशित कर देती है, लेकिन फिर गायब हो जाती है, और व्यक्ति इसे फिर से पाने के लिए लालायित रहता है।

समाधि: आनंद का गहरा, शांत सागर

जागरण के विपरीत, समाधि किसी ऊर्जा विस्फोट की स्थिति नहीं होती, बल्कि पूर्ण स्थिरता होती है। मेरे समझ के अनुसार, यह सूक्ष्म लेकिन अत्यधिक संतोषजनक अनुभव है। इसमें कोई ऊर्जा खर्च नहीं होती, कोई बल प्रयोग नहीं होता, कोई उत्तेजना आवश्यक नहीं होती। मन विलीन हो जाता है और अनंत, आत्म-निर्भर आनंद प्रकट होता है। यह जागरण के झटके जितना तीव्र नहीं लग सकता, लेकिन यह कभी समाप्त नहीं होता।

स्थिरता तीव्रता से अधिक शक्तिशाली क्यों है?

कल्पना करें कि दो प्रकार की रोशनी हैं: जागरण का आनंद = बिजली की चमक - अत्यधिक उज्ज्वल लेकिन क्षणिक। समाधि का आनंद = सूर्य - निरंतर, सहज और अटूट।

तेज ऊर्जा का उफान भ्रम को तोड़ सकता है, लेकिन केवल स्थिर समाधि ही उसे स्थायी रूप से मिटा सकती है। जागरण सत्य दिखाता है; समाधि उसे आपकी वास्तविकता बना देती है।

जागरण से समाधि की यात्रा

कई साधक केवल केवली कुम्भक (स्वतः सांस रुकना) को बनाए रखने की कोशिश करते हैं, यह सोचकर कि अधिक प्रयास उन्हें समाधि तक ले जाएगा। लेकिन प्रयास प्रतिरोध पैदा करता है। इसके बजाय, व्यक्ति को स्थिरता में समर्पण करना चाहिए, जिससे मन और प्राण स्वाभाविक रूप से शांत हो जाएं। जब सांस अपने आप रुक जाती है, बिना किसी बल के, तब सच्चा केवली कुम्भक सहज रूप से समाधि की ओर ले जा सकता है।

क्या कोई जागरण के बिना सीधे समाधि तक पहुँच सकता है?

कुछ लोग जागरण की तीव्रता महसूस किए बिना सीधे समाधि में प्रवेश करने का प्रयास करते हैं। गहरी ध्यान अवस्था मौन ला सकती है, लेकिन सच्ची समाधि के लिए अहंकार का पूर्ण विघटन आवश्यक होता है। बिना जागरण के, मन अभी भी सूक्ष्म अहंकार संरचनाओं से जुड़ा रह सकता है , जिससे उसका पूर्ण अवशोषण संभव नहीं हो पाता। जागरण इन बंधनों को ढीला करता है, जिससे सच्ची समाधि संभव होती है। इसके बिना, व्यक्ति गहरी तंद्रा अवस्था में जा सकता है, लेकिन सच्ची मुक्ति का अपरिवर्तनीय परिवर्तन नहीं हो पाता।

समाधि की वास्तविक श्रेष्ठता

जागरण एक अनुभव है। समाधि एक अवस्था है। जागरण आता-जाता रहता है। समाधि अटूट होती है। जागरण द्वार खोलता है। समाधि उस द्वार को पार करने की स्थिति है।

भले ही मैंने अभी समाधि प्राप्त नहीं की हो, मुझे विश्वास है कि सच्ची मुक्ति आनंद की खोज में नहीं, बल्कि उस स्थिति में विश्राम करने में है जो कभी समाप्त नहीं होती। शायद समाधि अधिक ऊर्जा के बारे में नहीं, बल्कि कम प्रतिरोध के बारे में है।

क्या कोई जागरण के बिना समाधि प्राप्त कर सकता है, विशेषकर यदि उसमें कम प्राण हो?

यदि किसी के पास जागरण की तीव्रता उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त प्राण न हो, तो क्या इसका मतलब है कि वह कभी समाधि प्राप्त नहीं कर सकता? ऐसा जरूरी नहीं है। यद्यपि ऊर्जा जागरण समाधि की प्राप्ति के लिए एक उत्प्रेरक का काम कर सकता है, लेकिन अंततः समाधि तो एक स्थिरता की अवस्था है, न कि ऊर्जा विस्फोट की। एक साधक, जिसके पास कम प्राण है, फिर भी समाधि तक पहुँच सकता है, यदि वह मौन को गहराई से अपनाए और अहंकार को विलीन कर दे। भले ही जागरण की बिजली न चमके, फिर भी लगातार ध्यान, समर्पण और स्थिरता में लीन होने से मुक्ति का द्वार खुल सकता है।

क्या आत्मबोध की झलक ही सबसे ऊँचा अनुभव है?

क्या किसी जीवित प्राणी के लिए आत्मबोध की झलक (ग्लिम्प्स) ही सबसे उच्चतम अनुभव है ? क्या इसे प्राप्त कर लेने का मतलब यह है कि उसने अपनी चरम सीमा पा ली? नहीं, क्योंकि झलक केवल शिखर का स्वाद देती है, लेकिन असली पूर्णता उस शिखर पर टिके रहने में है। जागृति के बाद व्यक्ति को अपने मौलिक स्वभाव में लौटना होता है, जो समाधि या मुक्ति की स्थिति है। लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं कि झलक का कोई मूल्य नहीं। यह एक दुर्लभ अनुभव है, जिसे कम से कम एक बार पाना ही जीवन को नई दिशा दे सकता है।

क्या मुक्ति में आत्मबोध की झलक से अधिक आनंद होता है?

जागृति की झलक में प्राण ऊर्जा एक तीव्र विस्फोट की तरह होती है, जिससे आनंद अत्यधिक और अकल्पनीय लगता है। यह प्रेम, भक्ति, रोमांस, सौंदर्य, दिव्यता—सभी को चरम पर पहुँचा देता है। लेकिन यह अनुभव अस्थायी होता है क्योंकि यह शरीर और मन की सीमाओं में बंधा होता है। दूसरी ओर, समाधि में यह ऊर्जा संतुलित रूप में स्थायी रहती है। वहाँ कोई संघर्ष नहीं, कोई गिरावट नहीं, केवल सहज पूर्णता होती है। यह संभव है कि समाधि का आनंद बाहरी रूप से जागृति से कम तीव्र लगे, लेकिन यह कभी समाप्त नहीं होता। जागृति का अनुभव बिजली की कौंध की तरह है, जबकि समाधि सूर्य के समान—शाश्वत और अडिग।

क्या बिना आत्मबोध की झलक के समाधि प्राप्त करने वाले को पछतावा रहेगा?

अगर कोई व्यक्ति सीधे समाधि में प्रवेश कर जाए और उसे आत्मबोध की तीव्र झलक न मिली हो, तो क्या उसे हमेशा यह पछतावा रहेगा कि उसने वह अनुभव नहीं किया? शायद हाँ। इसलिए संतों और शास्त्रों ने कहा है—मुक्ति से पहले प्रेम और पूर्ण समर्पण का चरम अनुभव करो। प्रेम , भक्ति और सौंदर्य की पराकाष्ठा आत्मबोध की झलक को जन्म देती है। यह क्षणिक हो सकती है, लेकिन इससे समाधि भी एक भावशून्य स्थिति नहीं, बल्कि आनंद और प्रेम से भरी पूर्णता बन जाती है।

जीवन में आत्मबोध की झलक क्यों आवश्यक है?

आत्मबोध की झलक केवल आध्यात्मिकता की बात नहीं है, यह जीवन की पूर्णता का अनुभव है। प्रेम और भक्ति का शुद्धतम रूप, गहरी करुणा, और अस्तित्व से असीम जुड़ाव—यह सब उसी झलक से संभव होता है। यह अनुभव हमें यह सिखाता है कि जीवन केवल मुक्त होने के लिए नहीं, बल्कि जीने के लिए भी है। केवल बंधन तोड़ने से मुक्ति नहीं मिलती, जब तक कि प्रेम, भक्ति और आनंद का पूर्ण विस्तार न हो जाए।

इसलिए, मेरा विश्वास है कि जीवन में कम से कम एक बार आत्मबोध की झलक पाना, चाहे वह क्षणभर के लिए ही क्यों न हो, सबसे मूल्यवान उपलब्धि हो सकती है। यह हमें न केवल सत्य की झलक देता है, बल्कि उसे जीने की प्रेरणा भी देता है।

पूर्णता का भ्रम

लंबे समय तक, मैं इस सूक्ष्म भ्रम में रहा कि ज्ञान की एक झलक पाने के बाद, मैंने सब कुछ पा लिया है। वह एक पल इतना पूर्ण, इतना अभिभूत करने वाला लगा कि मैंने इसे अंतिम गंतव्य समझ लिया। लेकिन जीवन, अपने परीक्षणों और सबक के साथ-विशेष रूप से शरीरविज्ञान दर्शन के लेंस के माध्यम से-एक गहरी सच्चाई को उजागर करता गया। वह झलक अंत नहीं थी, बल्कि केवल शुरुआत थी। यात्रा अभी खत्म नहीं हुई है, और आगे का रास्ता जितना मैंने कभी सोचा था , उससे कहीं अधिक लंबा है।

जागरण का मार्ग: आत्मज्ञान और सांसारिक जीवन के बीच संतुलन

जो लोग आत्मज्ञान की झलक पा चुके हैं, उनके लिए यात्रा तुरंत मुक्ति तक नहीं पहुंचती। बल्कि , यह एक गहरा सवाल उठाती है: क्या इस गहरे अनुभव को रोजमर्रा की जिंदगी में शामिल किया जा सकता है? मेरे अपने अनुभवों ने मुझे अलग-अलग स्तरों से गुज़ारा है—किशोरावस्था से लेकर बाद के वर्षों तक—जिसने आत्मज्ञान, संन्यास और सांसारिक जीवन के प्रति एक अनूठा दृष्टिकोण विकसित किया है।

मन से परे झलक

मेरा पहला महत्वपूर्ण आत्मज्ञान अनुभव किशोरावस्था में एक स्वप्न अवस्था में हुआ। यह एक शक्तिशाली एहसास था—जिसने मुझे अनंत ब्रह्मांड से जोड़ दिया। लेकिन, इसने एक अधूरेपन की भावना छोड़ दी, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि अनुभव परिवर्तनकारी तो था, लेकिन पूर्ण मुक्ति नहीं। वर्षों बाद, कुंडलिनी योग और तांत्रिक साधना के माध्यम से एक और सशक्त जागरण हुआ, जिससे मैं पूरी तरह आत्मविलय की स्थिति में चला गया। इस बार, अधूरेपन की भावना कम थी, लेकिन मैंने स्वयं ही ऊर्जा को वापस नीचे लाने का फैसला किया, क्योंकि मुझे लगा कि यह मुझे संन्यास की ओर ले जा सकता है।

इस ऊर्जा को नियंत्रित करने के निर्णय ने मुझे यह खोजने पर मजबूर किया कि आध्यात्मिक जागरण और सांसारिक जिम्मेदारियों के बीच संतुलन कैसे स्थापित किया जाए। कई लोग इस अनुभव के बाद पूर्ण संन्यास को अपना लेते हैं, लेकिन मैं जाग्रत अवस्था में रहते हुए संसार में बने रहने के लिए प्रेरित था।

क्या आत्मज्ञान से मृत्यु के बाद मुक्ति निश्चित है?

एक बड़ा प्रश्न यह उठता है कि क्या जीवन में एक बार आत्मज्ञान की झलक पाने के बाद मृत्यु के बाद मोक्ष निश्चित हो जाता है? विभिन्न परंपराएं इस पर अलग-अलग विचार रखती हैं। कुछ मानते हैं कि आत्मज्ञान का एक भी अनुभव आत्मा पर अमिट छाप छोड़ता है, जिससे मृत्यु के बाद भी मुक्ति की ओर मार्गदर्शन होता है। अन्य मानते हैं कि पूर्ण मुक्ति के लिए इस जागरण की स्थिति को स्थिर बनाए रखना आवश्यक है। मेरे विचार में एक गहरी आत्मज्ञान की झलक मृत्यु के बाद भी सही दिशा देती है, भले ही यह तुरंत मोक्ष न दे।

संन्यास या समावेश?

गहन समाधि जैसे सविकल्प समाधि का अनुभव होने के बाद यह सवाल उठता है कि क्या संन्यास लेना आवश्यक है? क्या कोई संसार में रहते हुए भी इस जागृति को बनाए रख सकता है ? प्रारंभ में, मैंने जागरूकता को स्थिर रखते हुए जिम्मेदारियों को निभाने का निर्णय लिया। समय के साथ, मैंने महसूस किया कि मेरी ऊर्जा आज्ञा चक्र पर स्थिर हो गई है, जिससे प्रत्याहार की स्थिति पैदा हो गई—जहां बाहरी संसार के प्रति रुचि कम होती जाती है, लेकिन फिर भी कार्यशील रहा जा सकता है।

हालांकि, इससे निचले चक्रों में सक्रियता कम हो गई, जिससे सांसारिक मामलों में रुचि घटने लगी। इसे संतुलित करने के लिए, मैंने पंचमकार साधना का न्यूनतम प्रयोग किया, इसे भोग नहीं बल्कि आत्म-संतुलन का साधन माना। इस रणनीतिक दृष्टिकोण ने मुझे जाग्रत स्थिति को बनाए रखते हुए सांसारिक जीवन में कार्यरत रहने की क्षमता दी।

क्रिया योग: एक व्यवस्थित दृष्टिकोण

जहां मेरी प्रारंभिक साधना अनौपचारिक और तीव्र थी, वहीं बाद में मैंने क्रिया योग को अपनाया , जो एक अधिक संरचित प्रणाली है। मेरे पहले के प्रयास केवल ऊर्जा को ऊपर उठाने पर केंद्रित थे , जबकि क्रिया योग धारणा, ध्यान और समाधि के माध्यम से एक क्रमबद्ध मार्ग प्रस्तुत करता है। हालांकि, मुझे लगा कि मेरे अनुभव पहले से ही इन अवस्थाओं को उत्पन्न कर चुके थे, लेकिन सहज रूप में, न कि निर्धारित चरणों में। अब, क्रिया योग मेरे लिए एक नया रहस्योद्घाटन नहीं बल्कि एक परिष्करण उपकरण है।

हालांकि, एक व्यावहारिक चुनौती भी सामने आई—भोजन के बाद गहरी श्वास क्रियाएं करने से गैस्ट्रिक एसिड और स्लीप एपनिया की समस्या बढ़ने की आशंका लगी। इसे हल करने के लिए मैंने भोजन के 4-5 घंटे बाद अभ्यास करने का निर्णय लिया, जिससे यह आशंका समाप्त हो गई।

यह साबित करता है कि आध्यात्मिक साधनाओं को शरीर की आवश्यकताओं के अनुसार समायोजित करना आवश्यक है।

मुख्य निष्कर्ष

आत्मज्ञान की झलक मृत्यु के बाद भी मार्गदर्शन करती है, लेकिन पूर्ण मोक्ष के लिए इसे स्थिर करना आवश्यक हो सकता है।

संसार में रहते हुए अद्वैत को अपनाया जा सकता है, लेकिन इसके लिए सचेत रहकर संतुलन साधना आवश्यक है। शरीरविज्ञान दर्शन इसमें आश्चर्यजनक रूप में सहायक है, जिसे मैंने अपने लिए बनाया था पर अब यह सबके लिए हर जगह उपलब्ध है।

क्रिया योग एक व्यवस्थित पद्धति है, लेकिन जो पहले से जाग्रत है, उसके लिए यह केवल refinement का कार्य करता है।

ऊर्जा के उच्च चक्रों में स्थिर होने से प्रत्याहार स्वाभाविक रूप से होता है, लेकिन संतुलन के लिए जड़ता को बनाए रखना आवश्यक है।

शारीरिक स्थितियां, जैसे GERD, आध्यात्मिक अभ्यासों को प्रभावित कर सकती हैं, इसलिए उन्हें सावधानीपूर्वक समायोजित करना आवश्यक है।

आगे की राह

अब मेरा ध्यान एक और बड़े अनुभव की तलाश करने पर नहीं बल्कि आत्मज्ञान की स्पष्टता बनाए रखने पर केंद्रित है। न तो पूरी तरह समाधि में लीन होना चाहता हूँ, न ही सांसारिक जीवन में खो जाना चाहता हूँ। मैं संतुलन बनाए रखते हुए अपनी साधना को निरंतर विकसित करने के लिए उत्सुक हूँ।

उन सभी के लिए जो इसी मार्ग पर चल रहे हैं, महत्वपूर्ण यह है कि अपनी ऊर्जा की प्रवृत्तियों को समझें और अपने अभ्यास को इस तरह ढालें कि यह आंतरिक जागृति और बाहरी जीवन दोनों को संतुलित रख सके। सच्ची मुक्ति पलायन में नहीं, बल्कि इस सत्य को अनुभव करने में है कि चाहे संसार में हों या समाधि में, जाग्रत अवस्था अटल बनी रहे।

कुंडलिनी जागरण ही जीव का चरम लक्ष्य

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जागृति ही किसी भी जीव का परम लक्ष्य है। मुक्ति जीव के हाथ में नहीं, न ही बंधन में पड़ना उसके नियंत्रण में था। परमात्मा ने जीव को बंधन में डालकर उसे जागृति की अनुभूति देने का अवसर प्रदान किया। परमात्मा का आत्मा बनकर संसार के बंधन में पड़ने का लॉजिक भी तभी बनता है अगर यह माना जाए कि उन्हें प्रेमसुलभ जागृति का अनुभव नहीं था। वे उसी की प्राप्ति के लिए मृत्युलोक में आए। अगर वह उन्हें पहले ही सुलभ होती तो वे क्यों अपना पूर्ण रूप त्यागकर जीवात्मा बन कर दुखों से भरी जीव योनियों में भटकते। बेशक वे खुद नहीं पर उनकी फोटोकॉपी ही जीव बन कर आती है पर लॉजिक तो फिर भी यही लगता। बिना मतलब या फायदे के फोटोकॉपी भी क्यों आती। और जब जीव को जागृति मिल गई तो उसके बन्धन में बने रहने का क्या उद्देश्य रह गया? इससे वह तो खुद ही मुक्त हो गया। लॉजिक तो यही कहता है, शास्त्र क्या कहते हैं, यह अलग बात है। प्रेम की पराकाष्ठा वाली जागृति की अनुभूति स्वयं परमात्मा को भी नहीं, क्योंकि उन्होंने कभी शरीर धारण नहीं किया। चढ़ती ऊर्जा का तूफान केवल शरीर में ही संभव है, और यही प्रेम का मूल स्रोत भी है। जागृति प्रेम से ही प्राप्त होती है। शायद परमात्मा जीव की जागृति को ही अनुभव करके संतुष्ट हो जाते हैं। उनके लिए क्या कुछ संभव नहीं है। वे अनंत हैं।

जीव ने अनगिनत वर्षों तक संसार में दुख झेले हैं। यह उसकी तपस्या का प्रतिफल है, एक ऐसा उपहार जो केवल भक्त जीवों के लिए है, स्वयं परमात्मा के लिए भी नहीं। इसीलिए वे भक्त को अपने से भी बड़ा मानकर उसकी खोज में लगे रहते हैं। यह विचार भक्ति मत से पूरी तरह मेल खाता है और शास्त्रों एवं संतों की शिक्षाओं से भी सहमत है।

मेरा अनुभव बताता है कि जीवन की सांसारिकता बाधा नहीं, बल्कि अवसर है। इसे ध्यानपूर्वक जिया जाए तो जागृति की दिशा में सहज प्रगति संभव है। शरीरविज्ञान दर्शन के समन्वय से यह और भी सुगम हो सकता है। मेरी अपनी यात्रा में, मैंने अभी तक निर्विकल्प समाधि का अनुभव नहीं किया, किंतु जागृति के स्पर्श को समझा है। यह अनुभव प्रेम और ऊर्जा के संतुलन से उपजा है।

मुझे यह भी प्रतीत होता है कि ऊर्जा को उठाने-गिराने की प्रक्रिया मात्र एक स्वाभाविक खेल है। इसे जबरन नियंत्रित करने की आवश्यकता नहीं, बल्कि इसे सहज रूप से स्वीकार करने की जरूरत है। जागृति कोई बाहरी उपलब्धि नहीं, बल्कि आंतरिक अनुभव और प्रेम की पराकाष्ठा है।

यदि जागृति अर्थात आत्मज्ञान की बजाय मुक्ति या समाधि ही मुख्य लक्ष्य होता तो इसकी प्राप्ति के लिए विभिन्न आध्यात्मिक पंथ जैसे कि विभिन्न किस्म के योग, तंत्र आदि न बने होते।

सभी लोग सिर्फ चुपचाप बैठकर अपने विचारों को साक्षीभाव से देखा करते। सभी हमेशा शांत रहकर दुनियादारी से हटकर जीवन गुजारा करते। मुक्ति तो किसीको दिखती नहीं है पर जागृति तो प्रत्यक्ष की तरह महसूस होती है। जागृति के लिए प्रयास करने से कम से कम जागृति मिलने की तो उम्मीद है ही, मुक्ति भी मिल सकती है। पर अगर जागृति को छोड़कर सिर्फ मुक्ति के लिए ही प्रयास किया गया तो यह भी हो सकता है कि न जागृति मिले और न ही मुक्ति। और मुक्ति मिलने का प्रमाण ही क्या है। आज कोई शांत है तो मुक्त है, पर अगर कल उस पर हमला होता है और वह बचाव की कार्यवाही करता है तो शांति खत्म और मुक्ति भी गायब। यह तो ऐसे ही है कि न माया मिली न राम। अधिकांश लोग मुक्त जैसा बनकर जीवन जीते रहते हैं। उनको देखकर पता ही नहीं चलता कि उनमें जीवन है भी कि नहीं। वे जागृति के लिए भी प्रयास नहीं करते क्योंकि वे इस भ्रम में रहते हैं कि वे तो मुक्त हैं। वे आपको शास्त्रों के उदाहरण देकर इसे एकदम से सही ठहरा देंगे। मुझे तो यह बहुत बड़ा शास्त्रीय छल लगता है। या यह शास्त्रों की अधूरी समझ है। या शास्त्र बाद के लोगों ने लिखे हैं। असली अनुभव करने वाले तो और ही थे।

मैं तो जागृति, कुंडलिनी जागरण, समाधि और आत्मज्ञान को एक ही चीज मानता हूं। कई स्थानों पर इनके अलग अलग अर्थ निकाले जाते हैं या इनके बीच में सूक्ष्म अंतर ढूंढे जाते हैं। मैं इन अव्यवहारिक झमेलों में नहीं पड़ता और न ही मुझे इनकी परवाह है। इनमें समय बर्बाद करने की बजाय अगर अनुभव के लिए समय लगाया जाए तो कुछ तो हासिल हो पाए।

मैंने यह भी अनुभव किया कि ध्यान में ऊर्जा पर अधिक ध्यान देने से ध्यान-प्रतिमा धुंधली पड़ जाती है। अतः ध्यान की मूल छवि को संजोकर रखना ही श्रेष्ठ है। दरअसल ध्यान चित्र पर ध्यान देने से ऊर्जा खुद संतुलित और उर्ध्वगामी हो जाती है मतलब खुद सभी चक्रों को यथावश्यक बल देती है, जबकि केवल ऊर्जा पर ही ध्यान देने से यह कहीं भी जा सकती है, जरूरी नहीं कि ध्यान चित्र को ही पुष्ट करे। मेरी यात्रा अभी जारी है, और मैं इस सत्य को और गहराई से समझने की ओर बढ़ रहा हूँ।

यदि इस अनुभव को अपनाया जाए, तो यह न केवल आत्मिक प्रगति देगा, बल्कि सांसारिक जीवन को भी संतुलित और समृद्ध बना सकता है। जागृति कोई दूरस्थ आदर्श नहीं, बल्कि प्रत्येक क्षण में उपलब्ध सत्य है। यह प्रेम और समर्पण के साथ ही संभव है।

कुंडलिनी, आनंद, श्वास और अद्‌वैत: एक प्राकृतिक अभिव्यक्ति

मैंने अपने अभ्यास में कुछ दिलचस्प देखा है - जब मैं शरीरविज्ञान दर्शन पर ध्यान करता हूँ, तो अद्‌वैत की भावना उत्पन्न होती है। जैसे ही ऐसा होता है, मेरी साँस लंबी और स्थिर हो जाती है। ऐसा लगता है जैसे साँस इस अद्‌वैत जागरूकता को पोषित करने के लिए बह रही है। ऐसा लगता है कि तेज़ बाहरी और अनियमित साँस केवल द्‌वैत को बनाए रखने के लिए होती है ताकि व्यक्ति दुनिया में बंधा रहे।

केवला कुंभक के दौरान, मेरी साँस तेज़ लेकिन आंतरिक हो गई, और केवल लगभग 5% बाहरी रूप से महसूस हुई। यह तनावपूर्ण नहीं था। यह रीढ़ की हड्‌डी से होकर गुज़रती हुई लग रही थी, हालाँकि पूरी तरह से स्पष्ट नहीं थी।

एक दिन, मैंने तनावपूर्ण कार्य से भरे वातावरण में पूरी तरह से व्यस्त रहते हुए पूरे दिन अद्‌वैत जागरूकता बनाए रखी। शाम को, रेन शेल्टर में बस का इंतज़ार करते हुए, मैंने कूटस्थ पर हल्का ध्यान किया। कुछ उल्लेखनीय हुआ, शायद केवल कुंभक - यात्रा के दौरान दो घंटे तक यह स्थिति बनी रही। मुझे घर जाने के लिए जानबूझकर इससे बाहर निकलना पड़ा। फिर भी, यह अनुभव उसी तरह दोहराया नहीं जा सका है। हां, एक दो दिन बाद एक बार फिर वैसा ही और उसी परिस्थिति में हुआ था। एक दो दिन बाद फिर तीसरी बार ऐसा ही हुआ था, जब मैं घर पर था , और परिवार वालों ने डर के मारे थोड़े समय बाद ही मुझे जबरन उठा दिया था। इसका मतलब कि उन्हीं दिनों में मेरा विशेष स्वभाव बना था जो इसके अनुकूल था। मैं अज्ञात के प्रति समर्पित हो गया था, शायद सांसारिक थपेड़े सहकर। मतलब समर्पण बहुत जरूरी है। साथ में ज्ञानपूर्ण जीवन व्यवहार भी। फिर भी, लगता है कि मुझमें एक सूक्ष्म परिवर्तन हो रहा है। मेरा अभ्यास अब चरम अवस्थाओं का पीछा करने के बारे में नहीं है। इसके बजाय, यह पिछली अंतर्दृष्टि का एक स्वाभाविक सिलसिला है, जो प्राणायाम की गहरी समझ और कैसे अद्‌वैत सक्रिय और निष्क्रिय मोड के बीच बदलता है, की ओर ले जाता है। इसका मतलब है, पहले अद्‌वैत का स्वेच्छा से अभ्यास किया जाता था, अब यह दूसरी आदत बन रही है। कई बार, इसे बनाए रखने के लिए सूक्ष्म ध्यान की भी आवश्यकता होती है, और प्रतिस्पर्धी दुनिया में, मैं कभी-कभी एक अवधारणात्मक बेमेलपना भी महसूस करता हूँ। पहले, मैं पूरी दुनियादारी और पूर्ण अद्‌वैत के साथ एक साथ रहता था, लेकिन यह तनावपूर्ण था। इसे वास्तव में तनाव भी नहीं कह सकते, क्योंकि इससे शांति और दुनियादारी की तपिश से राहत मिलती थी। हां, इसे उच्च ऊर्जा वाली अवस्था कह सकते हैं। अब, उम्र और चिकित्सा कारणों के साथ, मेरी ऊर्जा अलग है, और मैं चीजों को बलपूर्वक संतुलन देने के बजाय उन्हें स्वाभाविक रूप से बहने देता हूँ।

सांस और प्राण: वास्तव में क्या हो रहा है?

क्रिया श्वास के दौरान, जब मेरा पेट आगे की ओर बढ़ता है, तो ऐसा लगता है जैसे प्राण मूलाधार से चूसा जा रहा है, और सांस निष्क्रिय रूप से उसका अनुसरण करती है। ऐसा लगता है कि सांस की मुख्य भूमिका प्राण को प्रवाहित करना है, न कि इसके विपरीत। सांस को नियंत्रित करने के बजाय, प्राण स्वाभाविक रूप से प्रक्रिया का नेतृत्व कर रहा है। पहले मैं सोचता था कि सांस लेने से प्राण नियंत्रित होता है। प्राणायाम के दौरान मैं रीढ़ की हड्डी के माध्यम से प्राण की गति को अनदेखा करते हुए बस सांस लेता था। अब क्रिया योग ने मुझे दूसरा रास्ता दिखाया, यानी प्राणमय सांस लेना जो अधिक संतुष्टिदायक लगती है। हालाँकि मेरी प्राकृतिक प्रवृत्ति ने मुझे कुंडलिनी शक्ति को मूलाधार से ऊपर उठाने के नाम पर यौन योग के माध्यम से प्राणमय सांस लेने के लिए पहले से ही प्रेरित किया हुआ था, जिसने शायद मेरी क्षणिक जागृति में मदद की। प्राणमय सांस लेना कहें या कुंडलिनी को ऊपर उठाना या प्राण को ऊपर उठाना, यह एक ही बात है और इनमें शरीर, सांस, बंध या जो भी हो, सबका खिंचाव और धक्का समान ही है। यह सब शब्दों का जाल है जिस पर हमें बिना गिरे सुरक्षित रूप से घर की ओर चलना है, बल्कि इसका सहारा लेना है। जब मैं सांस लेते समय शांभवी मुद्रा में कूटस्थ से ऊपर की ओर देखता हूं, तो संतुष्टिदायक सांस गहरी हो जाती है और अधिक आनंदमय हो जाती है और मेरे शरीर के सिंहासन को मुकुट तक भर देती है। यह दूसरा प्रमाण है कि सांस प्राण का अनुसरण करती है। ध्यान ऊपर की ओर का अर्थ है प्राण ऊपर की ओर। ध्यान या कुंडलिनी या प्राण एक साथ सह -अस्तित्व में रहते हैं।

द्वैत से भरे सांसारिक कार्यों के दौरान हमारी जागरूकता या प्राण तेजी से ऊपरी और निचले चक्र क्षेत्रों के बीच झूलता रहता है। ऊपरी चक्र प्रकाश से भरे होते हैं और निचले चक्र अंधकार से भरे होते हैं। साथ ही अलग-अलग चक्र अलग-अलग सांसारिक भावनाओं से निपटते हैं। द्वैत भी प्रकाश और अंधकार के मिश्रण से बना है और परिस्थिति के अनुसार उनके अलग-अलग शेड या रंग हैं। तेजी से ऊपर-नीचे चलती प्राण शक्ति तेजी से ऊपर-नीचे सांस चलाती है ताकि तेजी से स्थान बदलाव में उससे सहायता ले सके। इस झूलते हुए क्षण में शरीरविज्ञान दर्शन पर थोड़ा ध्यान करने से आश्चर्यजनक रूप से मन में तुरंत अद्वैत आता है और तुरंत लंबी संतुष्टिदायक और आनंदमय सांस आती है, जिसके बाद यह नियमित धीमी और थोड़ी गहरी होकर चलने लगती है। यह सब सांस और प्राण की परस्पर जुड़ी प्रकृति को साबित करता है। आप खुद भी इसे महसूस कर सकते हैं। इसलिए मुझे लगता है कि प्राणायाम को यह सोचकर डिज़ाइन किया गया था कि अगर अद्वैत सांस को स्थिर कर सकता है तो सांस को स्थिर करने से अद्वैत भी पैदा हो सकता है।

यह प्राणमय श्वास एक आनंदमय, संतोषजनक और संपूर्ण जैसा अनुभव लाती है। यह आनंद अमूर्त नहीं है। इसमें एक यौनता वाला गुण है, जो निचले केंद्रों से उठता है और ध्यान की छवि में परिवर्तित हो जाता है। बाहर की ओर फैलने के बजाय, यह ध्यान को बढ़ावा देता है, यह पुष्टि करता है कि प्राण-शक्ति स्वाभाविक रूप से उदात्त हो रही है।

ध्यान से परे, मैंने देखा है कि यह आनंद निम्न परिस्थितियों में मेरे पूरे अस्तित्व में फैल जाता है :

शारीरिक आसन

सुंदर स्थानों की यात्रा, विशेष रूप से परिवार के साथ

अद्वैत जागरूकता के साथ दुनिया में शामिल होना

प्रयास से प्रवाह तक

पहले, आनंद रीढ़ और मस्तिष्क में स्थानीयकृत था, लेकिन अब, जैसे-जैसे अद्वैत प्राण प्रवाह के प्रतिरोध को हटाता है, आनंद पूरे शरीर में प्रवाहित होता है। स्थिरता बढ़ गई है। मुझे अब आनंद को थामे रखने की ज़रूरत नहीं है - यह सहज रूप से बहता है।

फिर भी, मैं मानता हूँ कि और भी बहुत कुछ परिष्कृत करने की ज़रूरत है। मैं सहज समाधि जैसी अपरिवर्तनीय अवस्था तक नहीं पहुँचा हूँ, और मैं इस बात से अवगत हूँ कि दैनिक जीवन में स्थिरता एक सतत प्रक्रिया है। लेकिन अब रास्ता साफ़ है - अद्वैत हमेशा ज़बरदस्ती करने वाली चीज़ नहीं है, हालाँकि शुरुआती दिनों में सीखने के लिए ऐसा करना ज़रूरी लगता है, लेकिन कुछ ऐसा है कि जब प्रतिरोध समाप्त हो जाता है तो स्वाभाविक रूप से स्थिति सामने आने लगती है।

झलक जागरण: रास्ते की सच्ची गवाही

सभी मित्रों को शिवरात्रि पर्व की हार्दिक शुभकामनाएं, भगवान शिव सबका कल्याण करें

आज के वैज्ञानिक दौर में केवल वही चीज़ें मूल्यवान मानी जाती हैं जो **सीधे अनुभव की जा सकें** । अध्यात्म भी इससे अलग नहीं होना चाहिए—यह सिर्फ़ मान्यताओं पर नहीं, बल्कि **व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित** होना चाहिए। यही कारण है कि झलक जागरण (Glimpse Awakening) इतना महत्वपूर्ण है। जहां अंतिम मोक्ष (Liberation) एक धुंधली और दूर की अवधारणा लगती है , वहीं ये झलकियाँ **स्पष्ट प्रमाण** हैं—ऐसे क्षण जब अहंकार मिट जाता है और केवल शुद्ध चेतना शेष रह जाती है।

मैंने भी ऐसे जागरण के अनुभव किए हैं—**गहरे, लेकिन क्षणिक**। उन पलों में "मैं" नाम की कोई पहचान नहीं बची, सिर्फ़ शुद्ध अस्तित्व शेष रहा। लेकिन ये अनुभव स्थायी नहीं थे। उन्होंने मुझे पूरी तरह बदल नहीं दिया और न ही किसी अंतिम स्थिति तक पहुँचाया। मैं यह दावा नहीं करता कि मुझे **अंतिम मुक्ति प्राप्त हो गई है**। बल्कि, इन अनुभवों ने यह स्पष्ट कर दिया कि **किसी मनोकल्पित लक्ष्य को पाने की चाह ही सबसे बड़ी भ्रांति** है।

ये झलकियाँ मेरे लिए **मार्गदर्शक और दर्पण दोनों रही** हैं—रास्ता दिखाने वाली भी और यह बताने वाली भी कि मैं कहाँ खड़ा हूँ। इन्होंने **मेरी कमज़ोरियों को उजागर किया**, जिससे मैं आध्यात्मिक भ्रमों में फँसने से बचा रहा। अनेक पंथों और उनके तथाकथित आध्यात्मिक स्कूलों के चंगुल से बचा रहा। बहुत से साधक केवल कल्पनाओं में खो जाते हैं, लेकिन झलक जागरण **विश्वास के बजाय अनुभव का प्रमाण** देता है।

इन अनुभवों ने मेरी **जिज्ञासा को और बढ़ाया**। अब मैं किसी अनदेखे "मोक्ष" की तलाश में नहीं हूँ, बल्कि उस **अनुभव को स्थिर और गहरा करने में रुचि रखता हूँ**, जिसे मैंने पहले ही छू लिया है। अब यह किसी अज्ञात लक्ष्य का पीछा करने के बजाय **जो पहले से यहाँ है, उसे निखारने का प्रयास** है।

इसे हासिल करने के लिए मैं **संगठित अभ्यास और सहजता** दोनों का सहारा लेता हूँ, जो भी उस समय उपयुक्त लगे। अनुशासन स्थिरता देता है, जबकि सहजता अनुभव को प्राकृतिक बनाती है। विभिन्न समुदायों से काम की चीजें भी लेता हूं और अपने हिसाब से भी अपनाता हूं। किसी स्कूल या समुदाय विशेष के बंधन में भी नहीं रहता। **दोनों का संतुलन आवश्यक है**, और इसका प्रभाव मैं अपनी ध्यान छवि (Meditation Image) में स्पष्ट रूप से देखता हूँ। अगर छवि धुंधली पड़ने लगे , तो कभी अनुशासन से, तो कभी सहजता से उसे संतुलित करता हूँ। यही संतुलन इसे जीवंत बनाए रखता है।

इसके अलावा, मैंने यह भी जाना कि **ऊर्जा का प्रवाह स्वाभाविक होता है**। यह स्वयं ऊपर-नीचे होता रहता है, इसे ज़बरदस्ती नियंत्रित करने की आवश्यकता नहीं है। पहले मैं इसे रोकने या दिशा देने की कोशिश करता था, लेकिन अब मैं इसे स्वाभाविक रूप से बहने देता हूँ। हां, साधना के समय तो

बलपूर्वक ध्यान लगाना ही पड़ता है। मेरा ध्यान अब किसी कल्पित भविष्य पर नहीं, बल्कि **जो इस क्षण में मौजूद है, उसे पूरी तरह अनुभव करने पर** केंद्रित है।

इन झलकियों ने मुझे दिखा दिया है कि **आध्यात्मिक पथ कोई भ्रम नहीं है**। ये अंतिम मंज़िल नहीं हैं, लेकिन यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि जागरण वास्तविक है। किसी दूर के मोक्ष की प्रतीक्षा करने के बजाय, मैं **अन्वेषण, परिष्करण और गहराई** को प्राथमिकता देता हूँ—क्योंकि जो अभी यहाँ मौजूद है, वही सबसे प्रामाणिक सत्य है।

प्राण: शरीर, मन और अनुभव के बीच छुपा हुआ पुल

आदि तंत्रयोगी शिव को उनके पावन शिवरात्रि महोत्सव के अवसर पर कोटि कोटि नमन, वे सब पर कृपा बनाए रखें।

एक साधारण लेकिन गहरा सवाल मेरे मन में उठा - **जब हमें पैर में दर्द होता है, तो हमें यह पैर में ही क्यों महसूस होता है, जबकि दर्द का सारा संकेत मस्तिष्क में जाता है?**

अगर मस्तिष्क ही अनुभव का केंद्र होता, तो दर्द वहीं महसूस होना चाहिए था, न कि पैर में। लेकिन ऐसा नहीं होता। इसका मतलब यह हुआ कि कोई सूक्ष्म ताकत शरीर और चेतना को जोड़ रही है, जो अनुभव को उसी जगह महसूस कराती है जहां वह होता है। यही **अदृश्य कड़ी प्राण है** ।

प्राण: केवल ऊर्जा नहीं, यह चेतना को स्थान देता है

अगर प्राण सिर्फ सांस या जीवन-शक्ति होता, तो यह नहीं समझा पाते कि अलग-अलग भावनाएँ शरीर के अलग-अलग हिस्सों में क्यों महसूस होती हैं। प्रेम हृदय में महसूस होता है, डर पेट में ,और काम ऊर्जा निचले अंगों में। **प्राण एक ऐसा जाल है जो चेतना को अभौतिक पर अनुभवात्मक नाड़ियों के माध्यम से शरीर के विभिन्न हिस्सों से जोड़ता है, जिससे हर अनुभव वास्तविक और विशिष्ट स्थान पर होता** है।

यह समझ मुझे प्राण के प्रति एक नई दृष्टि देता है—**यह केवल ऊर्जा का प्रवाह नहीं है, बल्कि स्वयं अनुभव का प्रवाह है।**

तंत्र योग: अनुभव को शरीर से मन तक पहुँचाना

यही सिद्धांत मेरे तंत्र योग अभ्यास से भी जुड़ता है। तंत्र में काम ऊर्जा को दबाया नहीं जाता, बल्कि ऊपर उठाया जाता है। सामान्यतः, सुख का अनुभव निचले हिस्सों में होता है क्योंकि वहाँ प्राण केंद्रित होता है। लेकिन कुछ विशेष विधियों से **इस ऊर्जा को मस्तिष्क तक ले जाया जा सकता है**।

जब प्राण ऊपर उठता है, **तो चेतना का अनुभव भी स्थान बदल लेता है**।

- जो सुख पहले केवल इंद्रियों तक सीमित था, वह **स्थिर आनंद, स्पष्टता और ध्यान में बदल जाता है**।
- बाहरी उत्तेजना आंतरिक प्रकाश में बदल जाती है।

मैंने इस बदलाव को अनुभव किया है, लेकिन अभी इसे पूरी तरह स्थिर नहीं कर पाया हूँ। प्रक्रिया स्पष्ट है, लेकिन सच्ची सिद्धि—जहाँ प्राण सहज रूप से ऊर्ध्वगमन करे—अभी बाकी है।

स्वास्थ्य पर प्रभाव: क्या यह अभ्यास नुकसानदायक हो सकता है?

ऊर्जा को ऊपर उठाने से मानसिक स्पष्टता और गहरा ध्यान आता है, लेकिन **यदि इसे जबरदस्ती किया जाए, तो यह असंतुलन भी ला सकता है**। कुछ संभावित समस्याएँ हो सकती हैं:

- **सिर में भारीपन या मानसिक थकान:** यदि प्राण को बिना संतुलन के मस्तिष्क में रोका जाए, तो यह असहजता या दुनिया से कटाव पैदा कर सकता है।
- **दुनियावी कार्यों में रुचि कम होना:** यदि प्राण अचानक ऊर्ध्वगमन कर जाए, तो सांसारिक चीज़ों में दिलचस्पी कम हो सकती है।
- **शारीरिक असंतुलन:** बिना सही संतुलन के ऊर्ध्वगमन से तंत्रिका तंत्र, पाचन या यौन ऊर्जा से जुड़ी समस्याएँ हो सकती हैं।

संतुलन बनाए रखना ज़रूरी है

मैंने सीखा है कि **प्राण को खींचना नहीं, उसे सहजता से बहने देना ही सही तरीका है**। जब यह स्वाभाविक रूप से होता है, तो **संतुलित विकास होता है, बिना किसी परेशानी के**। मैं ज़रूरत पड़ने पर खुद को ग्राउंड करने की तकनीक अपनाता हूँ, ताकि ऊँचाई और स्थिरता दोनों बनी रहें।

आध्यात्मिक यात्रा और मेरी सीख

इस पूरी प्रक्रिया से मेरे सामने कुछ गहरे सत्य खुले:

- **प्राण सिर्फ जीवन को बनाए नहीं रखता, यह चेतना को भी दिशा देता है।**
- **जहाँ प्राण बहता है, वहाँ अनुभव बनता है।**
- **यदि हम प्राण को नियंत्रित कर सकते हैं, तो हम केवल ऊर्जा ही नहीं, बल्कि अपने पूरे अनुभव को नियंत्रित कर सकते हैं।**

मैं इस बदलाव की झलक देख चुका हूँ, लेकिन अभी इस साधना को और परिपक्व बनाना बाकी है। मेरा लक्ष्य इसे सहज और स्वाभाविक बनाना है—कोई अस्थायी अनुभव नहीं, बल्कि ऐसा स्थायी संतुलन जो आध्यात्मिक उन्नति और सांसारिक जीवन दोनों को बनाए रखे।

कुंडलिनी: प्राण जागरण की देहरी

"हे महादेव, जो रूप और काल से परे हैं,
मैं गंगा बनकर आपकी जटाओं में विलीन हो जाऊँ,
मैं धूनी बनकर आपकी योग-अग्नि में जलूँ,
मैं कुण्डलिनी बनकर आपके तांडव में उठूँ।
अब न जीवन मेरा, न मृत्यु का भय,
बस आप ही हैं—अनंत शून्य, गूँजता मौन,
परम आनंद, जहाँ मैं भी शिव हो जाऊँ!"

शिवरात्रि की अनंत शुभकामनाएँ!

पहले मुझे लगता था कि कुंडलिनी कोई रहस्यमयी शक्ति है, लेकिन अब समझ आया कि यह बस **वह क्षण है जब प्राण अपनी सीमा पार कर जागरण के स्तर तक पहुँच जाता है।** मेरा अनुभव सालों की धीमी साधना का नहीं था—**यह महज एक महीने में हुआ।**

मैं **गहन तांत्रिक कुंडलिनी योग** कर रहा था, जिससे वह प्राण, जो सामान्यतः **यौन ऊर्जा में सिमटकर नष्ट हो जाता**, ऊपर उठने लगा। इस ऊर्जा को मैंने **बुद्धि और ध्यान की छवि को पोषण देने में लगाया।** फिर एक दिन, जैसे ही **सीमा पार हुई, प्राण तीव्र वेग से मस्तिष्क में प्रवाहित हुआ , और जागरण की झलक सामने आई।**

लंबे समय तक प्राण संचय से जागरण क्यों नहीं होता?

बहुत से लोग सालों तक प्राण संचित करते हैं, फिर भी जागरण नहीं होता। **क्यों?** क्योंकि यह ऊर्जा धीरे-धीरे **विचारों, इच्छाओं और सांसारिक उलझनों में लीक होती रहती है।** यदि ऊर्जा बढ़ भी जाए , तो **वह अंतरालों में टूटकर पुनः घट जाती है, जिससे यह कभी उस अंतिम सीमा तक नहीं पहुँचती।** मेरा तरीका अलग था—**मैंने इसे बांधा, व्यर्थ न जाने दिया और सीधे मस्तिष्क तक पहुँचाया।**

ढाई कुंडली वाले सर्प और चक्रों का रहस्य

अब समझ आता है कि कुंडलिनी को **ढाई कुण्डलियों में लिपटे सर्प** की तरह क्यों दर्शाया गया है—

- **कुण्डलीबद्ध सर्प = निष्क्रिय, संचित प्राण।** ढाई कुंडली शायद चक्रों के घेरों को कहा है। पहली कुंडली मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्रों की है। यह सबसे बड़ी होती है, मतलब शुरु में इन चक्रों से प्राण शक्ति को छुड़ाने में ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है। दूसरी कुंडली मणिपुर और अनाहत चक्र की है। इसे खोलना कुछ आसान होता है। इसके ऊपर के तीनों चक्र आधी कुंडली में दर्शाए गए हैं। मतलब इसके ऊपर कुंडलिनी शक्ति आराम से चढ़ती है।
- **सीधा उठता सर्प = ऊर्जा का ऊपर उठना, चक्रों को जागृत करना।**
- **फण फैलाना = जब ऊर्जा शिखर तक पहुँचकर जागरण को जन्म देती है।**

कई ग्रंथ बताते हैं कि कुंडलिनी **एक-एक चक्र को पार करके उठती है,** लेकिन मेरे अनुभव में यह क्रमिक प्रक्रिया नहीं थी—**यह सीधे मस्तिष्क में प्रवाहित हुई।** मेरी धारणा, ध्यान और समाधि कोई क्रमबद्ध प्रक्रिया से नहीं आई, बल्कि **साधना के आरंभ से ही मेरे भीतर थी।**

प्राकृतिक स्थितियाँ भी सहायक रहीं

यह केवल मेरा प्रयास नहीं था—**कुछ चीज़ें अपने आप सही दिशा में थीं:**

मेरा प्राणतंत्र पहले से जागरण के करीब था।

कोई बड़ी सांसारिक उलझनें ऊर्जा को व्यर्थ नहीं कर रही थीं।

साधना ने आखिरी चिंगारी का काम किया।

मुख्य कारण ~ शिव की दिव्य कृपा

अब तक मैं कहाँ पहुँचा और क्या शेष है?

मैं इस अवस्था में अधिक देर तक नहीं रह सका—**बस दस सेकंड।** मैं अभी तक **निर्विकल्प समाधि** तक नहीं पहुँचा, और न ही अब किसी जबरदस्ती के जागरण की इच्छा है। लेकिन मैं देख सकता हूँ कि **अब भी ध्यान धीरे-धीरे ऊर्जा का संचय कर रहा है,** जिसका प्रभाव **आनंद और ध्यान की छवि की तीव्रता के रूप में प्रकट होता है।**

अब मैं अपनी साधना को संतुलित रूप से अपनाता हूँ:

- **काम के दबाव के दौरान:** शरीरविज्ञान-दर्शन (Sharirvigyan Darshan)।
- **खाली समय में:** क्रिया योग।
- **जब दुनिया से पूरी तरह अलग और शरीर स्वस्थ हो:** तंत्र।

अंतिम समझ: कुंडलिनी कोई रहस्य नहीं, बस एक सीमा रेखा है

कुंडलिनी **कोई बाहरी शक्ति नहीं, यह बस वह अवस्था है जब प्राण अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाता है।** मेरा अनुभव यही बताता है कि **धीमी संचय प्रक्रिया ऊर्जा को लीक कर देती है, लेकिन तीव्र, केंद्रित साधना इसे तब तक बाँधकर रखती है, जब तक कि जागरण की बाढ़ न आ जाए।** क्या मैं दोबारा जागरण के स्तर तक जाने की कोशिश करूँगा? **शायद नहीं।** जिज्ञासा बनी रहेगी , लेकिन अब मैं इसके स्वभाव को समझकर ही संतुष्ट हूँ।

कुंडलिनी ऊर्जा कीप: जागरण, संतुलन और ग्राउंडिंग तकनीकें

अपने अनुभव से मैंने समझा कि कुंडलिनी ऊर्जा की धारा एक प्रकार की कीप या फनल से गुजर कर बहती है। वह फनल पूरे शरीर से प्राण इकट्ठा करके, उसे मूलाधार चक्र के आसपास संचित करती है, और सुषुम्ना नाड़ी नामक निकासी नलिका के माध्यम से आज्ञा और सहस्रार तक ले जाती है। अगर यह ऊर्जा सीधी ऊपर जा सकती, तो इस फनल प्रक्रिया की जरूरत ही नहीं होती। लेकिन जब तक फनल के रूप में कोई स्वाभाविक संग्रहण बिंदु और उचित निकास मार्ग नहीं होता, तब तक इसकी तीव्रता वैसी नहीं बन पाती जितनी जागृति के लिए जरूरी है। माना कहीं शरीर में और भी ऊर्जा का संग्रहण बिंदु हो सकता है, पर उससे कोई समर्पित निकासी नलिका सीधी मस्तिष्क तक नहीं जाती जैसी सुषुम्ना जाती है। और तो और इस कीप के शंकु के अंदर फिल्टर पेपर भी लगा हुआ है। यह वासना, आसक्ति, दुर्व्यवहार, घृणा, द्वैत आदि अशुद्धियों को छानकर कुंडलिनी ऊर्जा की धारा को शुद्ध करके ही आगे भेजती है।

जिस प्रकार यांग शक्ति स्वाभाविक रूप से यिन की ओर बहती है, उसी तरह शरीर रूपी पर्वत से ऊर्जा की धाराएँ तलहटी में स्थित एक अदृश्य झरने की ओर खिंचती हैं। जैसे पहाड़ की ऊँचाइयों से रिसकर जल सबसे निचले स्रोतों में इकट्ठा होता है, वैसे ही जीवन-ऊर्जा भी पहले मूलाधार नामक अपने सबसे गहरे केंद्र में समाहित होती है। यह आकर्षण गुरुत्वाकर्षण का ही खेल है—यांग और यिन का सनातन मिलन।

परन्तु, यदि जल को पुनः पर्वत की चोटी पर ले जाना हो, तो हमें पंप का सहारा लेना पड़ता है। ठीक वैसे ही, जब ऊर्जा को उच्चतम चक्रों तक पहुँचाना होता है, तो साधना रूपी पंप इसकी दिशा मोड़ता है। सीधे पर्वत के कण-कण से जल एकत्र करना कठिन है, इसलिए पहले इसे खुद नीचे एकत्रित होने दिया जाता है, फिर इसे ऊपर उठाया जाता है। यह यात्रा केवल बहाव की नहीं, बल्कि संतुलन और पुनरुत्थान की है—एक चिरंतन चक्र, जहाँ गहराई ही ऊँचाई की जननी बनती है।

प्राण को सीधे मस्तिष्क तक ले जाया जा सकता है, लेकिन जब यह इस ऊर्जा फनल से होकर गुजरता है, तब इसकी शक्ति कई गुना बढ़ जाती है। पर इसके लिए पूर्ण एकांत (आइसोलेशन) जरूरी होता है। अगर इंद्रियां सक्रिय रहीं, तो इनसे होकर ऊर्जा चारों ओर बिखर कर बाहर चली जाती है, जिससे ऊपर उठने के लिए जरूरी दबाव नहीं बन पाता। दबाव कम हुआ तो निकासी मार्ग पूरी तरह नहीं खुलता, और अगर सहनशक्ति से अधिक दबाव बन जाए, तो ऊर्जा उलटी दिशा में बह सकती है, जिससे असंतुलन हो सकता है। अगर अधिक ऊर्जा इकट्ठा हो जाए लेकिन सही ढंग से निकल न पाए, तो यह भीतरी स्तर पर तनाव और परेशानी पैदा कर सकती है, और फनल को भी नुकसान पहुंचा सकती है। मस्तिष्क यदि फनल से ऊर्जा लेने के लिए तैयार हो जाए लेकिन ऊर्जा न पहुंचे, तो वहां भी बेचैनी हो सकती है।

मैंने इसे प्रत्यक्ष अनुभव किया है। ऊर्जा के अधिक संचय और बाहरी अशांति के कारण उपयुक्त निकासी न होने के कारण शारीरिक तकलीफ भी हुई, जिसमें सूजन जैसी समस्या शामिल हो सकती है, खासकर प्रोस्टेट में। हालांकि इसके लिए और भी वजहें जिम्मेदार हो सकती हैं। मुझे ऊर्जा के विपरीत बहने (बैकफ्लो) का विचार पानी के प्रवाह को देखकर आया—अगर किसी मार्ग को एकतरफा प्रवाह के लिए बनाया गया है, और वह अवरुद्ध हो जाए, तो पानी उलटी दिशा में बहकर गड़बड़ी कर देता है।

इस पूरे अनुभव से मैंने समझा कि संतुलन सबसे जरूरी है। तनाव कम करने, योग, प्राणायाम और क्रिया-श्वास विधियों से राहत मिली। विशेष रूप से ग्राउंडिंग (संतुलन साधना) ने बहुत मदद की—इससे मस्तिष्क की ऊर्जा की मांग कम हो जाती है, जिससे ऊर्जा-फनल पर अनावश्यक दबाव नहीं पड़ता और यह अपने स्वाभाविक रूप में स्थिर रहती है। मेरे लिए प्राण और ऊर्जा एक ही चीज़ हैं , बस अलग-अलग दृष्टिकोण से देखे जाते हैं।

मैं अभी इस प्रक्रिया का पूर्ण ज्ञानी नहीं बना, न ही कोई अटल आत्मबोध प्राप्त किया है। मेरी यात्रा जारी है, और समझ निरंतर गहरी होती जा रही है। अब मैं ऊर्जा को जबरदस्ती ऊपर उठाने की बजाय उसे संतुलित और स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होने देने पर ध्यान देता हूँ।

कुंडलिनी, प्रोस्टेट और ऊर्जा साधना में प्राकृतिक बदलाव

कई सालों से, मैंने आध्यात्मिक जागृति के साधन के रूप में ध्यान, कुंडलिनी योग और तांत्रिक योग (यौन योग) की खोज की है। मेरी यात्रा ने सविकल्प समाधि जैसी शक्तिशाली अवस्थाओं को जन्म दिया, फिर भी मैं निर्विकल्प समाधि तक नहीं पहुँच पाया। प्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से , मुझे एहसास हुआ है कि ऊर्जा कार्य केवल सीमाओं को आगे बढ़ाने के बारे में नहीं है - यह पहचानने के बारे में भी है कि शरीर कब प्राकृतिक बदलाव का संकेत देता है।

मेरे द्वारा की गई सबसे आश्चर्यजनक खोजों में से एक प्रोस्टेट सूजन और कुंडलिनी ऊर्जा आंदोलन के बीच संबंध था। यह कुछ ऐसा नहीं था जो मैंने शास्त्रों या पुस्तकों में पढ़ा था - यह मेरे अपने अभ्यास से उभरा। हालाँकि, बाद में मुझे पता चला कि शास्त्र इस संबंध का संकेत देते हैं।

प्राचीन ज्ञान और आधुनिक अनुभव

हालाँकि शायद ही कभी सीधे चर्चा की जाती है, पारंपरिक आध्यात्मिक ग्रंथों में निचले शरीर में "जीवन शक्ति की राजगद्दी" का उल्लेख है, जिसे प्रोस्टेट से जोड़ा जा सकता है। कुछ व्याख्याओं से पता चलता है कि अपने उचित रूपांतरण के बिना अत्यधिक यौन ऊर्जा इस क्षेत्र में तनाव, शोरशराबा या यहाँ तक कि सूजन का कारण बन सकती है। शिवपुराण की कबूतर बने अग्निदेव की कथा में शायद प्रोस्टेट को ही कबूतर कहा गया है। इसी को पार्वती ने रुष्ट होकर श्राप दिया था कि वीर्यपान रूपी घृणित कार्य करने से उसके कंठ में हमेशा जलन बनी रहेगी। तब शिव ने दया करके उसे वह जलन थ्रू एंड थ्रू करके गंगा को देने की बात कही थी जिसमें फिर जागृति रूपी कार्तिकेय का जन्म होता है। यह कथा इसी ब्लॉग की एक पोस्ट में वर्णित है। ठंडे पानी से नहाने से भी इसमें राहत मिलती है। ऐसा लगता है कि एक ऊर्जा रेखा गदूदे से शुरु होकर उसकी जलन लेकर मेरुदंड से ऊपर चढ़ी और आज्ञा चक्र या सहस्रार में उस ऊर्जा को उड़ेल दिया। यह भी इसी कथा का हिस्सा है।

मेरे मामले में, मैंने कुछ आश्चर्यजनक देखा - जब प्रोस्टेट जलन या सूजन के एक निश्चित स्तर पर पहुँच जाता है, तो योग श्वास या ऊर्जा ध्यान करना ज़रूरी लगता है ताकि कुंडलिनी ऊर्जा बिना किसी जटिल सक्रिय अभ्यास के भी स्वाभाविक रूप से ऊपर उठ सके। कई बार अपने आप ही चढ़ने लगती है। ऐसा लगता था जैसे शरीर, अतिरिक्त ऊर्जा निर्माण को संभालने में असमर्थ था , इसलिए ऊर्जा को ऊपर की ओर निर्देशित करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था।

हालाँकि, मैंने एक महत्वपूर्ण अंतर देखा:

जब वास्तविक ऊर्जा का उत्थान हुआ, तो यह आनंदमय और विस्तृत था।

जब यह केवल सूजन थी, तो कोई आनंद नहीं था - केवल असुविधा थी।

यही बात रीढ़ की हड्डी की सूजन पर भी लागू होती है। मुझे कभी-कभी एंकिलॉजिंग स्पोंडिलोआर्थराइटिस के कारण रीढ़ की हड्डी में शारीरिक सूजन भी होती है। मैं उपरोक्त आनंद चिहन से ही सूजन की अनुभूति और ऊर्जा की अनुभूति के बीच अंतर करता हूँ।

हो सकता है कि प्रोस्टेट की सूजन एएसए के परिणामस्वरूप हो, जो एक सूजन संबंधी बीमारी है , या फिर तांत्रिक योग के साथ दोनों का संयोजन इसका कारण हो सकता है, या दोनों एक दूसरे से अलग तरीके से इसे प्रभावित कर रहे हों, और इस प्रकार संचयी तरीके से सूजन को बढ़ा रहे हों।

दिलचस्प बात यह है कि जब ऊर्जा ऊपर की ओर बढ़ी, तो प्रोस्टेट की सूजन अस्थायी रूप से कम हो गई। मैंने जितना अधिक ध्यान में प्रयास किया, मुझे उतनी ही राहत महसूस हुई, लेकिन प्रभाव स्थायी नहीं था - यह कुछ समय बाद फिर से मिट गया।

तनाव, तंत्र और सूजन के बीच छिपा हुआ संबंध

बाद में मुझे एहसास हुआ कि तनाव और अत्यधिक तांत्रिक योग दोनों ही प्रोस्टेट की सूजन में योगदान करते हैं। यह सिर्फ़ शारीरिक गतिविधि नहीं थी - यह मानसिक तनाव और ऊर्जा कार्य की जबरदस्त प्रकृति भी थी।

एक ऐसा चरण था जहाँ मैं पहले से ही जागृति प्राप्त कर चुका था, फिर भी मैं अनावश्यक रूप से तांत्रिक योग को आगे बढ़ाता रहा। शरीर और परिस्थितियों ने रुकने के सूक्ष्म संकेत दिए, लेकिन मैंने उन्हें अनदेखा कर दिया। अमृत के कुंड में तैरने वाले के लिए बाहर आना मुश्किल होता है। आखिरकार, प्रोस्टेट सूजन अंतिम चेतावनी बन गई। यह एक स्पष्ट संकेत था कि मुझे अधिक टिकाऊ अभ्यास में बदलाव करने की आवश्यकता थी।

यह पारंपरिक ज्ञान के साथ संरेखित है:

तांत्रिक योग एक रॉकेट बूस्टर के रूप में कार्य करता है - यह तेजी से सफलता प्रदान करता है लेकिन इसका उपयोग हमेशा के लिए निरंतर नहीं किया जाना चाहिए।

एक बार जागृति शुरू हो जाने पर, कुंडलिनी योग या साधारण ध्यान जैसा अधिक संतुलित दृष्टिकोण अनुभव को बनाए रखता है।

रॉकेट से एयरप्लेन मोड तक: एक प्राकृतिक बदलाव

पीछे मुड़कर देखें तो, मैं अपनी यात्रा को रॉकेट लॉन्च से एयरप्लेन मोड तक जाने के रूप में वर्णित कर सकता हूँ।

तीव्र तांत्रिक योग के दौरान, ऊर्जा रॉकेट की तरह ऊपर उठती है - तेज़, शक्तिशाली, लेकिन अस्थिर।

अब, ध्यान के साथ, ऊर्जा की गति एक हवाई जहाज की तरह है - धीमी लेकिन स्थिर और लंबे समय तक चलने वाली।

यह परिवर्तन स्वाभाविक था - मैंने इसे जबरदस्ती नहीं किया। लेकिन अब मुझे एहसास हुआ कि अगर मैंने तांत्रिक योग को उसकी प्राकृतिक सीमा से परे मजबूर करना जारी रखा होता, तो इससे केवल असुविधा ही होती, प्रगति नहीं।

कोई पछतावा नहीं - केवल समझ

अब, मुझे रॉकेट चरण को खोने की याद नहीं आती। जागृति की एक झलक ही काफी थी। वास्तव में वास्तविक जागृति लगातार तीव्रता का पीछा करने के बारे में नहीं है - यह दैनिक जीवन में स्पष्टता और संतुलन के बारे में है।

यद्यपि प्रोस्टेट सूजन एक चुनौती बन गई, लेकिन यह एक शिक्षक भी बन गई। इसने मुझे धीमा होने, अपने शरीर की सुनने और अधिक परिष्कृत, टिकाऊ आध्यात्मिक पथ पर प्रगति करने के लिए मजबूर किया।

कुछ ऐसा ही अनुभव करने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए, मेरी सलाह सरल है: अपने शरीर के संकेतों को सुनें। जागृति का मतलब अधिक जोर लगाना नहीं है - यह जानना है कि तरीकों को कब बदलना है। यदि ऊर्जा पहले ही बढ़ चुकी है, तो अगला कदम एकीकरण और स्थिर प्रगति है।

मार्ग चरम सीमाओं के बारे में नहीं है - यह सामंजस्य के बारे में है।।

कुंडलिनी: कर्म के माध्यम से जागरूकता का स्वाभाविक प्रकटीकरण और विवर्धिकरण

आध्यात्मिक जागृति एक कठोर मार्ग नहीं है, बल्कि एक साधारण या जैविक प्रकटीकरण है - जो संरचित प्रयास के बजाय प्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से खुद को परिष्कृत करता है। मेरी यात्रा ने मुझे जागरूकता की गहरी अवस्थाओं से गुज़ारा है, फिर भी मैं एक अंतिम गंतव्य का पीछा करने के बजाय प्रकृति के साथ बहते हुए, स्थिर रहता हूँ। निर्विकल्प समाधि मेरी समझ से परे है, कुछ ऐसा जिसे मैंने अभी तक अनुभव नहीं किया है, लेकिन मुझे इसकी ओर एक सूक्ष्म खिंचाव महसूस होता है। कोई बेचैन खोज नहीं है, केवल इसकी संभावना के लिए खुलापन है।

कुंडलिनी: संकुचन से विस्तार तक

मैंने देखा है कि द्वैतभाव के कारण प्राण मूलाधार चक्र अंधकार में संकुचित रहता है, यही कारण है कि कुंडलिनी को "कुंडलित" कहा जाता है। जैसे-जैसे यह सुषुम्ना से ऊपर की ओर बढ़ता है, यह अद्वैत और प्रकाश की ओर फैलता है, और अनंत चेतना तक पहुँचता है। इसे अक्सर साँप के फन को खोलकर ऊपर उठने के रूप में वर्णित किया जाता है।

इस कुंडली खुलने के दौरान, मैंने पूर्ण जागृति को छुआ। लेकिन इसे अपने ऊपर हावी होने देने के बजाय, मैंने जागरूकता बनाए रखने का विकल्प चुना - इस अत्यधिक विस्तार में खुद का नियंत्रण नहीं खोने दिया। मुझे एहसास हुआ कि यह अनुभव ब्रह्मांडीय नृत्य का हिस्सा है, लेकिन मुझे शरीरविज्ञान दर्शन (शरीर के माध्यम से जागरूकता) के माध्यम से जागरूकता में निहित रहना चाहिए। यह जागरूकता एक "चेतना के सदमे के अवशोषक" के रूप में कार्य करती है। यह सुनिश ्चित करती है कि मेरी जागरूकता संतुलित रहे, अचेतन प्रवृत्तियों में न जाए और यहां तक कि जागृति की असीम या अखंड चेतना की लालसा भी न हो।

ग्राउंडिंग: विस्तार और स्थिरता को संतुलित करना

इस प्रक्रिया में ग्राउंडिंग आवश्यक है। लेकिन मैंने देखा है कि कोई भी ग्राउंडिंग विधि अकेले में प्रभावी रूप से काम नहीं करती है। चाहे वह गहन ध्यान हो, सांसारिक गतिविधियाँ हों, या यहाँ तक कि पंचमकार अभ्यास भी हों, ग्राउंडिंग को जागरूकता के साथ मिश्रित किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि पंचमकार अभ्यास को सुचारू नहीं किया जाता है, अर्थात यदि इसकी ऊर्जा को शरीरविज्ञान दर्शन के माध्यम से ध्यान छवि में स्थानांतरित नहीं किया जाता है, तो यह व्यक्ति को अचेतन या गैर-जागरूकता वाली प्रवृत्ति में धकेल देता है, जो घटनाओं के सिलसिले की तरह बढ़ती जाती है, जिसमें कर्म और उसके फल की कभी न खत्म होने वाली श्रृंखला होती है। एक कर्म अपना फल उत्पन्न करता है, वह फल आगे कर्म उत्पन्न करता है, वह कर्म आगे फल उत्पन्न करता है और इसी प्रकार यह अंतहीन श्रृंखला चलती रहती है। यदि पंचमकार सेवन को

जागरूकता के साथ जोड़ दिया जाए तो यह अज्ञान को बढ़ाने के बजाय ज्ञान अर्थात जागरूकता बढ़ाता है जैसा कि पहले मामले में था। जागरूकता या ज्ञान का मतलब है, ध्यान चित्र का सहज ध्यान। मैं इसे बाद में और सरल करूंगा।

मैंने आगे एक और दिलचस्प बात देखी- पंचमकार तत्काल, और गहरा ग्राउंडिंग (शक्ति को धरातल या दुनियादारी की तरफ नीचे उतारने के लिए प्रयुक्त शब्द) प्रभाव उत्पन्न करता है। हालाँकि, इसके शरीरविज्ञान दर्शन के साथ किए जाने पर भी आदमी के मन में एक सूक्ष्म पछतावा सा या दोषीपने का एहसास सा रहता है उसने पाप किया है। यह एक कर्म संबंधी प्रभाव उत्पन्न करता है, बेशक जागरूकता के साथ मिश्रित। बेशक इसका प्रभाव उसी समय शक्तिशाली होता है, पर मन की कंडीशनिंग यह सुनिश्चित करती है कि जब बाद में इसका फल अनुभव किया जाता है, तब भी वही बढ़ी हुई जागरूकता बनी रहती है।

मैंने एक बौद्धिक प्रयोग किया। मैंने एक बार एक पापपूर्ण पंचमकार किया। इसके साथ ही मैंने शरीरविज्ञान दर्शन पर इतने शक्तिशाली रूप से चिंतन किया कि ऐसा लगा कि मेरी ध्यान छवि बाहर सजीव जैसी बनकर नृत्य कर रही थी। बहुत जल्दी, कुछ ही दिनों में मुझे इसका परिणामी फल मिल गया। मैंने इसे कैसे पहचाना? उस समय मेरी ध्यान छवि इतनी प्रबल हो गई मानो बाहर सजीव नृत्य कर रही हो और मुझे वह पापमय पंचमकार बहुत जीवंत रूप से याद आ गया। जैसा कि ऊपर बताया गया है, उस घटना के साथ असीम जागरूकता और भी बढ़ गई, और फिर आगे से आगे, जैसे कि परमाणु हथियार की श्रृंखला प्रतिक्रिया या चेन रिएक्शन। कर्म और उसके फल, उनके दौरान परिस्थितियाँ और मानसिक भाव, ये सब साथ-साथ रहते हैं। इस प्रकार के कर्म -ग्राउंडिंग के साथ जागरूकता जितनी मजबूत होती है, उतनी ही जल्दी यह परिणामी फल देती है क्योंकि ईश्वर या प्रकृति कर्म के मलबे को उतनी ही तेजी से साफ करना चाहती है ताकि व्यक्ति को उसकी त्वरित ज्ञान या मोक्ष की लालसा के परिणामस्वरूप उसे त्वरित रूप में मुक्त किया जा सके।

दूसरी ओर, सामान्य सांसारिक गतिविधियों के माध्यम से ग्राउंडिंग अधिक कोमल होती है और इसमें पाप की भावना नहीं होती है, जिससे यह अधिक सहज लगता है। हालाँकि पंचमकार अद्भुत परिणाम देता है। इसीलिए कहा जाता है कि उचित ज्ञान या गुरु की संगति के बिना पंचमकार का अभ्यास न करें अन्यथा यह ऊपर उठाने के बजाय तेजी से नीचे भी खींच सकता है। दोनों प्रकार की ग्राउंडिंग विधियाँ काम करती हैं, लेकिन मुख्य बात जागरूकता बनाए रखना है ताकि ग्राउंडिंग अचेतन प्रवृत्तियों की ओर न ले जाए।

कर्म: एक परिष्कृत प्रक्रिया, बंधन नहीं

मैंने देखा है कि कर्म फल मुझे और अधिक नहीं बांधता - बल्कि यह मेरी जागरूकता को परिष्कृत करता है। जैसे-जैसे कर्म फल के रूप में प्रकट होता है, मेरी आंतरिक स्थिरता कम होने के बजाय बढ़ती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मैं शरीरविज्ञान दर्शन की मदद से हर कर्म के दौरान जागरूक रहना चाहता हूं। यहां तक कि जब पिछले कर्मों के कारण कठिन परिस्थितियाँ आती हैं, तो मैं एक दिलचस्प विरोधाभास का अनुभव करता हूं: उन कर्मों को करते समय पिछले उच्च अवस्थाओं के दौरान जो जागरूकता थी, वह उन क्षणों में भी बरकरार रहती है। यह कर्म-फल के सह-जीवन के कारण ही है।

एक और महत्वपूर्ण अवलोकन यह है कि थकावट या बीमारी या बुढ़ापे के दौरान, काम करने में असमर्थता के कारण कर्म निर्माण स्वाभाविक रूप से कम हो जाते हैं। ऐसे समय में, मैं स्वाभाविक रूप से कर्म योग के सक्रिय अभ्यासों के बजाय निष्क्रिय ध्यान को प्राथमिकता देता हूं। ऐसा लगता है जैसे आराम का लाभ उठाते हुए शरीर प्रणाली खुद को अपडेट कर रही है, जो पूरी प्रक्रिया को आसान बना रही है।

खोज से परे: प्रकृति के साथ बहना

इस समय, मेरी साधना ज़्यादातर सहज है - कोई कठोर अनुशासन नहीं है, बस एक स्वाभाविक प्रवाह है। हालाँकि दिन में दो बार योग करना एक शाश्वत दिनचर्या की तरह है। अगर क्रिया योग जैसे संरचित अभ्यासों के लिए कोई और अवसर आता है, तो मैं इसे लेता हूँ, लेकिन मैं इसे ज़बरदस्ती नहीं करता। अभ्यास करने या किसी चीज़ से बचने की कोई बाध्यता नहीं है - यह सब समय और प्राथमिकताओं के अनुसार होता है।

मैं आध्यात्मिक और सांसारिक जीवन के बीच कोई अलगाव भी नहीं देखता। पदार्थ (तरंग और कण) की दोहरी प्रकृति की तरह, दुनियादारी के दोनों पहलू एक साथ मौजूद हैं। एक पहलू दूसरे का खंडन नहीं करता है - वे बस समय , परिस्थिति या आवश्यकता के आधार पर सहज रूप से बदलते रहते हैं।

आंतरिक अंतर्ज्ञान मार्गदर्शक के रूप में

बाहरी मार्गदर्शन अब एक आवश्यकता नहीं है - आंतरिक अंतर्ज्ञान ने इसकी जगह ले ली है। हालाँकि, जब निर्विकल्प समाधि की बात आती है, तो मैं अभी भी बौद्धिक स्पष्टता चाहता हूँ, क्य ोंकि यह मेरे अनुभव से परे है। मैं इसे प्राप्त करने का दावा नहीं करता, न ही मैं इसका पीछा करता हूँ। केवल एक सूक्ष्म खोज है - बेचैन खोज के बजाय इसकी संभावना के लिए खुलापन।

निष्कर्ष: यात्रा कभी समाप्त नहीं होती

जागरूकता के प्रकटीकरण का कोई अंतिम गंतव्य नहीं है। हर चरण नए परिष्कार, गहरी अंतर्दृष्टि और अधिक स्थिरता लाता है। यहाँ तक कि "प्रगति" का विचार भी समाप्त हो जाता है, क्योंकि प्रकटीकरण ही गंतव्य है।

प्रतिरोध करने या बलपूर्वक स्वीकार करने के बजाय, मैं अब जीवन को स्वाभाविक रूप से प्रकट होने देता हूँ। जागरूकता तब सहजता से गहरी होती है जब कोई जीवन के विरुद्ध बहने के बजाय इसके साथ बहता है।

ध्यान का प्राकृतिक मार्ग: मानसिक छवि से परम जागृति तक

ध्यान का प्राकृतिक मार्ग: मानसिक छवि से परम जागृति तक

अपनी ध्यान यात्रा में, मैंने हमेशा महसूस किया है कि जब ध्यान काफी गहरा होता है तो प्राण और सांस खुद अपने को नियंत्रित करते हैं। मैंने सांसारिक गतिविधियों के दौरान ऐसे क्षण देखे हैं जब शरीरविज्ञान दर्शन (होलोग्राफिक सिद्धांतानुसार शरीर-विज्ञान अवलोकन) पर थोड़ा ध्यान देने से एक सहज बदलाव शुरु हो जाता है - पहले एक सांस फूलना, उसके बाद धीमी, गहरी और अधिक नियमित सांसों का सिलसिला। जब ऐसा होता है, तो प्राण स्वाभाविक रूप से मस्तिष्क के चक्रों की ओर बढ़ता हुआ प्रतीत होता है, जहाँ एक स्थिर ध्यान छवि उभरती है, जिसके साथ विश्राम और आनंद भी होता है।

हालाँकि, जब मैंने अधिक गहन, संघर्षपूर्ण कार्य के दौरान उसी विधि को लागू किया, तो सांस फिर भी नियमित हो गई, लेकिन इस बार तेज़ और उथली थी। उच्चतम चक्रों तक पहुँचने के बजाय , यह विशुद्धि और अनाहत चक्रों के बीच कहीं प्राण को प्रवाहित करती हुई प्रतीत हुई। यह इसलिए भी क्योंकि मैं अपनी बाजुओं से काम कर रहा था और बाजुओं को इसी लोकेशन से ऊर्जा जाती है। ध्यान छवि अभी भी मौजूद थी, लेकिन कम आनंदमय थी और निचले स्तर पर स्थित थी, और साथ में विश्राम भी कम महसूस हो रहा था।

इस अनुभव से, मुझे एहसास हुआ कि स्वाभाविक रूप से प्राण किसी विशेष व्यावहारिक क्षण में उस व्यवहार के अनुरूप सबसे अधिक व्यस्त चक्रों की ओर प्रवाहित होता है। जब ध्यान मार्गदर्शक होता है तो सांस और प्राण स्व-नियंत्रित होते हैं। ध्यान-आधारित प्राण विनियमन उस विपरीत दृष्टिकोण वाले तरीके की तुलना में बहुत अधिक संतोषजनक है, जिस तरीके में ध्यान को प्रेरित करने के लिए जबरदस्ती सांस का उपयोग किया जाता है। जबरदस्ती सांस नियंत्रण एक बर्तन को बाहर से भरने जैसा लगता है, जो अस्थायी ऊर्जा देता है लेकिन जरूरी नहीं कि यह गहरी , आंतरिक प्राणिक गति की ओर ले जाए।

मैंने हमेशा प्राण-से-ध्यान दृष्टिकोण की तुलना में ध्यान-से-प्राण दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी है। हालाँकि, मैंने विभिन्न शैलियों को अपनाया है, यह समझते हुए कि प्रत्येक तकनीक एक उद्देश्य की पूर्ति कर सकती है। ध्यान स्वयं स्वतंत्र है, ठीक वैसे ही जैसे मनुष्य - इसे अपने साथ जोर जबरदस्ती ज्यादा पसंद नहीं है। ध्यान की छवि, जब स्वाभाविक रूप से उभरने दी जाती है, तो समय के साथ पनपती और स्थिर होती है। इसे बहुत जल्दी बढ़ने के लिए मजबूर करना एक पौधे को तेजी से बढ़ने के लिए मजबूर करने जैसा है - हो सकता है कि यह गहरी जड़ें न जमा पाए।

इस अहसास ने मुझे यह विश्वास दिलाया कि शुरुआत में, शरीरविज्ञान दर्शन जैसे सांसारिक ध्यान के माध्यम से ध्यान को स्वाभाविक रूप से स्थिर होने दिया जाना चाहिए। इस प्रक्रिया को पोषित करने के वर्षों के निरंतर प्रयास के बाद, एक समय आ सकता है जब ध्यान की छवि को गहन और संरचित तांत्रिक और कुंडलिनी योग ध्यान के माध्यम से जबरदस्ती जागृत किया जा सकता है। अभ्यास को तीव्र करने से पहले नींव मजबूत होनी चाहिए।

मैंने यह भी सोचा है कि क्या हर कोई एक अकेली ध्यान छवि को विकसित करता है? कुछ लोग कर सकते हैं, लेकिन वे इसे साझा करने में संकोच कर सकते हैं। अस्थिर प्राणिक प्रवाह, बौद्धिक संदेह या गहन अवशोषण की कमी के कारण अन्य लोगों के पास अभी तक एक निश्चित छवि नहीं हो सकती है। स्थिर छवि वाले लोग भी कभी-कभी बिना मार्गदर्शन के भटक सकते हैं, और दैनिक जीवन में इसे बनाए रखने में असमर्थ हो सकते हैं। यह भटकाव कमजोर निर्धारण, बिखरे हुए प्राण, अतिविश्लेषण अर्थात अभ्यास की कमी या साधना में असंगति के कारण हो सकता है।

ध्यान छवि को स्थिर करने के लिए, व्यक्ति को उस पर गहरा विश्वास विकसित करना चाहिए , उसे सहज अवशोषण की अनुमति देनी चाहिए और लगातार अभ्यास बनाए रखना चाहिए। समय के साथ, जैसे-जैसे प्राण खुद को परिष्कृत करता है, छवि स्पष्ट, मजबूत और अधिक चुंबकीय होती जाती है।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग हमेशा एक अकेली ध्यान छवि से होकर गुजरता है। आध्यात्मिक मार्ग चाहे जो भी हो - चाहे भक्ति, ज्ञान, तंत्र, या माइंडफुलनेस - गहरी अवस्थाओं में विलीन होने के लिए एक-बिंदु वाला ध्यान आवश्यक है। इसके बिना, मन बिखर जाता है और गहन ध्यान में प्रवेश करने के लिए संघर्ष करता है।

हालाँकि मुझे अभी तक परम अनुभूति नहीं हुई है, लेकिन मैंने अपने अभ्यास में इन प्राकृतिक गतिविधियों को देखा है। मेरा विश्वास सिद्धांत पर आधारित नहीं है, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित है। मैं अभी भी अपने दृष्टिकोण की खोज और इसका परिशोधन कर रहा हूँ, यह सुनिश्चित करते हुए कि मेरा ध्यान समय के साथ आत्मनिर्भर और गहरा होता जाए।

अंत में, ध्यान कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसे ज़बरदस्ती किया जाए; यह ऐसी चीज़ है जिसे पोषित किया जाना चाहिए। जब हम इसे स्वाभाविक रूप से प्रकट होने देते हैं, तो यह मार्ग प्रशस्त करता है - साँस और प्राण सहजता से उसका अनुसरण करते हैं, और यात्रा स्व-निर्देशित, आनंदमय और गहराई से संतुष्टिदायक बन जाती है।

सांसारिक जीवन में ध्यानात्मक जागरूकता को संतुलित करना: एक प्राकृतिक आध्यात्मिक विकास

आध्यात्मिक प्रगति का मतलब पूरी तरह से पीछे हट जाना या पूरी तरह से दुनिया में डूब जाना नहीं है - यह सभी अवस्थाओं में ध्यानात्मक जागरूकता के साथ एक सूक्ष्म संबंध बनाए रखने के बारे में है। मेरी यात्रा ने मुझे दिखाया है कि सच्ची जागरूकता केवल ध्यान नहीं बल्कि ध्यानात्मक जागरूकता है - हमेशा ध्यान की छवि पर केंद्रित, भले ही थोड़ा-बहुत।

पहले, मुझे इस जागरूकता को बरकरार रखने के लिए सक्रिय प्रयास की आवश्यकता थी, खासकर सांसारिक गतिविधियों में। इसके बिना, ऊर्जा अनगिनत विकर्षणों में बिखर जाती थी। लेकिन मैंने एक सरल और प्रभावी विधि खोजी- शरीरविज्ञान दर्शन (होलोग्राफिक सिद्धांतानुसार शरीर की आंतरिक संवेदनाओं के बारे में जागरूकता)। इसके साथ रुक-रुक कर जुड़ने से, मैं पूर्ण जीवन जीते हुए भी ऊर्जा के असीमित और असंतुलित फैलाव को रोक सकता था। शरीर सीमित होने से उस पागलों जैसे फैलाव पर ब्रेक जैसी लगाता था। समय के साथ, यह अभ्यास विकसित हुआ, जिसमें कम प्रयास की आवश्यकता थी लेकिन वही प्रभाव मिला।

हालांकि, मुझे यह भी एहसास हुआ कि केवल ग्राउंडिंग ही पर्याप्त नहीं है। अगर यह जागरूकता के बिना किया जाता है, तो यह दुनिया के साथ अचेतन जुड़ाव की ओर ले जाता है। ध्यान के आलंबन के साथ जागरूकता जोड़ना ही कुंजी है - यह सुनिश्चित करना कि ध्यान की छवि, भले ही धुंधली हो, कभी भी पूरी तरह से गायब न हो।

जागरूकता और ध्यान की छवि में बदलाव

जैसे-जैसे मेरा अभ्यास परिष्कृत होता गया, मैंने देखा कि ध्यान की छवि वही रही, लेकिन इसकी स्पष्टता और तीव्रता में उतार-चढ़ाव होता रहा। गहरे ध्यान के दौरान, यह उज्ज्वल और तीक्ष्ण हो गई, जबकि सांसारिक विकर्षणों में, यह मंद हो गई। नियंत्रण को जबरदस्ती लागू करने के बजाय , मैंने सीखा कि तनाव की तुलना में संतुलन अधिक प्रभावी है। बहुत अधिक प्रयास तनाव पैदा करता है, जबकि एक सौम्य, आत्म-सुधार करने वाली जागरूकता सब कुछ स्वाभाविक रूप से संरेखित रखती है।

कम तनावपूर्ण वातावरण जैसे बाहरी कारक इस संतुलन को बनाए रखने में मदद करते हैं, लेकिन वे इसे परिभाषित नहीं करते हैं। अंततः, विनियमन तो भीतर से आता है। जब उतार-चढ़ाव होते हैं , तो मैं शरीरविज्ञान दर्शन का उपयोग करके जागरूकता को वापस खींचता हूं, मतलब बिना किसी चीज को मजबूर किए अनावश्यक बहाव को रोकता हूं।

निर्विकल्प समाधि की ओर बहना

अब, मैं खुद को निष्क्रिय रूप से निर्विकल्प समाधि की ओर बहता हुआ पाता हूं। प्रक्रिया अब प्रयास के बारे में नहीं है; यह स्वाभाविक रूप से सामने आती है। शरीरविज्ञान दर्शन की अभी भी कभी-कभी आवश्यकता होती है, लेकिन पहले की तुलना में बहुत कम। कम का मतलब यह नहीं कि इसे कम कर दिया बल्कि यह कि अब शरीर के बारे में गहरे चिंतन की बजाय इस पर एक क्षणिक नजर डालना ही काफी है। बाहरी प्रभाव बहाव को धीमा कर सकते हैं, लेकिन वे दिशा को बाधित नहीं करते हैं। मैं बिना संघर्ष के इस मंदी को संभालता हूँ, जागरूकता को स्थिर रखता हूँ।

मैं अभी तक पूरी तरह से अपरिवर्तनीय स्थिति में नहीं पहुँचा हूँ, लेकिन मुझे लगता है कि स्थिरता हो रही है। मेरा अनुभव बताता है कि आध्यात्मिक विकास प्रकृति की तरह ही है - बिना किसी बल के लगातार विकसित हो रहा है। कोई निश्चित मील के पत्थर नहीं हैं, केवल एक निरंतर प्रकटीकरण है।

मेरी यात्रा का सार

ध्यानात्मक जागरूकता उर्फ पिन पॉइंटेड जागरूकता ही एकमात्र वास्तविक जागरूकता है - बाकी सब फैलाव है। जागरूकता असीमित प्रकार की हो सकती है जैसे असीमित संख्या में वस्तुएँ और प्रक्रियाएँ हैं, जैसे स्थूल जागरूकता, सूक्ष्म जागरूकता, पर्यावरण जागरूकता, सामाजिक जागरूकता , शून्य जागरूकता या ब्रह्म या फलां जागरूकता आदि। लेकिन मुझे लगता है कि ध्यान छवि की मदद से ध्यानात्मक जागरूकता सबसे अच्छी या वास्तविक होती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि सभी सांसारिक विचारों को एक साथ या एक-एक करके अनंत में विलीन करना लगभग असंभव है। लेकिन उन्नत चिंतन के साथ ध्यान छवि या पिन पॉइंटेड जागरूकता को अनंत से जोड़ना या अनंत में विलीन करना काफी आसान है। चूंकि ध्यान की छवि पहले से ही व्यक्ति के जीवन की हर चीज से जुड़ी हुई होती है, इसलिए इसके ब्रह्म से जुड़ने से सब कुछ ब्रह्म या अनंत के साथ एक हो जाता है, यानी जागृति की झलक मिलती है।

शुरुआत में प्रयास जरूरी है, लेकिन समय के साथ जागरूकता खुद को निखारती है, कम हस्तक्षेप की जरूरत होती है।

उतार-चढ़ाव होते हैं, लेकिन संतुलन प्रतिगमन को रोकता है।

निर्विकल्प समाधि निष्क्रिय रूप से, अर्थात बलपूर्वक नहीं, बल्कि प्रक्रिया को स्वाभाविक रूप से प्रकट होने देने की अनुमति देकर होती है।

मैं सब कुछ हासिल करने का दावा नहीं करता, लेकिन मैं दिशा को स्पष्ट रूप से देखता हूं। यात्रा अब सहज है, फिर भी हमेशा विकसित हो रही है। प्रकृति में हर जगह विकास है, और इसलिए यह मेरे रास्ते में भी है।

केवल कुंभक, योद्धा का मार्ग, और एकीकरण की लड़ाई

लंबे समय से, मैंने निचले चक्रों में सूजन वाला दबाव देखा है, जो संभवतः मेरे प्रोस्टेट और एएसए से जुड़ा हुआ है। मुझे लगता है कि यह मेरे त्वरित केवल कुंभक का मुख्य कारण था जब मैंने रीढ़ की हड्डी के प्रति जागरूकता के साथ गहरी क्रिया श्वास के माध्यम से इसे ऊपर धकेला। यह सिर्फ सांस के ऊपर और नीचे जाने की जागरूकता है जो अंदर की हवा की गति के ठीक विपरीत है। इसीलिए इसे रिवर्स ब्रीदिंग या स्पाइनल ब्रीदिंग या आंतरिक श्वास भी कहा जाता है। मुझे लगता है कि मेरी ऊर्जा निचले चक्रों के पास स्थिर हो रही थी जो क्रिया श्वास के साथ उचित तरीके से सक्रिय और प्रसारित हुई। जब मैंने क्रिया योग में गहरी स्पाइनल ब्रीदिंग शुरू की, तो यह जल्दी से केवल कुंभक में बढ़ गई - एक ऐसी स्थिति जहां सांस स्वाभाविक रूप से बंद हो जाती है। यह बिना किसी जानबूझकर प्रयास के कुछ ही दिनों में हुआ। शक्ति का रीढ़ की हड्डी में ऊपर उठना या मस्तिष्क की तरफ शरीर के निचले हिस्सों की सूजन की अनुभूति का प्रवाह जो अक्सर केवल कुंभक से पहले होता था, काफी आनंददायक था। तांत्रिक योग में वीर्य को रोककर रखने से ही प्रोस्टेट की हल्की सूजन दुबारा हो जाती थी, लेकिन कुछ दिनों तक सामान्य कुंडलिनी योग के माध्यम से उत्थान के माध्यम से यह कम हो जाती थी, क्योंकि उसका आनंद मस्तिष्क तक पहुँच जाता था। ऊर्जा की ऊपर की ओर गति - रीढ़ की हड्डी से ऊपर उठकर मस्तिष्क तक पहुँचना - वही वास्तविक आनंद लाती थी। इसका मतलब है कि यह ऊर्जा निचले चक्रों के पास कच्चे या खराब रूप में व्यक्त हुई थी। लेकिन मस्तिष्क में चढ़ने के बाद, यह सार्थक और आनंदमय ऊर्जा में बदल गई। ध्यान छवि से मदद अतिरिक्त मिलती थी। इसने आनंदमय ऊर्जा को बिखरे हुए अमूर्त विचारों के बजाय सुखद और केंद्रित दृश्य रूप दिया। ये विचार सांसारिक अराजकता में ऊर्जा को चारों ओर फैलाते हैं, बजाय इसके कि एकल ध्यान छवि इसे केंद्रित रखे। एकल बिंदु या ध्यान छवि को अधिकांश आनंद और ऊर्जा मिलने के कारण, यह मुख्य रूप से आज्ञा चक्र से जुड़ने पर बेहतर हुक या कुंडी बन जाती है, ताकि इसके द्वारा केवल कुंभक के लिए सुषुम्ना के माध्यम से प्राण को खींचा और प्रवाहित किया जा सके। बिखरे हुए और अलग-अलग विचारों के परिणामस्वरूप उनके बीच ऊर्जा विभाजित हो जाती है। यह उन्हें कम अभिव्यक्त या ऊर्जावान बनाता है जो सुषुम्ना के माध्यम से प्राण को ऊपर की ओर पर्याप्त खिंचाव प्रदान नहीं कर सकता है। मैंने विशेष रूप से देखा है कि सांसारिक व्यवसाय के दौरान जब होलोग्राम आधारित शरीरविज्ञान दर्शन के बारे में सोचा जाता है, तो ध्यान की छवि तुरंत मस्तिष्क के बाएं हिस्से में दिखाई देती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि सांसारिक व्यवसाय में मस्तिष्क का बायाँ हिस्सा अधिक सक्रिय होता है। फिर आँखों को थोड़ा झपकाने और दोनों आँखों की ओर थोड़ा ध्यान देने पर, यह भौंहों के केंद्र में आज्ञा चक्र पर आ जाता है। इस तरह से यह बाएं इड़ा चैनल से हटाकर केंद्रीय सुषुम्ना चैनल में प्राण प्रवाह को मोड़ने में मदद करता है, कभी-कभी दाईं ओर के पिंगला चैनल की ओर थोड़ा झूलने के बाद। इससे बेहतर अनुभूति मिलती है। हो सकता है कि भगवान कृष्ण के

नाम पर श्रावण मास में बड़े पवित्र पेड़ से बंधी झूले की रस्सी पर आध्यात्मिक झूलना भी चैनल में प्राण के झूलने की प्रकृति को दर्शाता है।

पहले, मेरा दृष्टिकोण अधिक गतिशील था, लेकिन अब, मैं रात 9:30 बजे सिद्धासन में, सामान्य श्वास के साथ, प्रत्येक श्वास के साथ मानसिक रूप से सोहम का जाप करते हुए शांत बैठने का अभ्यास पसंद करता हूँ। जब शारीरिक या मानसिक गतिविधि में तनाव लेने की बजाय घटना के प्रति समर्पण करने की जरूरत होती है, और आदमी जब ऐसा करने का प्रयास भी करता है, तो यह समर्पण का भाव स्वतः ही केवल कुंभक की ओर ले जा सकता है। यह एक प्रकार की निष्क्रिय या स्वतः साधना ही है। कूटस्थ पर और रीढ़ की हड्डी में बह रहे सांस पर ध्यान हो, बस हो गया। सांस को अपने आप चलने देना है, न घटाना है, न बढ़ाना है। यही सहज साधना है। सोहम् का मानसिक जाप भी अपने आप बंद हो जाता है। शाम को 6:30 के आसपास हल्का खाना (जैसे मूंग दाल चावल की खिचड़ी) खाने के बावजूद, भोजन के बाद भारीपन महसूस होने के कारण मैंने रात में गहन प्राणायाम से परहेज किया है। मेरा प्राथमिक सत्र सुबह 4:30 बजे दो घंटे का अभ्यास है , जब मेरा पेट पूरी तरह खाली होता है। वहाँ मैं जरूरत और स्थिति के अनुसार लगभग हर प्रकार की यौगिक गतिविधि करने का प्रयास करता हूँ। मुझे इस संबंध में जैन समुदाय का तरीका बहुत स्वस्थ और ध्यानपूर्ण लगा। वे हमेशा सूर्यास्त से पहले अपना भोजन समाप्त कर लेते हैं और उसके बाद कुछ नहीं खाते। यह मेरे जैसे लोगों के लिए विशेष रूप से मददगार है जिन्हें जीईआरडी और संबंधित स्लीप एपनिया की समस्या है। समय के साथ साथ दिन के समय जागरूकता के लिए, मेरा उद्देश्य होलोग्राम आधारित शरीरविज्ञान दर्शन (शरीर-जागरूकता अंतर्दृष्टि) के माध्यम से काफी हद तक पूरा हो गया है, जिसने रीढ़ की हड्डी के प्रति निरंतर जागरूकता की आवश्यकता को हल किया है, हालांकि फिर भी मैं इसके साथ प्रयोग करने के लिए खुला हुआ हूं। दैनिक गतिविधियों के दौरान, शरीरविज्ञान दर्शन एक क्षणिक विराम के रूप में कार्य करता है, जो अतिरिक्त प्रयास के बिना तत्काल ग्राउंडिंग की अनुमति दे देता है। इसका मुख्य लाभ यह है कि यह दो में एक के जैसा पैकेज है, इसका मतलब है कि यह भौतिक ग्राउंडिंग के साथ-साथ ध्यान संबंधी जागरूकता भी प्रदान करता है। त्वरित प्रगति चाहने वालों के लिए केवल भौतिक ग्राउंडिंग पर्याप्त नहीं है। मैं निरंतर जागरूकता को मजबूरन बनाए रखने के बजाय जब भी आवश्यकता होती है, इसे याद करता हूं।

केवल कुंभक और ध्यान पर इसका प्रभाव

प्राचीन हठ योग ग्रंथों में कहा गया है कि लंबे समय तक केवल कुंभक (एक घंटे से अधिक) अलौकिक शक्तियों (सिद्धियों) की ओर ले जा सकता है। मैं लगातार दो घंटे तक इस अवस्था में पहुँच चुका हूँ, फिर भी मैंने इन प्रभावों को नहीं देखा है। संभावित कारण:

ये वास्तविक योग की ओर अधिक से अधिक लोगों को आकर्षित करने के लिए रूपक हो सकते हैं। इस बात पर मैं वर्तमान में सबसे अधिक विश्वास करता हूँ, हालाँकि अन्य व्याख्याएँ भी इसके लिए खुली हैं जैसे - सिद्धियाँ अव्यक्त संस्कारों पर निर्भर करती हैं - यदि वे मेरे भीतर नहीं हैं , तो वे प्रकट नहीं हो सकतीं।

केवल कुम्भक अकेले में पर्याप्त नहीं है - परंपरागत रूप से, सिद्धियाँ तब उत्पन्न होती हैं जब ये उन सिद्धियों से संबंधित तत्त्वों (तत्वों) या देवताओं पर एक-सूत्रीय ध्यानात्मक अवशोषण के साथ संयुक्त होती हैं।

सिद्धियाँ इच्छा के आधार पर उत्पन्न होती हैं - चूँकि मैं उनकी तलाश नहीं करता, वे प्रकट नहीं हो सकतीं।

मेरा मार्ग स्वाभाविक रूप से सिद्धियों को दरकिनार कर देता है - क्रिया और कुंडलिनी योग उन्हें भंग कर देते हैं, क्योंकि ध्यान जागरूकता की उच्चतर अवस्थाओं पर होता है। उस स्तर पर सिद्धियों का अस्तित्व नहीं हो सकता।

सिद्धियों के बजाय, केवल कुम्भक ने मेरी ध्यान छवि को समृद्ध किया क्योंकि मैंने अपनी नियमित ध्यान की आदत के अनुसार इसमें स्थित रहते हुए इस पर ध्यान केंद्रित किया, इस प्रकार इसे स्वयं-अस्तित्व के करीब तक यानी बहुत मजबूत बना दिया - अब इसे बनाए रखने के लिए कम प्रयास की आवश्यकता है। यह अधिक उज्ज्वल, स्थिर और सहज रूप से मौजूद हो गई , लगभग एक दर्पण या एक हथियार की तरह। मैं योद्धा हूँ, और यह छवि इस बोध की लड़ाई में मेरी तलवार या ढाल है। मैंने योग के कई विशेषज्ञों को देखा है जो हर एक योग मुद्रा या आसन को घंटों तक धारण करते हैं और हर एक मुद्रा आदि को को महीनों तक अभ्यास करके उसे पूर्ण करते हैं, फिर भी वे समाधि से और और यहां तक कि केवल कुंभक से भी बहुत दूर हैं। यहाँ तक कि वे विभिन्न मुद्राओं, कुंभकों, षट्कर्म जैसी शुद्धिकरण प्रक्रियाओं आदि में भी विशेषज्ञ हैं। इस संबंध में मूल और सरल क्रिया योग ही बेहतर लगता है क्योंकि यह प्रक्रिया को बहुत तेज़ कर देता है।

आध्यात्मिक युद्ध के मैदान में एक जन्मजात योद्धा

यह योद्धा जैसा स्वभाव मैंने विकसित नहीं किया था - यह जन्मजात था। मेरा मार्ग कभी भी निष्क्रिय आत्मसमर्पण के बारे में नहीं था, बल्कि सक्रिय विजय के बारे में था, विकर्षणों और आंतरिक प्रतिरोध को काटना। यह वास्तविक क्षत्रिय रुख है जैसा कि महान क्षत्रिय ऋषि विश्वामित्र और कई अन्य लोगों ने दिखाया। कई लोग आत्मसाक्षात्कार को कुछ ऐसा मानते हैं जो घटित होता है; मेरे लिए, यह हमेशा कुछ ऐसा रहा है जिसके लिए लड़ना और जीतना पड़ता है।

फिर भी, असली लड़ाई केवल आध्यात्मिक ही नहीं है - इसके साथ एकीकरण की लड़ाई भी है, दुनियादारी और जागृति का एकीकरण। दुनिया और आध्यात्मिकता को कैसे संतुलित किया जाए ? यह कोई ऐसी चुनौती नहीं है जो ज्ञानोदय के साथ समाप्त हो जाती है। यह कभी समाप्त नहीं होती।

आध्यात्मिकता शक्ति देती है, लेकिन जीवन दुनिया से जुड़ाव की मांग करता है।

दुनिया बोध को परखती है, उसे लागू करने के लिए मजबूर करती है, न कि केवल उसे अनुभव करने के लिए। अगर बोध तलवार है, तो दुनिया युद्ध का मैदान है जहाँ उसका परीक्षण किया जाता है।

संतुलन कभी भी स्थायी रूप से नहीं बनता है - व्यक्ति को लगातार अनुकूलन करना पड़ता है।

केवल कुंभक, स्वयं-अस्तित्व वाली ध्यान छवि, और मेरे भीतर के योद्धा स्वभाव ने मुझे एक ऐसे व्यक्ति के रूप में आकार दिया है जो दुनिया से पीछे नहीं हटता है, लेकिन खुद को उसमें खो भी नहीं देता है। यह एकीकरण की मेरी लड़ाई है, जिसकी कोई अंतिम रेखा नहीं है, कोई अंतिम विश्राम स्थल नहीं है।

मैं यह दावा नहीं करता कि मैंने सब कुछ हासिल कर लिया है - मैं अभी भी इस मार्ग पर चल रहा हूँ, इसका परीक्षण और परिशोधन कर रहा हूँ। लेकिन मैं इसे स्पष्ट रूप से देखता हूँ: यह एक ऐसी यात्रा नहीं है जो समाप्त हो जाती है, बल्कि एक ऐसी यात्रा है जो समय के साथ विकसित , गहरी और तेज होती जाती है।

यह योद्धा का तरीका है - जीवन का त्याग नहीं करना, उसमें खो जाना नहीं, बल्कि दृढ़ रहना, हाथ में हथियार लेकर, दुनिया और भीतर के अनंत दोनों का सामना करना।

शरीरविज्ञान दर्शन: जीवन और ध्यान में जागरूकता का सहज संतुलन

लंबे समय से, मैं अपनी आध्यात्मिक यात्रा में जागरूकता, प्रयास और संतुलन के बीच के अंतरसंबंध की खोज कर रहा हूँ। समय के साथ, कुछ उल्लेखनीय बात सामने आई है - आनंदमय जागरूकता का अनुभव करने का एक तरीका, एक अलग ध्यान-अभ्यास के रूप में नहीं बल्कि जीवन के एक एकीकृत हिस्से के रूप में। यह समझ मेरे प्रत्यक्ष अनुभव से विकसित हुई है, न कि सिद्धांत या अंधविश्वास से।

प्राण और अपान का सूक्ष्म खेल

योग में, प्राण और अपान के मिश्रण को मौलिक माना जाता है। प्राण विस्तार है, अपान संकुचन है। शरीरविज्ञान दर्शन के माध्यम से - विस्तारित मानसिक और संवेदी जागरूकता में रहते हुए शरीर पर ध्यान देने का एक तरीका - यह मिश्रण स्वाभाविक रूप से होता है। मैंने देखा है कि विस्तारित जागरूकता में रहते हुए शरीर पर बस क्षणिक ध्यान देने से सामान्य और संतुलित आनंद उत्पन्न होता है। यह एक अवर्णनीय स्थिति है - न तो पूरी तरह से विस्तारित और न ही संकुचित, फिर भी दोनों ही और एक ही समय में दोनों ही नहीं।

यह अभ्यास व्यस्त और तकनीकी माहौल में विशेष रूप से उपयोगी हो गया है, जब गहन ध्यान संभव नहीं होता है। काम में लगे हुए शरीर पर एक संक्षिप्त नज़र संतुलन और आनंद की भावना को बनाए रखने के लिए पर्याप्त है। इसके लिए लंबे समय तक बैठने की ज़रूरत नहीं है; बदलाव को महसूस करने के लिए बस एक सेकंड का अंश ही काफी है।

लेकिन जब मैं शरीर पर गहराई से ध्यान करता हूँ - शरीरविज्ञान दर्शन के होलोग्राफ़िक सिद्धांत का पालन करते हुए, जहाँ उस समय ब्रह्मांड में मौजूद हर चीज़ छोटे से शरीर के अंदर प्रतिबिंबित होती है - तो बैठक वाले ध्यान के जैसा प्रभाव पैदा होता है। ध्यान की छवि उज्ज्वल हो जाती है ,जागरूकता अधिक आंतरिक हो जाती है, और अनुभव स्वाभाविक रूप से गहरा हो जाता है। इससे जैसे-जैसे सांस सूक्ष्म होती जाती है, केवल कुंभक स्थापित होने की संभावना भी बढ़ जाती है।

जागरूकता में प्रयास और आदत का निर्माण

कई लोग मानते हैं कि आध्यात्मिक महारत अंततः एक ऐसी स्थिति की ओर ले जाती है जहाँ किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। लेकिन मैंने महसूस किया है कि मन हमेशा एक-बिंदु वाला होता है, चाहे मस्तिष्क और अनुभव कितना भी विकसित हो जाए। तभी तो कहते हैं कि ऊधो, मन एक न भयो दस बीस। ध्यान को एक बिंदु से दूसरे बिंदु पर स्थानांतरित करने के लिए हमेशा प्रयास की आवश्यकता होती ही है। कोई अंतिम महारत नहीं है जहाँ प्रयास गायब हो जाता है - बल्कि, महारत इस बदलाव को स्वाभाविक और सहज बनाने में निहित है। हालांकि, समय के

साथ यह प्रयास बेहतर होता जाता है। यह दैनिक गतिविधियों में आसानी से घुलने-मिलने लगता है, एक अलग अभ्यास की तरह महसूस करने के बजाय एक आदत बन जाता है। आखिरकार, शरीरविज्ञान दर्शन और ध्यान एक दूसरे से अलग होना बंद कर देते हैं - इसके बजाय वे एक दूसरे के पूरक और एक दूसरे से सुदृढ़ होते हैं। ध्यान दैनिक जीवन में जागरूकता को बढ़ाता है, और जीवन सहज ध्यान के लिए एक सतत क्षेत्र प्रदान करता है। पिन पॉइंटेड और गहन जागरूकता को ही ध्यान कहते हैं।

अज्ञानता के बिना अलगाव

मैंने जो सबसे बड़ा परिवर्तन देखा है, वह यह है कि कैसे भावनाएँ अब चिपकती नहीं हैं। तनावपूर्ण स्थितियों के दौरान भी, जागरूकता अंततः संतुलन में आ जाती है। सामान्य विचारों की तुलना में भावनात्मक गड़बड़ी को खत्म होने में अधिक समय लगता है, लेकिन वे गड़बड़ भावनाऐं फिर भी अवशेष छोड़े बिना गुजर जाती हैं।

यह अज्ञानता या दमन नहीं है, बल्कि एक आनंदमय और अलग प्रकार की स्वीकृति है। ऐसा लगता है जैसे भावनाएँ पूरी तरह से महसूस की जाती हैं, लेकिन वे जागरूकता में अपने को हुक नहीं करती हैं। वे उठती हैं, दिखाई देती हैं, और फीकी पड़ जाती हैं - केवल स्पष्टता और सहजता को पीछे छोड़ती हैं। इस प्राकृतिक अलगाव या अनासक्ति का मतलब यह भी है कि मानसिक अतिप्रक्रिया कम हो गई है - भावनाओं के बारे में अब अंतहीन आंतरिक बातचीत नहीं है।

ऊर्जा और जागरूकता की स्थिरता

लेकिन यह स्थिति स्वचालित नहीं है। इसके लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। जब ऊर्जा अधिक होती है, तो संतुलन सहज होता है। जब ऊर्जा कम होती है, तो उतार-चढ़ाव होता है। यह एक स्वस्थ और संतुलित जीवनशैली को महत्वपूर्ण बनाता है। यह कठोर नियमों के बारे में नहीं है, बल्कि इस तरह से जीने के बारे में है जो स्वाभाविक रूप से स्पष्टता और जागरूकता का समर्थन करता है।

इसने साधना के प्रति मेरे दृष्टिकोण को सरल बना दिया है। अब जटिल तकनीकों या जबरन ध्यान की आवश्यकता नहीं है। जब शरीर, श्वास और प्राण सामंजस्य में होते हैं, तो जागरूकता स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होती है। ध्यान अब एक अतिरिक्त जुगाड़ है, जो जागरूकता नको बनाए रखने के लिए आवश्यक नहीं है। यह अनुभव को गहरा और परिष्कृत करता है, लेकिन यह आधार नहीं है - जीवन ही अभ्यास है।

"मैं" से ध्यान छवि की ओर बदलाव

गहन ध्यान के दौरान, कुछ आकर्षक होता है - "मैं" विलीन हो जाता है और वह दादा गुरु की ध्यान छवि द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। यह केवल दृश्यावलोकन नहीं है; यह जागरूकता का जीवंत केंद्र बन जाता है। ऐसा लगता है जैसे अहंकार आधारित आत्म फीका पड़ जाता है, और चेतना पूरी तरह से गुरु तत्व में समा जाती है।

यह धारणा से पूरी तरह मेल खाता है जो ध्यान की ओर ले जाता है - जहाँ ध्यान करने वाला , ध्यान का विषय और ध्यान की क्रिया एक हो जाती है। व्यक्तित्व की भावना फीकी पड़ जाती है , और केवल गुरु की उपस्थिति रह जाती है।

मैंने क्या हासिल किया है और मैं क्या चाहता हूँ

मैं उच्चतम आध्यात्मिक अवस्था तक पहुँचने का दावा नहीं करता। मैंने अभी तक निर्विकल्प समाधि का अनुभव नहीं किया है - मतलब स्वयं का शुद्ध चेतना में अंतिम विलय। हालाँकि, मैं ने एक संतुलित, आनंदमय जागरूकता का स्वाद चखा है जो जीवन के साथ सहज रूप से एकीकृत या मिश्रित होती है।

मेरी यात्रा जारी है। अब मेरे पास जो है वह स्पष्टता है - प्रत्यक्ष अनुभव और अनुशासित प्रयास , दोनों के माध्यम से सहज जागरूकता कैसे विकसित की जा सकती है, इसकी गहरी समझ। मैं संसार से अंतिम पलायन की तलाश नहीं करता बल्कि एक स्थायी अवस्था की तलाश में रहता हूं जहाँ आध्यात्मिक जागरूकता सांसारिक जीवन में भी अविचलित रहती है।

यह मार्ग भव्य उपलब्धियों या रहस्यमय प्रदर्शनों के बारे में नहीं है। यह यहाँ और अभी संतुलन , स्पष्टता और आनंद के साथ जीने के बारे में है। और इस यात्रा में, शरीरविज्ञान दर्शन मेरे लिए सहज जागरूकता की कुंजी बन गया है - ध्यान और जीवन दोनों में।

तांत्रिक-क्रिया जागरण: सबसे शक्तिशाली और व्यावहारिक मार्ग

अस्वीकरण: यह पोस्ट तांत्रिक यौन साधना पर आधारित है और इसमें यौन-स्पष्ट सामग्री हो सकती है। उचित मार्गदर्शन अनिवार्य है, क्योंकि गलत तरीके से अभ्यास करने पर शारीरिक, मान सिक या भावनात्मक असंतुलन हो सकता है। यह सामग्री केवल सूचनात्मक उद्देश्यों के लिए है और विशेषज्ञ परामर्श का विकल्प नहीं है। सावधानीपूर्वक और अपनी जिम्मेदारी पर अभ्यास करें।

मेरी तांत्रिक जागरण यात्रा

मैंने ऊर्जा जागरण के कई मार्गों का अनुभव किया है। लोग अक्सर क्रिया योग और प्राणायाम की बात करते हैं, लेकिन मेरे लिए तंत्र—विशेषकर तांत्रिक मैथुन—सबसे प्रभावी साधना साबित हुई।

जब भी मैंने तांत्रिक मैथुन से शुरुआत की, मुझे तत्काल गहन आनंद और जागरूकता का अनुभव हुआ। यह मेरी पूर्ण जागृति के क्षणों की तरह था, हालांकि उसकी हल्की झलक भर। बाद में, प्र ोस्टेट संबंधी समस्या के कारण मैंने एकल साधना की ओर रुख किया, लेकिन सच कहूँ तो, त ंत्र के वास्तविक प्रभाव का अनुभव करने के बाद, एकल साधना मुझे निरर्थक लगी।

लिंग-योनि ध्यान साधना का सिद्धांत

कई साधक लिंग के अग्रभाग पर ध्यान केंद्रित करते हुए योनि में ऊर्जा सक्रिय करने की साधना का वर्णन करते हैं। यह प्रक्रिया इस प्रकार है:

ध्यान छवि को लिंग शिखा की संवेदना पर केंद्रित करें और आध्यात्मिक मिलन के दौरान इस पर ध्यान बनाए रखें।

संवेदनाओं के चरम बिंदु पर, जब सहनशीलता की सीमा पार होने वाली हो, तब ध्यान छवि और ऊर्जा को सुषुम्ना में ऊपर उठाएं।

योनि संकुचन से वीर्य स्खलन को रोकने के लिए, सहवास को ठीक अंतिम सीमा से पहले रोक दिया जाए।

योगिक श्वास द्वारा ऊर्जा को सहस्रार तक ले जाएं।

उससे सहस्रार पर ध्यान केंद्रित हो जाने से ध्यान छवि जागृत जैसी हो जाती है और आध्यात्मिक गुण स्वतः प्रकट होते हैं।

इससे सात्त्विक ऊर्जा का जागरण होता है, जो कई हफ्तों तक बनी रहती है। लेकिन यह भी सत्य है कि संसार की ऊर्जा इसे धीरे-धीरे नीचे खींच लेती है।

तंत्र क्यों है एकल क्रिया साधना से अधिक प्रभावी?

कई साधक मानते हैं कि केवल क्रिया योग ही आध्यात्मिक जागरण के लिए पर्याप्त है। लेकिन मेरा अनुभव कुछ अलग कहता है।

प्राण-अपान का संतुलन: क्रिया योग में श्वास अंदर लेने पर प्राण ऊपर जाता है, लेकिन अपान (नीचे जाने वाली ऊर्जा) कैसे वापस लौटे? अगर मैं इसे और स्पष्ट करूं तो मेरे कहने का मतलब है कि मस्तिष्क में ऊर्जा जमा हो जाने से सिरदर्द, सिर का भारीपन, मूर्छा जैसी अचेतनता या अंधकार या आनंदहीनता या अस्वस्थता का जैसा आभास होता है। ऊर्जा को मस्तिष्क से नीचे लाने के लिए कोई समर्पित नाड़ी ही नहीं है सुषुम्ना की तरह। बेशक कुछ योगी काल्पनिक फ्रंट चैनल से ऊर्जा नीचे निकाल लेते हैं, पर यह कामचलाऊ जुगाड़ ही लगता है और ज्यादा एफिशिएंट नहीं है। क्रिया में सुषुम्ना से ही ऊर्जा को नीचे भी उतारा जाता है। पर यह भी ऐसा ही जुगाड़ है क्योंकि सुषुम्ना ऊर्जा को ऊपर ले जाने के लिए ही बनी है। अगर वन वे रोड को टू वे बना दिया जाए, तो आप समझ सकते हैं कि क्या होगा। इसके विपरीत यबयुम से बंधी कंसोर्ट ऊर्जा को नीचे उतारने के लिए सर्वोत्तम और प्रभावी चैनल है। इससे ऊर्जा एक ट्रक की तरह लूप रोड में घूमती रहती है और ध्यान चित्र के रूप में लोडेड माल को लगातार सहस्रार में उड़ेलती रहती है। यही कारण है कि तंत्र अधिक प्रभावी है, क्योंकि इसमें प्राण और अपान स्वाभाविक रूप से संतुलित होते हैं।

ऊर्जा प्रवाह का प्राकृतिक चक्र: एकल साधना में, प्राण और अपान को एक साथ चलाने के लिए तकनीकों का प्रयोग किया जाता है, लेकिन यह प्राकृतिक रूप से नहीं होता। तांत्रिक मिलन में , जब साधक की श्वास प्राण को ऊपर ले जाती है, तब सहचरी के शरीर में अपान नीचे की ओर प्रवाहित होता है। ऐसा शायद प्राणापान का संतुलन बनाए रखने के लिए ही होता है। इससे एक सतत ऊर्जात्मक चक्र बनता है, जो प्राकृतिक और शक्तिशाली होता है।

क्रिया योग की सीमाएँ: क्रिया श्वास अर्थात रीढ़ की साँस या आंतरिक श्वास या विलोम श्वास, यह ऊर्जा प्रवाह की नकल करने की कोशिश करता है, लेकिन यदि मूलाधार में ऊर्जा उत्पन्न ही नहीं हुई, तो इसे ऊपर खींचने का क्या लाभ? तंत्र सबसे पहले आधार चक्र में ऊर्जा उत्पन्न करता है, फिर उसे परिष्कृत और ऊर्ध्वगामी करता है।

इसलिए तंत्र और क्रिया का संतुलित समावेश सबसे प्रभावी मार्ग है। पहले तंत्र से ऊर्जा उत्पन्न करें, फिर क्रिया से उसे ऊपर उठाएँ और परिष्कृत करें। बेशक कुदरती तौर पर भी यौन ऊर्जा बनती

रहती है और यौन चक्रों में जमा होती रहती। पर इसे तंत्र से ही तेज गति मिलती है। वास्तव में हठयोग की उन्नत और गुप्त तकनीकें यौन तंत्र की ही नकल करके बनाई गई लगती हैं।

जागृत अवस्था को बनाए रखने की चुनौती

तंत्र से जागृति संभव तो है, लेकिन शरीर की सीमाएँ भी होती हैं। सवाल यह उठता है कि इस जागरण को बिना बार-बार तंत्र का अभ्यास किए कैसे बनाए रखा जाए?

स्थायी जागरूकता बनाए रखने के उपाय

शारीरिक से मानसिक साधना की ओर स्थानांतरण: जब ध्यान छवि पूरी तरह सहस्रार में जीवंत हो जाती है, तो भौतिक क्रियाओं की आवश्यकता नहीं रहती। लिंग-योनि से जागरण की जगह, सीधे सहस्रार में प्रवेश किया जा सकता है।

ऊर्जा स्मृति सक्रिय करना: प्रत्येक अभ्यास हमारे चेतना केंद्रों में एक गहरी छाप छोड़ता है। यदि ध्यान छवि जागृत अवस्था से जुड़ी है, तो सिर्फ स्मरण मात्र से ऊर्जा सक्रिय हो सकती है। लेकिन यह बिना क्रिया के थोड़ा कठिन होता है। इसलिए मैं इसके लिए क्रिया श्वसन का सहारा लेता हूँ।

जीवन में ऊर्जा प्रवाह बनाए रखना: संसार की नकारात्मक ऊर्जा स्वाभाविक रूप से हमारी ऊर्जा को नीचे खींचती है। लेकिन अब मैं इसे नियंत्रित करने में सक्षम हूँ। हल्की उज्जायी श्वास दैनिक गतिविधियों के दौरान उच्च ऊर्जा अवस्था को बनाए रख सकती है। मेरी शरीरविज्ञान दर्शन साधना भी इसी उद्देश्य की पूर्ति करती है।

क्या मैं पूर्ण जागरण प्राप्त कर चुका हूँ?

मैं कोई अतिशयोक्ति नहीं करूंगा। मैंने लंबे समय तक जागृत अवस्था को बनाए रखा, लेकिन संसार की ऊर्जा ने अंततः इसे नीचे खींच लिया।

क्या क्रिया योग से यह संभव है? हाँ, यदि इसे वर्षों तक निरंतर, गहन अभ्यास किया जाए। लेकिन आज के व्यस्त जीवन में यह अव्यवहारिक है।

क्या तंत्र अकेले पर्याप्त है? नहीं, क्योंकि यह पूर्ण सामाजिक और स्वास्थ्य अनुकूल नहीं है।

सबसे व्यावहारिक और शक्तिशाली मार्ग क्या है?

जब संभव हो, तंत्र से ऊर्जा उत्पन्न करें और बेशक परिष्कृत भी करें। क्रिया से इसे और परिष्कृत करें और ऊपर उठाएँ। जीवन की परिस्थितियों के अनुसार अनुकूलन करें।

क्या तंत्र-क्रिया मिश्रण सर्वोत्तम मार्ग है?

निश्चित रूप से हाँ।

कठोर नियम काम नहीं करते। केवल तंत्र या केवल क्रिया पर्याप्त नहीं हैं। ज
ीवन की परिस्थितियों के अनुसार तंत्र और क्रिया का संतुलन ही सबसे तेज, सबसे शक्तिशाली और सबसे व्यावहारिक मार्ग है।

यह केवल सिद्धांत नहीं है—यह मेरा स्वयं का अनुभव है। और इसमें कोई संदेह नहीं कि यह मार्ग वास्तव में कार्य करता है।

कच्ची ऊर्जा बनाम परिष्कृत ऊर्जा आरोहण: तंत्र-क्रिया परिवर्तन का विज्ञान

शायद जिसे मैं आज तक अपने कुंडलिनी जागरण का अनुभव समझ रहा था, वह वास्तव में आत्मज्ञान या सविकल्प समाधि का अनुभव था, क्योंकि इसमें पूर्ण अद्वैत आनंद के साथ-साथ आत्मा का भी पूर्ण अनुभव था। मतलब, ऐसा लगा कि मैंने पूर्णता प्राप्त कर ली है, यानी मैंने परम सिद्धि प्राप्त कर ली है, यानी मैं परम सत्ता से एकाकार हो गया हूँ। कुंडलिनी जागरण शायद वह अवस्था है जब मूलाधार की कच्ची या निराकार ऊर्जा एक ध्यानात्मक चित्र में परिवर्तित हो जाती है। बेशक, यह अवस्था आत्मज्ञान के समान है और विकसित होने के बाद वहाँ पहुँचती है। इसलिए, इसे अपरिपक्व या निम्न स्तर का आत्मज्ञान भी कहा जा सकता है। निराकार कुंडलिनी शक्ति को सुप्त शक्ति भी कहा जा सकता है। जब यह परिष्कृत होकर स्थिर ध्यानात्मक चित्र का रूप ले लेती है, तो इसे शक्ति का जागरण भी कहा जा सकता है। वैसे, इन सभी आध्यात्मिक अवस्थाओं में अंतर केवल तीव्रता का है, मूल रूप से सभी की प्रकृति एक जैसी है। इसलिए, उनके नाम आपस में बदलने में ज़्यादा अंतर नहीं है।

ऊर्जा जागरण के सबसे आकर्षक पहलुओं में से एक है कच्ची यौन ऊर्जा का उच्च आध्यात्मिक जागरूकता में रूपांतरण। लेकिन यह प्रक्रिया वास्तव में कैसे होती है? और क्या ऊर्जा को ऊपर उठाने से पहले उसे परिष्कृत करना आवश्यक है, या क्या परिवर्तन के लिए कच्ची ऊर्जा को सीधे सहस्रार में खींचा जा सकता है?

मेरे अनुभव में, दोनों दृष्टिकोण या तरीके काम करते हैं, लेकिन उनके अलग-अलग प्रभाव हैं। आइए दोनों रास्तों का गहराई से पता लगाते हैं।

1. कच्ची ऊर्जा को सीधे सहस्रार में उठाना

कुछ परंपराएँ बिना किसी पूर्व-शर्त के सीधे ही आधार (मूलाधार) से सुषुम्ना से होते हुए सहस्रार तक ऊर्जा खींचने पर ज़ोर देती हैं। इस विधि से तुरंत जागृति के अनुभव हो सकते हैं, लेकिन इसमें संभावित जोखिम भी हैं।

जब कच्ची ऊर्जा को ऊपर खींचा जाता है तो क्या होता है?

यदि व्यक्ति पहले से ही आध्यात्मिक रूप से परिपक्व है, तो ऊर्जा सहस्रार में स्वयं व्यवस्थित हो जाती है, स्वचालित रूप से एक ध्यान छवि, आनंद या शुद्ध निराकार जागरूकता में परिवर्तित हो जाती है। लेकिन व्यक्ति पूरी तरह से विश्वास नहीं करता कि ध्यान छवि ने ऊर्जा के उत्थान और परिणामस्वरूप जागृति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ऐसा इसलिए है क्योंकि उसकी झलक जागृति के क्षणों के दौरान, वह छवि उसकी जागरूकता में प्रवेश नहीं कर रही थी क्योंकि शुरू से ही यह निचले चक्रों में ऊर्जा पर आरोपित नहीं थी। यह समझ उसे पूरी तरह से

उसके प्रति समर्पित होने और आगे की आध्यात्मिक प्रगति में उसकी मदद लेने में हिचकिचाहट पैदा कर सकती है। इसके ठीक विपरीत तब होता है जब कोई मूलाधार और स्वाधिष्ठान क्षेत्र की कच्ची ऊर्जा को उसके ऊपर चढ़ने से पहले ही ध्यान छवि में बदल देता है। भोजन को उसके परिवहन से पहले शुरू में ही संशोधित करना बेहतर और किफायती होता है। यदि उत्थान को नियंत्रित नहीं किया जाता है, तो ऊर्जा इस प्रकार प्रकट हो सकती है:

सिर में तीव्र दबाव या बेचैनी।

अव्यवस्थित दृश्य या प्रकाश घटनाएँ।

अस्थायी भटकाव या असंतुलन।

ऊर्जा का पूरी तरह से अवशोषित हुए बिना तेज़ी से वापस नीचे की ओर बहना। लेकिन अगर ध्यान छवि पहले से ही मूलाधार में जीवित है, तो सबसे अधिक संभावना है कि जागृति उसके साथ होगी। तब ध्यान छवि हमेशा किसी भी छिपी हुई या संभावित ऊर्जा-घटना के संकेतक के रूप में मन में दिखाई देती है। इसका मतलब है, कोई भी इस टैग के साथ ऊर्जा खेल को आसानी से पहचान सकता है।

निराकार या शून्य ऊर्जा व्यक्ति को बुरी आदतों में डाल सकती है, लेकिन जो ऊर्जा ध्यान प्रतिमा के रूप में स्थिर या रूपांतरित है, वह उसमें ही फंसी रहेगी, बाहर कैसे जा जाएगी। इसे ऐसे समझें कि जब साधक गुरु या भगवान के ध्यान में लीन होगा, तो उसके पास बुरी चीजों पर खर्च करने के लिए कोई ध्यान ही कहां बचेगा। इसके विपरीत, यदि ऊर्जा किसी उत्थानकारी ध्यान में स्थिर नहीं है, तो वह बुरी या द्वैतवादी या सांसारिक चीजों के ध्यान में अवश्य ही फंस जाएगी, क्योंकि मानसिक ऊर्जा का स्वभाव ध्यान या चिंतन करना है, अर्थात वह चिंतन द्वारा ही खर्च हो पाती है।

कुछ मामलों में, ध्यान~प्रतिमा के रूप में स्थिर होने के बजाय, ऊर्जा एक निराकार परमानंद अवस्था में विलीन हो सकती है - शक्तिशाली, लेकिन उसे बनाए रखना कठिन होता है, क्योंकि उसकी याद बनाए रखने के लिए या विपासना के माध्यम से उसकी जागरूकता बनाए रखने के लिए ध्यानचित्र ही नहीं है। इसे ऐसे समझो कि जागृति तो अचानक मिल गई पर आगे क्या होगा। साधक एकदम से अचेतन संसार में गिर सकता है। इससे उसे चेतना परिवर्तन का जबरदस्त धक्का या सदमा लग सकता है, जो भयावह हो सकता है। वह कई प्रकार के मानसिक विकार या रोग पैदा कर सकता है। इसीलिए कहते हैं कि गुरु बिन ज्ञान नहीं। शायद गुरु ही खुद ध्यानचित्र बनते हैं या किसी अन्य को जैसे कि प्रेमी या देवता को बनवाते हैं। अगर फिर भी

शिष्य का ध्यान चित्र न बन पाए तो जागृति के दौरान और उसके बाद होने वाले मनोदोलन से उसे बचाते हैं।

2. उठाने से पहले ऊर्जा को परिष्कृत करना: एक अधिक नियंत्रित प्रक्रिया

इसके विपरीत, उठाने से पहले ऊर्जा को परिष्कृत करना सुनिश्चित करता है कि आरोहण सुचारू , स्थिर और निर्देशित हो। स्थिर मतलब यह ध्यान चित्र के ध्यान के साथ पुनः पुनः स्मरण होता रहता है। सुचारु मतलब ध्यान चित्र के ध्यान से लगातार बना रहे। ऐसा न हो कि संयोगवश अपने आप ऊर्जा का बहाव हो जाए और फिर हम हाथ पे हाथ देके बैठे रहें। क्योंकि हमें पता ही नहीं होगा कि इसे पुनः कैसे चढ़ाना है। अगर हम बंध आदि से कोशिश भी करेंगे तो भी यह एक यांत्रिक सा खिंचाव ही होगा। इसमें चेतना कम होगी। आनंद भी कम होगा। क्योंकि हम केवल सनसनी ही अनुभव करेंगे, कोई ध्यानचित्र नहीं। इससे इसे प्रेमयुक्त सामाजिक मान्यता भी कम मिलेगी। ऐसा होने से हम ज्यादा उत्साह से साधना नहीं कर पाएंगे। यांत्रिक बल के साथ प्रेम बल न जुड़ने के कारण वह बल भी काफी कमतर होगा। निर्देशित मतलब हम आज्ञा चक्र पर ध्यान छवि का ध्यान करके ऊर्जा को स्वचालित रूप से वहां खींच सकते हैं, हमें ऊर्जा पर ध्यान देने की जरूरत ही नहीं है। इसी तरह किसी भी चक्र पर ध्यान चित्र का ध्यान करके ऊर्जा को वहां इकट्ठा कर सकते हैं। ऊर्जा का परिष्करण अक्सर ऊर्जा पर ध्यान छवि को आरोपित करके किया जाता है , जबकि यह अभी भी निचले चक्रों में है।

शोधन कैसे काम करता है?

चरण 1: आधार पर कच्ची ऊर्जा उत्पन्न करना

यह पारंपरिक रूप से तांत्रिक मैथुन, नियंत्रित उत्तेजना या आंतरिक ऊर्जा साधना के माध्यम से किया जाता है।

कच्ची ऊर्जा शक्तिशाली होती है, लेकिन अपनी अपरिष्कृत अवस्था में, यह नीचे की ओर बहती है (अपान)। क्योंकि नीचे स्थित यौन अंगों में कच्ची या अपरिष्कृत संवेदना ही महसूस होती है। इसके विपरीत, ध्यान छवि में हमेशा ऊपर उठने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है क्योंकि मस्तिष्क ही छवि बनाने का मुख्य अंग है। छवि अपने साथ ऊर्जा को भी ऊपर उठाती है। इसका मतलब है , छवि एक कुशल ऊर्जा वाहक बन जाती है।

चरण 2: ध्यान छवि के साथ स्थिर करना

ऊर्जा को अव्यवस्थित रहने देने के बजाय, एक देवता, गुरु, आत्म-छवि या शून्य को उस पर आरोपित किया जाता है।

यह ऊर्जा को स्थिर करता है और अपव्यय के माध्यम से होने वाले नुकसान को रोकता है।

चरण 3: क्रिया श्वास के माध्यम से ऊर्जा को ऊपर उठाना

एक बार जब कच्ची ऊर्जा रंगीन हो जाती है

आध्यात्मिक ध्यान द्वारा, क्रिया श्वास (रीढ़ की हड्डी से श्वास, उज्जयी, या आंतरिक चूषण) का उपयोग करके इसे ऊपर की ओर निर्देशित किया जाता है।

अब, ऊर्जा सिर्फ़ ऊपर नहीं उठती - यह अपने साथ ध्यान की छवि को भी ले जाती है।

चरण 4: सहस्रार में परिवर्तन

जब यह परिष्कृत ऊर्जा सहस्रार तक पहुँचती है, तो ध्यान की छवि पूरी तरह से जीवंत, सचेत अनुभव में खिल जाती है।

ऊर्जा अव्यवस्थित रूप से बिखरती नहीं है, बल्कि शुद्ध आनंद, जागरूकता और आध्यात्मिक बोध के रूप में स्थिर हो जाती है। ध्यान चित्र इसे बांध कर रखने का काम करता है।

कौन सा दृष्टिकोण बेहतर है?

प्रत्यक्ष उत्थान और परिष्कृत उत्थान दोनों ही जागृति की ओर ले जा सकते हैं, लेकिन उनके प्रभाव अलग-अलग हैं:

उन्नत अभ्यासियों के लिए, कच्ची ऊर्जा सहस्रार में स्वयं व्यवस्थित हो सकती है, जिससे प्रत्यक्ष उत्थान संभव हो जाता है। अधिकांश लोगों के लिए, पहले शोधन एक संरचित और पूर्वानुमानित परिवर्तन सुनिश्चित करता है।

मेरी जागृति झलकियों के आसपास मेरा अपना ऊर्जा आरोहण अनुभव

मेरी पहली जागृति झलक कच्ची ऊर्जा के ऊपर उठने से हुई क्योंकि मैंने इसे संरचित ध्यान साधना के माध्यम से निचले चक्रों पर ध्यान छवि के लिए परिष्कृत नहीं किया था। इसीलिए उस झलक के दौरान कोई भी छवि मेरी जागरूकता के लिए केंद्रीय आधार के रूप में नहीं आई। इसके बजाय जागृति के दौरान महसूस की गई सभी वस्तुएँ एक दूसरे के बराबर थीं। जहाँ तक मुझे याद है, कोई भी मानवीय चेहरा जागरूकता में नहीं आया। उसके बाद गुरु और आभासी संगिनी की छवियाँ सामान्य जीवन के दौरान जागरूकता में प्रकट होती थीं जो मुझे अद्वैत, आनंद और शांति

प्रदान करती थीं, लेकिन मैं उनमें से किसी को भी अपनी ध्यान छवि के रूप में स्वीकार नहीं कर सका। मैं उन्हें अपने मस्तिष्क रसायन विज्ञान में कुछ त्रुटियों के रूप में देखता था। इसलिए आध्यात्मिक प्रगति के लिए उन्हें अपने जीवन में शामिल करने के बजाय कभी-कभी उनसे छुटकारा पाने की कोशिश करता था। इसलिए मैं मुख्य रूप से कुछ अति बहिर्मुखी लोगों की नज़र में थोड़ा असामाजिक प्रकार का हो गया था। हालाँकि, बाद में मैंने उन्हें स्वीकार करना शुरू कर दिया जिसने मेरी आसमान छूती प्रगति को बढ़ावा दिया। अपनी दूसरी जागृति के लिए संरचित ध्यान साधना के समय तक मैं काफी परिपक्व हो गया था और मैंने शुरुआत से ही आधार पर ऊर्जा को परिष्कृत किया। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरे गुरु ने मेरी ध्यान छवि के रूप में मेरी जागृति की शुरुआत की। इसने मेरी पिछली जागृति की उपरोक्त सभी कमियों को पूरी तरह से नष्ट कर दिया। आरोहण से परे: जागृत अवस्था को बनाए रखना

दोनों तरीकों में एक बड़ी चुनौती दैनिक जीवन में जागृत अवस्था को स्थिर रखना है।

यदि शोधन जल्दी किया गया जाए, तो अभ्यास के बाद भी ध्यान की छवि सुलभ रहती है। यदि कच्ची ऊर्जा अव्यवस्थित तरीके से उठाई गई हो, तो यह जल्दी से फीकी पड़ सकती है, जिसे पुनः प्राप्त करने के लिए निरंतर अभ्यास की आवश्यकता होती है। दोनों तरीकों का मिश्रण सबसे व्यावहारिक हो सकता है - तंत्र के माध्यम से ऊर्जा उत्पन्न करना, उसे परिष्कृत करना, और फिर क्रिया के माध्यम से उसे ऊपर उठाना।

अंतिम विचार: सबसे व्यावहारिक मार्ग

मेरे अनुभव से, सबसे यथार्थवादी और टिकाऊ दृष्टिकोण है:

आधार पर ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए तंत्र का उपयोग करें। शोधन के लिए एक ध्यान छवि को आरोपित करें। क्रिया श्वास क्रिया के माध्यम से इसे धीरे-धीरे ऊपर उठाएँ। इसे सहस्रार में एक जीवंत जागरूकता के रूप में स्थापित करें। इसे शरीरविज्ञान दर्शन जनित सूक्ष्म श्वास जागरूकता के माध्यम से दैनिक जीवन में प्रसारित होने दें।

यह विधि अनियंत्रित कच्ची ऊर्जा आरोहण के खतरों से बचाती है और साथ में जागृति की पूरी शक्ति को प्रकट होने देती है।

अंततः, लक्ष्य सिर्फ ऊर्जा को जागृत करना नहीं है, बल्कि उसे चेतना में स्थायी रूप से एकीकृत करना है।

तांत्रिक मैथुन में ऊर्जा सीधे सहस्रार तक क्यों जाती है: जागरण का सबसे तेज़ मार्ग

तांत्रिक मैथुन और एकल ऊर्जा अभ्यासों के बीच सबसे महत्वपूर्ण अंतर यह है कि ऊर्जा शरीर के माध्यम से कैसे चलती है। पारंपरिक योग में, ऊर्जा धीरे-धीरे, चक्र दर चक्र ऊपर उठती है, अक्सर सहस्रार तक पहुँचने से पहले आज्ञा (तीसरी आँख) पर रुकती है। लेकिन तांत्रिक मैथुन में, कुछ असाधारण होता है:

ऊर्जा रुकती नहीं है। यह आज्ञा और अन्य चक्रों को छोड़कर सीधे सहस्रार तक पहुँचती है।

ऐसा क्यों होता है? तांत्रिक मिलन इतना शक्तिशाली शॉर्टकट क्यों है? आइए आंतरिक विज्ञान में गोता लगाएँ कि क्यों यौन ऊर्जा, जब सही तरीके से उपयोग की जाती है, चेतना के उच्चतम केंद्र तक सीधा रास्ता लेती है।

1. शिव और शक्ति का सीधा संलयन: कोई रुकावट नहीं, कोई संघर्ष नहीं

एकल आध्यात्मिक अभ्यासों में, लक्ष्य धीरे-धीरे अपने अंदर शिव (शुद्ध चेतना) और शक्ति (ऊर्जा)को एक करना है। दोहरी भूमिका एक ही व्यक्ति द्वारा निभाई जा रही है। शिव भी वही व्यक्ति बना है और शक्ति भी वही बना है। इसलिए यह स्पष्ट है कि यह बहुत कम अक्षम और बहुत धीमी प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में समय लगता है क्योंकि ऊर्जा को आगे बढ़ने से पहले प्रत्येक चक्र पर अवरोधों को साफ़ करना पड़ता है। वास्तव में अवरोध सांसारिक द्वैत भाव के होते हैं। उन्हें साफ़ करने या खोलने के लिए वहाँ एक मजबूत अद्वैत भावना डाली जानी चाहिए। ये अवरोध द्वैत से भरे विभिन्न सांसारिक विचारों की तरह हैं। जब इनके द्वैत का अद्वैत जागरूकता से प्रतिकार किया जाता है तो ये विचार बढ़ती ऊर्जा के साथ सहस्रार तक बढ़ते हैं क्योंकि यह अद्वैत जागरूकता का मुख्य चक्र है। सहस्त्रार में ये शुद्ध होकर आत्मा में विलीन हो जाते हैं। यिन-यांग मिलन सबसे बड़ा अद्वैत उत्पादक है, इसलिए तांत्रिक मैथुन से सभी चक्रों को तुरंत छेद दिया जाता है। मैथुन में, यह विलय तुरंत होता है। दो ध्रुवीय शक्तियाँ (पुरुष और स्त्री, चेतना और ऊर्जा)पहले से ही सीधे मिलन में हैं। ऊर्जा को निचले चक्रों पर रुकने की कोई ज़रूरत नहीं है क्योंकि संतुलन पहले ही हासिल हो चुका है।

यहां संतुलन का मतलब यिन और यांग का संतुलन है। हमें प्रत्येक चक्र पर इन दोनों का संतुलन बनाने की जरूरत नहीं है। अकेले अभ्यास में इसे बनाना होगा। इसके लिए हमें या तो प्रत्येक चक्र से संबंधित सांसारिक गतिविधियों और विचारों में अद्वैत जागरूकता के साथ शामिल होना होगा ताकि उस चक्र से द्वैत को हटाया जा सके या हमें उस विशेष चक्र पर उठने वाले विचारों का साक्षी होना होगा। साक्षी होने से ही अद्वैत पैदा होता है जो दबे हुए विचारों को बेअसर कर देता है। लेकिन तांत्रिक युग्मन प्रारंभ में ही चरम अद्वैत पैदा करता है। जैसे ही यौन ऊर्जा ऊपर उठती है और उन दबे विचारों को मानसिक स्क्रीन पर व्यक्त रूप में बाहर निकालती है, यह अद्वैत सभी

चक्रों में दबे हुए सभी विचारों पर आरोपित हो जाता है। ऐसा लगता है कि वे स्वयं के साथ विलीन हो रहे हैं। इससे उनका प्रतिरोधी प्रभाव खत्म हो जाता है। दरअसल, किसी द्वैतयुक्त या अपनी न मानी जाने वाली चीज को बेडरूम में नहीं ले जाया जा सकता। लेकिन अपनों के साथ जैसे कि जीवनसाथी के साथ ऐसा नहीं है। विचारों के साथ भी ऐसा ही होता है। इसलिए द्वैत या विदेशी विचार संबंधित चक्रों में दबे रहते हैं। शरीर की अंतर्निहित बुद्धि उन्हें आत्मा के मूल स्थान या बेडरूम यानी सहस्रार तक ले जाने में संकोच करती है। इसलिए वे बढ़ती हुई ऊर्जा को रोकते हैं यानी खुद को वहां अलग से बनाए रखने के लिए ऊर्जा का उपभोग करते रहते हैं। इसके बजाय जब उन्हें अद्वैत साधना से स्वयं के समान स्वच्छ बना लिया जाता है, तो उन्हें स्वयं में विलीन करने के लिए आसानी से सहस्रार तक ले जाया जाता है। यह शिवशक्ति मिलन या विवाह है। राजयोग आधारित कुंडलिनी योग में, केवल एक ध्यान छवि को सहस्रार तक ले जाया जाता है ताकि उसे स्वयं में विलीन किया जा सके और जागृति की झलक के रूप में इसका अनुभव किया जा सके। यह बहुत सुंदर अवधारणा है दोस्तों। हालांकि सभी दबे हुए विचार ऊपर ले जाए जाते हैं लेकिन वे पृष्ठभूमि में रहते हैं। हम केवल एक ध्यान छवि पर ध्यान केंद्रित करते हैं। इससे ऊर्जा विभिन्न विचारों में बंटने की बजाय एक ही निर्धारित कुंडलिनी विचार पर केंद्रित रहती है। इससे इसकी तीव्रता अन्य विचारों की तुलना में कई गुना बढ़ जाती है। यह उसके स्वयं अर्थात आत्मा या शिव के साथ सबसे शीघ्र विलय में मदद करता है अर्थात सबसे शीघ्र शिव शक्ति मिलन होता है। तांत्रिक युग्मन में, यह शिवशक्ति मिलन शुरू से ही भौतिक स्तर पर हो रहा होता है। यह शुरू से ही आध्यात्मिक गुणों को मुख्यतः अद्वैत को उत्पन्न करता है। जागृति की झलक के समय तो यह अद्वैत भाव चरम पर पहुंच जाता है। दरअसल अचेतन शक्ति ही चेतन शिव से मिलाप करती है। इसीलिए यह सबसे बड़ा यिनयांग मिलन है। शक्ति अचेतन और अन्लोकलाइज्ड है। इसे हमने ध्यान छवि का रूप देकर चेतन बनाया है। ऐसा इसलिए किया है क्योंकि हम अचेतन चीज को कैसे अनुभव करेंगे और कैसे उसे पिन प्वाइंट करेंगे और उसके लोकलाइज्ड न होने से कैसे उसे हैंडल करेंगे।

जिस क्षण उत्तेजना अपने चरम पर पहुँचती है, मूलाधार की ऊर्जा के पास केवल एक ही रास्ता बचता है: सीधे सहस्रार तक जाना। यह टूटे हुए तार के दो सिरों को जोड़ने जैसा है - करंट बिना किसी रुकावट के तुरंत बहता है।

2. अत्यधिक ऊर्जा वृद्धि: रुकने का समय नहीं

साधारण ध्यान छोटे, नियंत्रित चरणों में ऊर्जा बढ़ाता है, जिससे शरीर को समायोजित करने का मौका मिलता है। लेकिन तांत्रिक मैथुन में, ऊर्जा वृद्धि इतनी शक्तिशाली होती है कि चरण-दर-चरण चढ़ने का समय नहीं होता।

क्षण की तीव्रता जीवन शक्ति की एक विशाल लहर उत्पन्न करती है जो ऊपर की ओर बढ़ती है।

यह एकल श्वास क्रिया या क्रिया द्वारा एक सत्र में उत्पन्न की जा सकने वाली ऊर्जा से कहीं अधिक शक्तिशाली है।

चक्रों के माध्यम से धीरे-धीरे बहने के बजाय, ऊर्जा बांध के टूटने की तरह बह जाती है - सीधे सहस्रार में।

यही कारण है कि तांत्रिक ऊर्जा तत्काल जागृति ला सकती है, जबकि एकल अभ्यासों के लिए अक्सर वर्षों के प्रयास की आवश्यकता होती है।

3. तांत्रिक मैथुन में यब-युम स्थिति स्वाभाविक रूप से सुषुम्ना को संरेखित करती है, प्रेमियों के शरीर यब-यम मुद्रा में संरेखित होते हैं, जिसका अर्थ है:

उनकी सुषुम्ना नाड़ियाँ (केंद्रीय ऊर्जा चैनल) सीधे जुड़ी हुई होती हैं।

यह संरेखण प्रतिरोध को दूर करते हुए एक आदर्श ऊर्जा सर्किट बनाता है।

ऊर्जा को ऊपर की ओर धकेलने की आवश्यकता के बजाय, यह सहजता से ऊपर उठती है। इसे दो नदियों के एक शक्तिशाली धारा में विलीन होने जैसा समझें। चक्रों के माध्यम से कदम दर कदम आगे बढ़ने वाली ऊर्जा के बजाय, यह अब एक एकल बल के रूप में सीधे उच्चतम बिंदु पर प्रवाहित होती है।

4. कामोन्माद ऊर्जा पहले से ही अद्वैतरूप है।

स्खलन से पहले संवेदना का चरम बिंदु विचार से परे, और अलगाव से परे की स्थिति है। यह पूर्ण अद्वैत है क्योंकि यांग और यिन पूरी तरह से मिश्रित हो रहे हैं।

उस क्षण, मन द्वैत में काम करना बंद कर देता है।

यह अवस्था सहस्रार की प्रकृति के समान है - शुद्ध, अविभाजित आनंद-चेतना।

आज्ञा चक्र (जहाँ विचार और धारणा अभी भी मौजूद हैं) में रहने के बजाय, ऊर्जा उससे परे - परम की ओर बढ़ती है।

लेकिन इसमें एक समस्या है।

यदि अभ्यासी सही समय पर पीछे हट जाता है और इस ऊर्जा को ध्यान छवि या मंत्र के साथ विलीन कर देता है, तो यह सहस्रार तक पहुँच जाती है और स्थिर हो जाती है। यदि सीमा पार हो जाती है (स्खलन), तो ऊर्जा वापस नीचे गिर जाती है, अपनी गति खो देती है।

यही कारण है कि तांत्रिक मैथुन में सफलता के लिए चरम बिंदु पर नियंत्रण हासिल करना महत्वपूर्ण है।

5. आज्ञा चक्र पर कोई मानसिक हस्तक्षेप नहीं

अकेले अभ्यास में, ऊर्जा अक्सर आज्ञा चक्र पर रुक जाती है क्योंकि:

मन अवलोकन, विश्लेषण और प्रश्न करना शुरू कर देता है।

विचार एक विराम बनाता है, और ऊर्जा धीमी हो जाती है।

लेकिन मैथुन में, अभ्यासी पूर्ण समर्पण में होता है - कोई मानसिक प्रतिरोध नहीं होता।

पर्यवेक्षक और अनुभव के बीच कोई अलगाव नहीं होता। पूर्ण अद्वैत भाव होता है। यह इसलिए क्योंकि जब तांत्रिक ने यिनयांग जैसा परम शक्तिशाली अलगाव खत्म कर दिया है, तो बाकि दुनियावी अलगाव तो खत्म हुए बिना रह ही नहीं सकते। मतलब जब यांग रूपी तांत्रिक को अपने से सबसे अधिक विरोधी या विपरीत यिन रूपी प्रेयसी भी अपने से अनजुदा महसूस हो रही है, तो ब्रह्मांड में अन्य कुछ भी उससे अनजुदा नहीं रह सकता। मतलब वह दुनिया का सर्वोत्तम अद्वैत अनुभव करता है। यह अलग बात है कि परमात्मानुभव रूपी अद्वैत उससे और एक कदम ऊपर है। पर दोनों सबसे निकट हैं।

मन आनंद से इतना अभिभूत होता है कि प्रवाह को बाधित नहीं कर सकता।

परिणामस्वरूप, ऊर्जा आज्ञा को बायपास करती है और सीधे सहस्रार में चली जाती है।

यही सबसे बड़ा रहस्य है कि मैथुन एक सीधे मार्ग के रूप में क्यों काम करता है: कोई विचार नहीं = कोई रोक बिंदु नहीं।

अकेले अभ्यास में ऐसा क्यों नहीं होता?

एकल अभ्यास में, ऊर्जा प्रत्येक चक्र से धीरे-धीरे आगे बढ़ती है, जहाँ रुकावटें होती हैं, वहाँ रुक जाती है। मैथुन में, सभी चक्र एक साथ उत्तेजित होते हैं, इसलिए उन्हें एक-एक करके

सक्रिय करने की आवश्यकता नहीं होती है। क्षण की तीव्रता ऊर्जा को ऊपर की ओर धकेलती है, जिसे अकेली श्वास साधना से नहीं किया जा सकता।

संक्षेप में: एकल अभ्यास चरणों का पालन करता है। तांत्रिक मैथुन सीधे गंतव्य तक पहुँचता है।

परम सूत्र: तंत्र + क्रिया= स्थिरता

जबकि तांत्रिक मैथुन ऊर्जा को प्रज्वलित करने और उसे सहस्रार तक भेजने का सबसे तेज़ तरीका है, इसकी सीमाएँ हैं:

यदि शारीरिक थकावट होती है, तो ऊर्जा गिरती है। यदि स्खलन होता है, तो प्रक्रिया रीसेट हो जाती है। यदि किसी का मानसिक ध्यान भटक जाता है, तो ऊर्जा नष्ट हो जाती है।

इसलिए सबसे टिकाऊ तरीका है तंत्र को क्रिया योग के साथ मिलाना:

चरण 1: आधार पर तीव्र ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए तंत्र का उपयोग करें। चरण 2: ऊर्जा को परिष्कृत और स्थिर करने के लिए एक ध्यान छवि को आरोपित करें। चरण 3: क्रिया श्वास का उपयोग करके इसे सहस्रार में स्थायी रूप से बनाए रखें और ऊपर उठाएँ। चरण 4: ऊर्जा को गिरने देने के बजाय, इसे दैनिक जीवन में सूक्ष्म श्वास जागरूकता के माध्यम से प्रसारित करें।

यह ऊर्जा हानि को रोकता है और जागृत अवस्था को लगातार अभ्यास के बिना भी हफ्तों तक स्थिर रहने देता है।

अंतिम विचार: एक शॉर्टकट, लेकिन एक कीमत के साथ

तांत्रिक मैथुन सहस्रार तक पहुँचने का सबसे तेज़ तरीका है, लेकिन इसके लिए सटीकता की आवश्यकता होती है। अगर सही तरीके से किया जाए, तो ऊर्जा निचले चक्रों पर रुके बिना तुरंत ऊपर उठती है। लेकिन अगर भौतिक सीमा पार हो जाती है, तो ऊर्जा वापस नीचे गिरती है, जिसके लिए एक और चक्र की आवश्यकता होती है।

इसलिए असली महारत यह जानने में निहित है कि कब रुकना है, कब ऊपर उठना है, और अभ्यास से परे जागृत अवस्था को कैसे बनाए रखना है।

आखिरकार, ऊर्जा का आरोहण केवल तकनीक के बारे में नहीं है - यह संतुलन, जागरूकता और एकीकरण के बारे में है।

सहज जागृति: जागरूकता, चक्रों और ज्ञानोदय का स्वाभाविक प्रकटीकरण

शुरू से ही, मैंने अपने प्रयासों को कभी संघर्ष के रूप में नहीं देखा। सब कुछ स्वाभाविक रूप से हुआ, नदी की तरह बहता हुआ, बिना किसी बल के खुद को आकार देता हुआ। दुनिया को त्यागने के विचार ने मुझे कभी आकर्षित नहीं किया; बल्कि, मैंने देखा कि कैसे जीवन ही कई क्षणों में त्याग जैसा लगता था।

प्रयास से परे विकास को समझना

समय के साथ, प्रयास और गैर-प्रयास के बीच का अंतर मिट गया। आध्यात्मिक प्रगति कभी भी जोर लगाने के बारे में नहीं थी; यह अनुमति देने के बारे में थी। मतलब स्वतः स्फूर्त आध्यात्मिक विकास का केवल समर्थन भर किया, उसका कभी विरोध नहीं किया। फूल स्वतः खिलने दिया। ध्यान जीवन से अलग नहीं था; जीवन ही ध्यान बन गया। जब ऊर्जा उच्च चक्रों में थी, तो सब कुछ सहज लगता था, लेकिन जब यह स्थानांतरित हुई, तो दुनिया के साथ जुड़ाव बढ़ गया। इसे नियंत्रित करने के बजाय, मैंने अपनी जागरूकता को सभी चक्रों के माध्यम से घुमाया, जिससे संतुलन अपने आप हो गया। मतलब मैं किसी एक चक्र की साधना में महीनों तक नहीं लगा रहा बल्कि सभी चक्रों की साधना एकसाथ करता रहा, जिससे मेरी दुनियादारी का हरेक क्षेत्र संतुलित बना रहा। और न ही मैं ऊर्जा को हमेशा उच्च चक्रों में स्थापित करने के लिए लालायित रहा।

सभी चक्रों को संतुलित करने और पोषण देने का यांत्रिक तरीका नहीं बल्कि दार्शनिक तरीका

यहाँ ध्यान देने वाली मुख्य बात यह है कि मैंने एक अनूठी और तात्कालिक विधि के माध्यम से सभी चक्रों को संतुलित करने और पोषण देने के लिए अपनी जागरूकता को विशेष तरीके से सभी चक्रों में घुमाया। यह कुंडलिनी योग के माध्यम से किए गए यांत्रिक तरीकों से नहीं था। मुझे अपनी समझ के लिए इसे थोड़ा विस्तार से बताने दें। आम तौर पर कुंडलिनी योग में क्या होता है कि एक विशेष चक्र पर बलपूर्वक एकाग्रता लागू की जाती है। इसे मजबूत करने की आवश्यकता होती है। यह उस चक्र पर ध्यान छवि या बीज मंत्र या रंग या अनाज या सभी के चिंतन की मदद से किया जाता है। ऐसा करते समय एक विशेष प्रकार की सांस बहती है जो उस चक्र पर प्राण के प्रवाह को केंद्रित करने में मदद करती है। यदि यह कुंभक के साथ किया जाता है तो शुद्ध प्राण सांस की मदद के बिना ही उस चक्र में प्रवाहित होता है। इस पद्धति का दोष यह है कि इसे केवल बैठे हुए ध्यान के दौरान ही ठीक से लागू किया जा सकता है, सांसारिक काम के दौरान नहीं। मैं काम के दौरान और सांसारिक उलझनों के दौरान होलोग्राफिक शरीरविज्ञान दर्शन पर चिंतन करता था, खासकर जब मुझे अपने अंदर किसी भी भावनात्मक असंतुलन का प्रवेश महसूस होता था। इससे सांस की एक अजीब सी गैस्प पैदा होती थी जिसके बाद उसका विशेष, धीमा और नियमित प्रवाह होने लगता था। इसका मतलब है कि वह अजीब सी सांस या गैस्प उस अजीब सी भावना से संबंधित मेरे चक्र पर प्राण को निर्देशित करती थी। उदाहरण के लिए, अगर मैं सड़क

पर किसी ट्रैफ़िक के कारण किसी प्यारे कुत्ते को दबा हुआ देखता हूँ, तो मेरे मन में दया की भावना प्रबल हो जाती है। इसे नियंत्रित करने के लिए, अगर मैं अपने पूरे शरीर को एक बार देखता हूँ, तो मेरे अवचेतन में मौजूद शरीरविज्ञान दर्शन अपने आप लागू हो जाता है। कभी-कभी थोड़ा गहराई से सोचने की ज़रूरत होती है। इससे मेरी अतिरंजित भावना पर काबू पाया जा सकता है और मेरे द्वारा एक अजीबोगरीब और नियमित साँस लेना भी शुरू हो जाता है जो मेरे हृदय या अनाहत चक्र की ओर प्राण के प्रवाह को निर्देशित करती है। इससे भावना मेरी चेतना पर निशान छोड़े वगैरह ही शांत हो जाती है। इसका मतलब है कि यह दर्शन दो स्तरों पर एक साथ काम कर रहा था, एक मनोवैज्ञानिक स्तर पर मेरी भावना को नियंत्रित कर रहा था और दूसरा शारीरिक स्तर पर उस चक्र को प्राण ऊर्जा प्रदान करके जो उस भावना का मूल स्थान है। मैं देखता हूँ कि इससे अधिकतर बार साँस लेना छाती से होता है। यह प्राण को छाती पर केंद्रित करता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हृदय हर उस गहरी भावना का अभिन्न अंग है जो बांधने की कोशिश करती है। इसीलिए हृदय की गाँठ को सबसे बड़ी गाँठ माना जाता है और इसका खुलना आत्मज्ञान के बराबर माना जाता है। हृदय शरीर का हृदय या केंद्र है। हृदय को जीतो, संपूर्ण को जीतो। दरअसल, भावनाओं को संभालने के लिए, साँस को जितना संभव हो उतना धीमा करने की आवश्यकता होती है। इससे प्राण को ज़रूरतमंद चक्र तक अपने प्रवाह को ठीक से नियंत्रित करने में मदद मिलती है। उलझन या काम के बोझ या तनाव से भरे व्यस्त या मल्टी टास्किंग वाले सांसारिक जीवन में साँस तेज़ और भारी चलती है ताकि शरीर में सभी चक्रों को एक साथ पोषण देने के लिए प्राण को सांस की गति के साथ तेज़ी से ऊपर और नीचे वितरित किया जा सके। इसका मतलब है कि प्राण साँस की गति से बंधा रहता है। लेकिन विशेष परिस्थितियों में जब कोई विशिष्ट चक्र अपनी विशिष्ट भावना से अतिभारित होता है, तो सांस को रोकने या धीमा करने की आवश्यकता होती है ताकि सांस से मुक्त प्राण को ज़रूरतमंद चक्र तक प्रचुर मात्रा में निर्देशित किया जा सके। इसका मतलब है कि सांस को धीमा करना भी इन भावनात्मक ज़रूरतों को संभाल सकता है।

शरीरविज्ञान दर्शन: प्राकृतिक प्रवाह की कुंजी

शरीरविज्ञान दर्शन के माध्यम से एक महत्वपूर्ण अहसास हुआ - आध्यात्मिक विकास में शरीर की भूमिका को समझना। इस ज्ञान ने मुझे यह पहचानने में मदद की कि कैसे ऊर्जा, जागरूकता और शरीर स्वाभाविक रूप से संरेखित होते हैं। इसका मतलब है कि जैसा कि ऊपर के पैराग्राफ में बताया गया है कि कैसे शरीर के बारे में जागरूकता ने प्राण या ऊर्जा को सांस से मुक्त करने में मदद की और इससे ज़रूरतमंद चक्र पर बेहतर ध्यान केंद्रित करने में मदद की। शारीरिक जागरूकता को परिष्कृत करने से, गहरे तनाव सहजता से खत्म हो गए। परिष्कृत करने का मतलब है आसक्ति या लालसा को छोड़ना। आम दुनियादारी में तो शरीर को आसक्ति के साथ देखा जाता है, पर इस पर दार्शनिक दृष्टि देने से इससे आसक्ति नहीं होती। सांसारिक उलझनों ने प्रतिरोध के माध्यम से नहीं, बल्कि स्पष्ट धारणा के माध्यम से अपनी पकड़ खो दी। इसका

मतलब है कि इसने दुनिया से बचने का निर्देश नहीं दिया बल्कि दुनिया की धारणा को बेहतर बनाया जिससे दुनिया से अलग रहने में मदद मिली। मैंने देखा कि किसी भी चक्र से जुड़ी सांसारिक आसक्ति उस चक्र पर ध्यान लगाने मात्र से समाप्त हो सकती है। हालाँकि यह बैठे हुए ध्यान सत्र के दौरान बेहतर तरीके से किया जा सकता है। इस दर्शन की समझ ने अलगाव या डिटैचमेंट को मजबूर करने की आवश्यकता को समाप्त कर दिया - यह अपने आप हुआ। अलगाव को मजबूर करने से सांसारिक जीवन पटरी से उतर सकता है। निरंतरता ही एकमात्र आवश्यकता थी। हाँ, प्राकृतिक अलगाव समय, निरंतरता और धैर्य की मांग करता है।

जब मुक्ति लक्ष्य नहीं है

मैंने एक बार सोचा था कि मुक्ति ज्ञानोदय की झलकियों के शिखर की तरह ही आनंदमय होगी। लेकिन केवल कुंभक के माध्यम से, मैंने देखा कि अकेले में मुक्ति ज्ञानोदय के आनंद के समान आकर्षण नहीं रखती है। इसने मेरे दृष्टिकोण को बदल दिया। सृष्टि मौजूद है क्योंकि ज्ञानोदय या भौतिक अर्थात संवेदनात्मक अनुभवों का शिखर ही इसका अंतिम या शीर्ष अनुभव है, न कि मुक्ति। यदि ज्ञानोदय अंतिम सांसारिक लक्ष्य नहीं होता तो हर कोई ध्यान में बैठता, सांसारिक आकर्षण में खोने के बजाय प्रत्यक्ष मुक्ति पाने के लिए बंद आँखों से विचारों को देखता रहता। इससे दुनिया इतनी विविध, सुंदर और विकासशील न होती।

मैं सब कुछ हासिल करने का दावा नहीं करता। मैं अभी भी आगे बढ़ता हूँ, अपनी ग्राउंडिंग तकनीकों को परिष्कृत करता हूँ, उच्च और निम्न चक्रों के बीच संतुलन सुनिश्चित करता हूँ। क्योंकि दुनिया एक अविश्वसनीय जादूगर है जो किसी को भी फँसाने में सक्षम है, इसलिए मैं सतर्क रहता हूँ। मैं इसका विरोध नहीं करता - मैं बस इस पर भरोसा नहीं करता।

कोई अंतिम गंतव्य नहीं

कोई अंतिम लक्ष्य नहीं है, कोई उपलब्धि नहीं है जिसे पकड़ना है। मैं परिस्थितियों की माँग के अनुसार जीवन के साथ सकारात्मक रूप से जुड़ा रहता हूँ, बिना चिपके हुए। कभी-कभी, जब ऊर्जा अधिक होती है, तो प्रयास गैर-प्रयासों की तरह लगते हैं। वैराग्य की भावना या शरीरविज्ञान दर्शन की भावना भी ऊर्जा की खपत करती ही है। ऊर्जा के बिना कोई भावना नहीं होती। अन्य समय में , समायोजन की आवश्यकता होती है। इसका मतलब है कि इसके निष्पादन के लिए उपलब्ध ऊर्जा के अनुसार ध्यान तकनीक को लागू करना। मतलब अगर ऊर्जा कम है तो उच्च चक्रों की बजाय निम्न चक्रों पर ध्यान लगने दें। यह सब प्राकृतिक लय का हिस्सा है।

मैंने जो मुख्य अंतर्दृष्टि प्राप्त की है:

सच्ची वैराग्य भावना स्वाभाविक रूप वाली जागरूकता के माध्यम से आती है, न कि जबरन त्याग के माध्यम से। स्वाभाविक रूप वाली जागरूकता मतलब दुनिया को उसके असली स्वरूप में देखना, उसमें रागद्वेष वाले रंग नहीं लगाने हैं, उसे निरंजित रखना है, उसे साक्षीभाव से देखना है। ऐसे दृष्टि शरीरविज्ञान दर्शन से आसानी से पैदा होती है। जबरन त्याग से भी यह अहंकार आता है कि मैंने त्याग किया है।

चक्रों में शुद्ध जागरूकता को घुमाने से सांसारिक गांठें आसानी से सुलझ जाती हैं। शुद्ध जल से अशुद्धि तो धुलती ही है।

शरीरविज्ञान दर्शन महत्वपूर्ण है - यह शारीरिक और आध्यात्मिक संतुलन को सहजता से जोड़ता है।

केवल मुक्ति ही अंतिम शिखर नहीं है - आत्मज्ञान ही सृष्टि का वास्तविक आकर्षण है।

कुछ भी प्राप्त नहीं करना है - बस साक्षी होना है।

मैं आगे बढ़ना जारी रखता हूँ, परिष्कृत करता हूँ, सीखता हूँ, और खुला रहता हूँ। कोई संघर्ष नहीं है , केवल जागरूकता का स्वाभाविक प्रकटीकरण है।

सविकल्प से निर्विकल्प तक का मार्ग: पारलौकिकता और संसार के बीच संतुलन

दो बार, मैंने दस सेकंड की झलक जागृति के माध्यम से सर्वोच्च को छुआ - एक बार किशोरावस्था में स्वप्न-अवस्था में, बाद में तांत्रिक-कुंडलिनी साधना के माध्यम से। दोनों बार, 'मैं' की भावना विलीन हो गई, और समाधि की शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार, ध्यान करने वाला, ध्यान का विषय और ध्यान सभी एक हो गए। मेरी आँखों के सामने आकर्षक प्राकृतिक दृश्य पूर्ण आत्मा से एकाकार हो गए, अर्थात पृष्ठभूमि के रूप में असीम आत्म-चेतना थी- इसे सविकल्प समाधि भी कहा जा सकता है।

केवल कुंभक में, यह आत्मानुभव मृत्यु जैसा महसूस हुआ, हालाँकि डरावना नहीं था- अचेतन भी नहीं था, उसके बाद कोई स्मृति नहीं, बस क्षणभंगुर विचारों का कभी-कभार उभरना जो तुरंत ध्यान चित्र द्वारा प्रतिस्थापित हो रहे थे। वह अनुभव इसलिए अचेतन नहीं था क्योंकि उसमें अपने होने का अर्थात अपने अस्तित्व का अनुभव हो रहा था। अचेतन या जड़ को तो अपने अस्तित्व की भी अनुभूति नहीं होती। अगर होती है तो वह अंधकार से भरी होती है जैसे शराब के गहरे नशे में। मुझे तो उस शून्य में भी कोई सुपरनोवा विस्फोट के जैसा प्रकाश महसूस नहीं हुआ। पर साथ में उसमें जड़ता वाला अंधकार भी नहीं लग रहा था। बेशक उसमें भौतिक प्रकाश के जैसी कोई अनुभूति नहीं थी, पर उसमें आनंद, तनावहीनता और शांति थे। हो सकता है इन्हीं गुणों को प्रकाश के रूप में दिखाया गया, नहीं तो इन अभौतिक गुणों को भोली जनता के समक्ष कैसे प्रस्तुत किया जाए। यह भी हो सकता है यह अनुभव धीरे धीरे स्वच्छ और गहरा होता जाए।स्मृति लोप इस अर्थ में कि यह अवस्था कुछ भी भौतिक गुण प्रकट नहीं करती थी जिसे याद किया जा सके। इसके बजाय, यह केवल शून्य को प्रकट करती थी। लेकिन यह आश्चर्यजनक है कि कैसे यह शून्य , आकर्षण से भरी दुनिया का मूल हो सकता है। संभवतः, संसार शून्य से विकसित हुआ ताकि ईश्वर का अपना आत्म-रूप अर्थात जीव इसका पूर्ण अनुभव कर सके। फिर, सविकल्प समाधि के माध्यम से अनुभव के शिखर पर पहुँचने के बाद, आत्मज्ञान या जागृति में परिणत होकर, यह निर्विकल्प समाधि के माध्यम से शून्य में वापस लौटता है, जो अंतिम मोक्ष की ओर ले जाता है। अपने आत्म-रूप के माध्यम से, शून्य को स्वयं सृष्टि का अनुभव करने की मान्यता मिलती है - हालाँकि वास्तव में ईश्वर द्वारा इसका अनुभव किए बिना ही। इसका संसार को अनुभव करने वाला रूप जीव बन जाता है।

मेरे अनुभव का अर्थ है कि सविकल्प समाधि धीरे-धीरे निर्विकल्प समाधि में विलीन हो रही थी। निर्विकल्प का शाब्दिक अर्थ है "कोई विचार नहीं", जिसका अर्थ है कि ध्यान चित्र के बारे में भी विचार नहीं है, सविकल्प के विपरीत, जहाँ यह अभी भी बना हुआ है।

फिर भी, यदि निर्विकल्प समाधि के बाद कुछ भी याद नहीं रहता है, तो इसका प्रभाव आगे कैसे बढ़ता है? गहरी नींद की तरह, यह एक छाप छोड़ता है - कुछ बदलता है, सचेत प्रयास के बिना

धारणा को परिष्कृत करता है। लेकिन अकेले निर्विकल्प सांसारिक जीवन को बनाए नहीं रखता है ; इससे उत्पन्न पूर्ण वैराग्य व्यक्ति को विच्छिन्न, यहाँ तक कि सुस्त बना सकता है।

पारलौकिकता और संसार में संतुलन

केवल कुंभक निर्विकल्प का एकमात्र सीधा प्रवेशद्वार प्रतीत होता है। यह सबसे वैज्ञानिक विधि है , जो सहजता से विचारशून्यता को प्रेरित करती है। लेकिन इसे इच्छानुसार उपयोग करना अभी भी एक चुनौती है। कभी-कभी, यह स्वाभाविक रूप से हो सकता है, लेकिन मैं जब भी आवश्यकता हो, इसे सक्रिय करने में योग्यता चाहता हूँ। कई राजयोग समर्थक लोग सीधे मन के माध्यम से निर्विकल्प समाधि प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, लेकिन मुझे लगता है कि यह कठिन है। हालाँकि इसे प्राप्त करने पर, केवल कुंभक अपने आप स्थापित हो जाता है क्योंकि मन और श्वास दोनों जुड़े हुए हैं। यदि केवल कुंभक सीधे श्वास रोककर मन को रोककर निर्विकल्प समाधि उत्पन्न करता है, तो सीधे मन रहित निर्विकल्प समाधि उत्पन्न करने से भी श्वास रुककर केवल कुंभक स्थापित होता है। हालाँकि केवल कुंभक एक अद्भुत स्विच की तरह लगता है जो तुरंत मन को बंद कर देता है और इसकी बिजली आपूर्ति काट देता है। लेकिन मन को नियंत्रित करने के प्रयास किए बिना केवल कुंभक पर बहुत अधिक निर्भर रहना भी बहुत अधिक यांत्रिक और कम प्रभावी लगता है। इसलिए दोनों प्रकार के प्रयास करना सबसे प्रभावी और कुशल लगता है। मैंने भी यही किया, यानी शरीरविज्ञान दर्शन के माध्यम से मन को वश में रखना और योग के माध्यम से सीधे केवल कुंभक का प्रयास करना।

वर्तमान में, मेरे अभ्यास में शांभवी मुद्रा की सहायता से रीढ़ की हड्डी से गहरी सांस लेना शामिल है, इससे सांस या प्राण पीठ से ऊपर चढ़ता हुआ आज्ञा और सहस्रार चक्र तक जाता हुआ महसूस होता है, आनंद के साथ। साथ में दुनिया में अति व्यस्त रहते हुए भी मुझे पहले की तरह भरपूर ऊर्जासाधना करते हुए हासिल हुआ। इसका मतलब है कि कुंडलिनी योग यथावत जारी रहना चाहिए। कई बोलते हैं कि निर्विकल्प के लिए गहरी साधना का प्रयास छोड़कर इसे अपने आप होने देना चाहिए। मैं इससे सहमत नहीं हूं। बिना प्रयास के कुछ नहीं मिलता। यहां तक कि मैं अपनी साधना के बीच में आ रहे प्रतिरोधों का डट कर और मानवता के साथ विरोध कर रहा था और अपनी साधना को जारी रख रहा था। हालांकि उलझनों से तो बच ही रहा था नहीं तो अगर उसमें फंसता तो कैसे साधना के लिए शक्ति बचती। फिर भी अपनी उपलब्ध शक्ति का अंदाजा तो होना ही चाहिए और उसका अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। मान सम्मान या मान्यता की भी चाह नहीं रखनी चाहिए क्योंकि मान्यता चेतना को बाहर की ओर खींचती है, जबकि वैराग्य इसे भीतर की ओर मोड़ने की अनुमति देता है। जो अपने को सही लगे वही सही मान्यता है। दूसरों की बजाय हम खुद अपने बारे में ज्यादा ज्ञान रख सकते हैं। हां राय या जानकारी तो सबसे लेनी चाहिए पर अंतिम निर्णय तो हमारे खुद के हाथ में ही होना चाहिए। कई बोलते हैं कि निर्विकल्प समाधि के लिए ध्यानचित्र को भी छोड़ देना चाहिए। मैं इससे भी सहमत नहीं हूं। क्योंकि अगर निर्विकल्प न

मिला तो कम से कम सविकल्प समाधि में तो बने रहेंगे। इसके बिना तो सविकल्प से भी गिरकर दुनियावी मोहमाया के चंगुल में फंस जाएंगे। इसलिए ध्यानचित्र का आश्रय तो हमेशा ही लेना चाहिए। हालांकि यह भी दुनिया की तरह झूठा है पर दुनिया से तो कहीं ज्यादा सच्चा है। केवल कुंभक एक स्विच की तरह लगता है, हालांकि यह भी सही परिस्थितियों द्वारा समर्थित या सहायित होता है।

अंतिम ट्रिगर कूटस्थ में मेरी ध्यान छवि का गहन चिंतन प्रतीत होता है, इस हद तक कि मैं सांस को पूरी तरह से अनदेखा कर देता हूं, इसे इच्छानुसार चलने देता हूं। जैसे ही क्षणभंगुर विचार फिर से प्रकट होते हैं, उन्हें तुरंत ध्यान छवि द्वारा हटा दिया जाता है। सांस को अनदेखा करने का मतलब है कि प्राण को तनावपूर्ण शरीर को ऊर्जा प्रदान करने के लिए सांस से अलग होकर चलने की स्वतंत्रता है। यद्यपि मैंने पूरे दिन शरीरविज्ञान दर्शन का बीच-बीच में चिंतन करके अपने आपको संतुलित रखा था और सांसारिक द्वंद्व में खो जाने से बचा था। इसलिए मेरा वह तनाव भी साधारण नहीं बल्कि आनंदमय और अद्वैतपूर्ण तनाव था।

ऐसा लगता है कि निर्विकल्प समाधि को पूरी तरह से स्थिर करने के लिए, ध्यान की छवि को भी विलीन होना चाहिए। अभी, मैं असहाय रूप से इसका समर्थन कर रहा हूँ, अपने आपको क्षणभंगुर विचारों में खोने से रोकने के लिए इसका एक हुक के रूप में उपयोग कर रहा हूँ। यह एक सतत परिशोधन है, जो स्वाभाविक रूप से सामने आ रहा है। मैं इसमें जल्दबाजी नहीं करता; मैं जागरूकता को अपने आप गहरा होने देता हूँ।

मुख्य अनुभूतियाँ

सविकल्प समाधि निर्विकल्प की पूर्ववर्ती है और सारी सृष्टि की प्रेरक या नियंत्रक लगती है - इसे अनुभव करने के बाद ही आदमी दुनिया से पूर्णतः संतुष्ट हो पाता है और उसकी दुनिया निर्विकल्प में विलीन हो जाती है।

शून्यता का प्रत्यक्ष अनुभव भी किया जा सकता है, लेकिन इसे सविकल्प समाधि के बाद ही पूरी तरह से समझा जा सकता है। मुझे लगता है कि सविकल्प समाधि और उससे जुड़ी जागृति के अनुभव के बिना निर्विकल्प लगने से व्यक्ति को दुनिया में अनुभव करने या आनंद लेने के लिए कुछ छूटा होने जैसा महसूस हो सकता है। इसलिए निर्विकल्प की शून्यता को उसके द्वारा उचित सम्मान नहीं दिया जाता, जिससे वह सांसारिक आकर्षण से आकर्षित होकर बाहर की ओर खिंचा चला जाता है। इस तरह शून्यता ज्यादा समय नहीं टिकती।

केवल कुंभक निर्विकल्प के लिए सबसे वैज्ञानिक प्रवेशद्वार है, जो इसे सहजता से प्रेरित करता है।

संतुलन महत्वपूर्ण है - अत्यधिक वैराग्य सांसारिक वियोग की ओर ले जा सकता है। हाँ, निर्विकल्प समाधि में अचानक और बहुत अधिक लिप्तता व्यक्ति को दुनिया से बाहर कर सकती है। इसलिए शरीरविज्ञान दर्शन के साथ स्थिर और अद्‌वैत दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है।

शरीरविज्ञान दर्शन पारलौकिकता और व्यावहारिक जीवन को जोड़ता है, दुनियादारी से अत्यधिक वापसी को रोकता है।

निर्विकल्प भाव स्मृति को भंग कर देता है, फिर भी यह एक छाप छोड़ता है जो स्वाभाविक रूप से धारणा को परिष्कृत करता है। स्मृति को भंग करने का मतलब पुराने कर्मों के संस्कारों को शिथिल करना है।

यह यात्रा उच्च अवस्थाओं का पीछा करने के बारे में नहीं है, बल्कि स्वतंत्र रूप से जीने के बारे में है - जागरूकता में निहित, जीवन में व्यस्त, फिर भी इसके तूफानों से अछूती।

सविकल्प से निर्विकल्प तक: परमानंद से परे परम मुक्ति का मार्ग

निर्विकल्प समाधि सीधे उत्पन्न हो सकती है, जैसे कि केवल कुंभक, गहरी नींद जैसी अवस्था या अचानक अनुग्रह या शक्तिपात जैसे दुर्लभ मामलों में सविकल्प को दरकिनार करते हुए। जबकि पारंपरिक मार्ग क्रमिक अवशोषण पर जोर देते हैं, कुछ जागृति इस चरण को पूरी तरह से छोड़ देती है, मतलब सीधे निराकार में डूब जाती है। केवल कुंभक के साथ मेरा अनुभव इस संभावना की पुष्टि करता है, जहाँ किसी संरचित या संक्रमित प्रयास की आवश्यकता नहीं थी। हालाँकि, स्थिरीकरण महत्वपूर्ण है, चाहे कोई क्रमिक का या प्रत्यक्ष मार्ग का अनुसरण करे।

लेकिन मेरी निर्विकल्प समाधि की झलक में मेरी सविकल्प समाधि और उससे जुड़ी जागृति झलक के समान अनंत आनंद और प्रकाश क्यों नहीं था?

मेरी सविकल्प समाधि में मुख्यतः जागृति की झलक में अनंत या परम या सुपर सेक्स या परम यौन प्रकार का आनंद था, वह परम प्रकाश था जो अनुभवात्मक है, और भौतिक चकाचौंध से बिल्कुल अलग था, और पूर्ण एकता या अद्वैत- जो शब्दों से परे एक दिव्य अनुभव था। यह मुझे चेतना के अस्तित्व के शिखर की तरह महसूस हुआ, अर्थात अनंत के साथ पूर्ण विलय की तरह। पर फिर भी कुछ पाने की कसक बाकी थी। शायद यह निर्विकल्प समाधि को पाने की ही कसक थी। इसके विपरीत, केवल कुंभक द्वारा लगाई गई क्षणभंगुर निर्विकल्प समाधि में न तो प्रकाश था, न अंधकार, न परमानंद था, न शून्यता। यह शब्दों से परे कुछ था। ऐसा लग रहा था जैसे मैं गहरी नींद में था और बीच-बीच में स्वप्न जैसे क्षणभंगुर विचार आ रहे थे। लेकिन एक खास बात यह थी कि मैं इस अवस्था के प्रति सजग या जागरूक था। यह सिर्फ अपने बारे में शुद्ध जागरूकता थी, अन्य किसी के बारे में नहीं, मन के बारे में भी नहीं। अगर जागरूकता थी तो यह अपने आप में स्पष्ट है कि इसमें आनंद था। क्योंकि जागरूकता या सत्ता के साथ आनंद तो रहता ही है। और जहां सत्ता और आनंद होते हैं, वहां ज्ञान भी अवश्य रहता है। आज के सूचना के युग में भी देखा जाता है कि ज्ञान प्राप्ति से आदमी को सत्ता यानि उपलब्धि भी मिलती है और आनंद भी। इसीलिए परमात्मा को सच्चिदानंद भी कहते हैं। लेकिन मुझे उसमें सविकल्प समाधि की तरह प्रकाश और आनंद से भरा कोई अनुभव या सांसारिक, भौतिक या मानसिक अनुभवों का चरम नहीं मिला। हालाँकि इसमें संतुष्टि थी। संतुष्टि का मतलब ही है कि इसमें सब कुछ समाहित है। इसका मतलब है कि यह निर्विकल्प समाधि थी जो धीरे-धीरे विकसित हो रही थी। गहरी नींद में, आत्म जागरूकता भी नहीं रहती। अब मुझे इसका कारण समझ में आया। सविकल्प में, अभी भी एक सूक्ष्म पर्यवेक्षक है, एक परिष्कृत धारणा है जो आनंद और चमक को प्रकट करने में मदद करती है। साथ ही एक परिष्कृत न्यूरोकेमिस्ट्री है जो आनंद पैदा करने वाले रसायनों को छोड़ सकती है। इसका मतलब यह है कि यह पूरी तरह से शुद्ध आत्मा का आनंद नहीं हो सकता, बल्कि आत्मा की स्वयंजागरूकता के साथ न्यूरोकेमिकल्स का खेल हो सकता है। निर्विकल्प में वह खेल भी विलीन हो जाता है। केवल कुंभक की प्राणहीन अवस्था में मन न रहने

से आनंद को बनाने वाले रसायन भी मस्तिष्क में नहीं बन पाते। तब केवल आत्मा और उसका स्वाभाविक आत्मबोध और आनंद ही बचता है। साक्षी होने वाला और साक्षी करने वाला कोई नहीं रहता, कोई द्वैत नहीं रहता, केवल शुद्ध अस्तित्व ही बचता है। केवल मानसिक रचना या अहंकार ही साक्षी बनने और साक्षी करने का काम कर सकता है। शुद्ध आत्मा शून्य है जो अपने अलावा किसी और चीज का साक्षी नहीं बन सकता और न ही साक्षी कर सकता है, यानी खुद को ही सीधे जानना इसका एकमात्र धर्म है। यह कोई अनुपस्थिति नहीं है, न ही यह कुछ ऐसा है जिसे वर्णित किया जा सके - यह बस है।

फिर भी, अजीब बात है कि इसका बाद का प्रभाव गहरा है। सविकल्प का आनंद फीका पड़ जाता है, लेकिन निर्विकल्प एक मौन उपस्थिति छोड़ जाता है जो आती या जाती नहीं है, बस रहती है। एक अजीब सा अहसास हमेशा और जन्म जन्मांतरों तक या जब तक इसमें पूर्ण स्थिति नहीं हो जाती रहता है कि कुछ चैन से भरा हुआ शून्य सा है जो हर तरह से मेरी मदद कर रहा है और मुझे अपनी तरफ खींच रहा है। मुझे यह अहसास जन्म से लेकर ही था। इसका मतलब यह भी हो सकता है कि मुझे पहले किसी जन्म में निर्विकल्प समाधि की झलक मिली हो पर उसकी पूर्ण प्राप्ति न हुई हो। आत्मा की सुंदरता देखने की चीज नहीं है, यह जीने या महसूस करने की चीज है।

बहुत से लोग कहते हैं कि सविकल्प प्राप्त करने के बाद, निर्विकल्प प्राप्त करने के लिए प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि प्रयास गौण है। बल्कि इसका अर्थ यह है कि सविकल्प समाधि के बाद व्यक्ति अपने आप ही निर्विकल्प समाधि की ओर अग्रसर हो जाता है, क्योंकि सब कुछ प्राप्त कर लेने या संसार के शिखर को छू लेने के बाद संसार के प्रति चाहत या आसक्ति अपने आप ही समाप्त होने लगती है। लेकिन इसमें बहुत समय लग सकता है, कई जन्म भी लग सकते हैं। इसलिए इस प्राकृतिक प्रक्रिया को तेज करने के लिए निर्विकल्प के लिए भी प्रयास करना पड़ता है। साधना के रूप में जितना प्रयास करेंगे, उतनी ही जल्दी उसे प्राप्त करेंगे। निर्विकल्प के बाद भी मुक्ति के अंतिम द्वार सहज समाधि को प्राप्त करने के लिए प्रयास करने पड़ते हैं। किसी भी क्षेत्र और किसी भी स्थिति में प्रयास का महत्व कम नहीं होता।

ध्यान और वास्तविक समय की जागरूकता के बीच सूक्ष्म संतुलन

वर्षों से, मेरी आध्यात्मिक यात्रा गहन चिंतन, संरचित ध्यान और दैनिक जीवन में वास्तविक समय की जागरूकता के अनुप्रयोग द्वारा आकार लेती रही है। हालाँकि, सबसे गहन अनुभव दुनिया से दूर हटने से नहीं बल्कि सांसारिक जिम्मेदारियों के प्रवाह में जागरूकता को एकीकृत करने से आए हैं।

मैंने जो महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्राप्त की है, उनमें से एक यह है कि शरीर विज्ञान दर्शन (होलोग्राफिक शरीर का चिंतन) दुनियावी अराजकता के बीच भी विश्राम और स्पष्टता की स्थिति के लिए सीधे प्रवेश द्वार के रूप में कार्य कर सकता है। शरीर पर एक बार, उड़ती हुई या तुरंत नज़र डालना एक गहरी गैस्प या सांस को ट्रिगर करने के लिए पर्याप्त है, जिसके बाद धीमी गति से सांस लेना , क्षणिक राहत देता है। हालाँकि यह केवला कुंभक (सांस रहित अवस्था) नहीं है, यह सांस और ऊर्जा में एक सहज बदलाव है, जो जीवन की भागदौड़ के बीच संतुलन की एक झलक पेश करता है।

जागरूकता को बनाए रखने में जीवनशैली की भूमिका

मैंने महसूस किया है कि एक सात्विक, धीमी गति वाली जीवनशैली स्वाभाविक रूप से शरीर विज्ञान दर्शन का समर्थन करती है - चिंतन को सहज और निरंतर रहने देती है। दूसरी ओर, एक तेज़-तर्रार, राजसिक या तामसिक जीवनशैली जागरूकता को बनाए रखना कठिन बना देती है, और इसके लिए वास्तविक समय के चिंतन में लौटने के लिए जानबूझकर प्रयास करने की आवश्यकता होती है।

हालाँकि, आदर्श परिस्थितियों की प्रतीक्षा करने के बजाय, मैं अराजकता की परवाह किए बिना हर पल प्रयास करना पसंद करता हूँ, और यह सुनिश्चित करता हूँ कि सांसारिक ज़िम्मेदारियाँ अप्रभावित रहें। लेकिन ऐसा हमेशा नहीं होता। कई बार सांसारिक अराजकता जितनी अधिक होती है, बैठने का ध्यान सत्र उतना ही आसान, उत्थानशील और आनंदमय हो जाता है। हालाँकि एक शर्त यह है कि शरीरविज्ञान दर्शन का चिंतन सांसारिक अराजकता के भीतर ठीक से और गहराई से फिट होना चाहिए। इसका मतलब यह है कि ऐसा दिखना चाहिए कि कोई व्यक्ति सांसारिक अराजकता में गहराई से लिप्त रहते हुए भी आनंदमय और सुखपूर्ण ध्यान कर रहा है। ऐसा लगता है कि यह केवल शरीरविज्ञान दर्शन के साथ ही सबसे अच्छा संभव है। यह दृष्टिकोण पीछे हटने के बारे में नहीं है, बल्कि क्रिया के भीतर जागरूकता को एकीकृत करने के बारे में है।

संरचित ध्यान से सहज जागरूकता तक का विकास

अतीत में, मैंने स्थिरता विकसित करने के लिए संरचित ध्यान अभ्यास बनाए रखा। समय के साथ, यह ध्यान अभ्यास स्वाभाविक रूप से वास्तविक समय की जागरूकता में विस्तारित हो गया , जहाँ चिंतन दैनिक जीवन से अलग नहीं है।

इस बदलाव ने मुझे सिखाया कि:

संरचित ध्यान आधार प्रदान करता है, स्पष्टता और स्थिरता को गहरा करता है।

वास्तविक समय की जागरूकता सुनिश्चित करती है कि ये ध्यान संबंधी अंतर्दृष्टि अभ्यास सत्रों तक ही सीमित न रहें बल्कि जीवन जीने का एक तरीका बन जाए।

समय के साथ, संरचित ध्यान और वास्तविक समय का चिंतन एक दूसरे के पूरक बनने लगते हैं , जिससे एक सहज चक्र बनता है जहाँ किसी को भी आने के लिए मजबूर नहीं किया जाता है।

भले ही मेरा अभ्यास विकसित हो गया हो, लेकिन मैं अभी तक उस चरण तक नहीं पहुँचा हूँ जहाँ वास्तविक समय की जागरूकता पूरी तरह से सहज हो। अभी भी ऐसे क्षण हैं जहाँ इसे बनाए रखने के लिए सचेत जुड़ाव की आवश्यकता होती है। हालाँकि, समय के साथ आवश्यक प्रयास धीरे -धीरे कम हो गया है, जिससे चिंतन अधिक स्वाभाविक हो गया है। हालाँकि यह प्रयास एक आनंदमय खेल की तरह है, न कि एक उबाऊ बोझ की तरह। हाँ, इसे ठीक से बनाए रखने के लिए शरीर में जरूरी ऊर्जा की न्यूनतम मात्रा तो होनी ही चाहिए।

एक यात्रा अभी भी जारी है

सविकल्प समाधि सहित उच्चतर अवस्थाओं की झलक पाने के बावजूद, मैंने अभी तक निर्विकल्प समाधि का अनुभव नहीं किया है - जो पूर्ण विलय की अवस्था है। हालाँकि मैं यह भी मानता हूँ कि केवली कुंभक, जिसे बेशक मैने घंटों तक अनुभव किया है, फिर भी इसे और अधिक परिष्कृत करने की आवश्यकता है। इसे और अधिक स्वाभाविक रूप से आमंत्रित करने के लिए, मैं अब अपने क्रिया अभ्यास में रीढ़ की हड्डी से गहरी सांस लेने पर जोर देता हूँ, यह सुनिश्चित करते हुए कि ऊर्जा कार्य पहले की तरह जारी रहे लेकिन सांस पर अधिक ध्यान दिया जाए।

इस बिंदु पर, मैं अद्‌वैत जागरूकता के साथ एक जमीनी सामान्यता (नॉर्मल ग्राउंडिंग) की तलाश करता हूँ, जहाँ सांसारिक जीवन और बोध की गहरी अवस्थाओं के बीच संतुलन एक निरंतर संघर्ष नहीं बल्कि एक प्राकृतिक लय बन जाए। लक्ष्य पारलौकिकता में भागना नहीं है, बल्कि जीवन के साथ पूरी तरह से जुड़े रहते हुए एक स्थिर, जागृत उपस्थिति को बनाए रखना है।

मेरे अनुभव से, एक सत्य स्पष्ट हो गया है:

आध्यात्मिक विकास का मतलब जीवन से ध्यान को अलग करना नहीं है, बल्कि दोनों को एक दूसरे के पूरक होने देना है।

वास्तविक समय की जागरूकता विकसित की जा सकती है, यहाँ तक कि अराजकता के बीच भी , लेकिन इसके लिए निरंतर अभ्यास की आवश्यकता होती है।

सात्विक जीवनशैली स्वाभाविक रूप से जागरूकता का समर्थन करती है, लेकिन राजसिक या तामसिक स्थितियों में अभी भी प्रयास की आवश्यकता होती है। संरचित ध्यान गहराई प्रदान करता है, जबकि वास्तविक समय का चिंतन जीवन और अध्यात्म दोनों का एकीकरण सुनिश्चित करता है। जागरूकता की क्षणिक झलक भी समय के साथ जमा होती रहती है, जिससे निरंतर स्तर की जागरूकता और बाद में अधिक स्थायी आंतरिक परिवर्तन होता है। मैं अभी भी खोज , परिशोधन कर रहा हूं और सीख रहा हूँ। मेरा अभ्यास अभी तक परिपूर्ण नहीं है, लेकिन रास्ता स्पष्ट है: संरचित ध्यान और वास्तविक समय की जागरूकता के बीच संतुलन आध्यात्मिक गहराई और सांसारिक जुड़ाव दोनों को बनाए रखने की कुंजी है।

केवली कुंभक: मोक्ष तक पहुँचने के लिए प्राण, मन को शांत करने और कर्मों को जलाने की सर्वोत्तम विधि

मैं केवली कुंभक और मन और कर्म पर इसके गहरे प्रभावों पर विचार कर रहा हूँ। मैं देखता हूँ कि साँस को रोककर प्राण को शांत करना (केवल कुंभक) मन को शांत करता है, लेकिन मुझे आश्चर्य होता है—यह अवचेतन मन या गहरे छिपे हुए छापों (संस्कारों) को कैसे शांत करता है?

मैंने महसूस किया है कि सामान्य ध्यान केवल सतही मन को शांत करता है। गहरे ध्यान में भी , विचार कमज़ोर हो सकते हैं, लेकिन मन अवचेतन पृष्ठभूमि में कंपन करना जारी रखता है, और इच्छाओं, भय और पिछली छापों को संग्रहीत करता है। इससे मन की गहरी परतें, जहाँ संस्कार छिपे होते हैं, वे अछूती रहती हैं। लेकिन केवला कुंभक अलग लगता है—यह न केवल मन को शांत करता है, बल्कि इसे उसकी जड़ में ही रोक देता है।

केवल कुंभक अवचेतन मन तक कैसे पहुँचता है

मन और प्राण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अवचेतन (चित्त) में कर्म के निशान होते हैं और ये संस्कार केवल इसलिए जीवित रहते हैं क्योंकि प्राण गतिमान रहते हैं। ये संस्कार तेजी से और लगातार अपने से संबंधित विचारों का निर्माण करते रहते हैं। केवल कुछ स्थूल विचार ही हमारी चेतना में आते हैं, अधिकांश विचार सूक्ष्म होते हैं जिन्हें हम महसूस भी नहीं करते हैं। ये सभी विचार अवचेतन में इन संस्कारों को जीवित रखते हैं। यदि इसे बनाए रखने के लिए ऊर्जा का उपयोग नहीं किया जाता है तो समय के साथ सब कुछ फीका पड़ जाता है। संस्कारों के साथ भी ऐसा ही होता है। कर्म और उनसे संबंधित विचार उनसे जुड़े संस्कार बनाते हैं और संस्कार बदले में वही कर्म और संबंधित विचार पैटर्न बनाते रहते हैं। इस प्रकार दोनों एक-दूसरे को ऊर्जा प्रदान करते या मजबूत करते रहते हैं। केवल कुंभक के कुछ घंटों के दौरान भी, जब विचार और सूक्ष्म विचार शून्य हो जाते हैं, तो ये संस्कार काफी ताकत खो देते हैं। इसलिए हम एक स्थायी परिवर्तन महसूस करते हैं। यद्यपि पूर्ण उन्मूलन के लिए हो सकता है कि यह कारगर हो, लेकिन इसमें लगने वाला बहुत लंबा समय बहुत अव्यावहारिक लगता है। मुझे लगता है कि जागरण या झलक के कुछ सेकंड के बाद स्थायी रूपांतरण भी इसी घटना के कारण होता है। इसका मतलब है कि जागृति के पूर्ण मनहीनता के कुछ सेकंड भी सभी दबे हुए संस्कारों को कमजोर करने के लिए पर्याप्त हैं। जब प्राण गति करता है, तो अवचेतन में छोटे बड़े विचार उठते रहते हैं - जैसे समुद्र में छोटी बड़ी लहरें उठती रहती हैं। समुद्र यहां अवचेतन का पर्याय है और उसे हिलाने वाली हवा प्राण की।जब प्राण पूरी तरह से रुक जाता है, तो संस्कारों को सक्रिय करने के लिए कोई गति नहीं बचती। चूँकि संस्कार प्राण से अपनी ऊर्जा प्राप्त करते हैं, इसलिए वे अपना आवेश खो देते हैं और विलीन होने लगते हैं। यही कारण है कि केवल कुंभक की गहरी अवस्थाएँ शून्यता, स्थिरता या यहाँ तक कि निराकार जागरूकता जैसी लगती हैं। यह केवल मानसिक मौन नहीं है - यह कर्म या

संस्कार के वेग़ का अभाव है। विज्ञान में वेग का अर्थ है गति बढ़ना। प्राण संस्कारों के रूप में पहिएदार बैग को धक्का देने या गति बढ़ाने वाले की तरह है। अन्यथा जैसा कि भौतिक दुनिया में भी देखा जाता है, यह बिना बल के धीमा होने और रुकने की प्रवृत्ति रखता है। धक्का बल रुक जाता है, तो सामान से भरा बैग भी रुक जाता है। यह इस बात का भी उत्तर देता है कि सामान्य ध्यान (केवल कुंभक के बिना) संस्कारों को पूरी तरह से मिटा नहीं सकता। सामान्य ध्यान में, भले ही विचार शांत हो जाएं, सूक्ष्म अवचेतन कंपन अभी भी बने रहते हैं। लेकिन केवली कुंभक में , ये छिपी हुई परतें भी कंपन करना बंद कर देती हैं, जिससे पिछली कंडीशनिंग का गहरा विघटन होता है।

क्या केवल कुंभक पिछले कर्मों को निष्क्रिय करता है?

हां, केवल कुंभक पिछले कर्मों को निष्क्रिय कर सकता है, क्योंकि कर्म केवल एक विचार नहीं है - यह अवचेतन में एक ऊर्जा पैटर्न है। चूंकि प्राण कर्म को बढ़ावा देता है, जब प्राण पूरी तरह से रुक जाता है, तो कर्म अपना आधार खो देते हैं।

यह इस तरह काम करता है:

संचित कर्म (संचित पिछले कर्म) → विलीन हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें बनाए रखने के लिए कोई प्राणिक गति नहीं होती है।

प्रारब्ध कर्म (इस जीवन में पहले से चल रहे कर्म) → अस्थायी रूप से जारी रहता है, जैसे बिजली कट जाने के बाद भी पंखा घूमता रहता है। लेकिन अहंकार की भागीदारी के बिना, यह सिर्फ एक नाटक होता है - मतलब दुख गायब हो जाता है।

क्रियमाण कर्म (अभी बनाया जा रहा नया कर्म) → पूरी तरह से रुक जाता है, क्योंकि अहंकारी कर्ता (कर्ताभाव) विलीन हो जाता है। संस्कार से जुड़कर ही आत्मा अहंकारी कर्ता बनता है। संस्कार नहीं तो कर्ता भाव नहीं। यही कारण है कि केवल कुंभक मोक्ष (मुक्ति) के सबसे तेज़ मार्गों में से एक है। यह प्राण को रोकता है, जो मन को रोकता है, जो कर्म को रोकता है। जब कर्म मिट जाता है , तो पुनर्जन्म (पुनर्जन्म) का चक्र टूट जाता है।

इस यात्रा में मैं कहाँ खड़ा हूँ

मैंने अभी तक निर्विकल्प समाधि प्राप्त नहीं की है, लेकिन मैंने सविकल्प समाधि को छू लिया है - जहाँ 'मैं' की भावना विलीन हो जाती है, केवल एकीकृत चेतना रह जाती है। हालाँकि, मैंने जानबूझकर अपने अनुभव को वापस अजना चक्र मेंविलीन कर दिया, इस डर से कि इससे मैं एक त्यागी (बाबा) बन सकता हूँ। जागृति को नीचे उतारने से ही संभवतः मुझे निर्विकल्प समाधि के दायरे में प्रवेश करने से रोक दिया गया हो। अब मुझे एहसास हुआ है कि केवल जागृति की झलकें

ही पर्याप्त नहीं हैं। असली चुनौती हमेशा के लिए मुक्ति को बनाए रखना है। यद्यपि आत्मज्ञान के अनुभव हो सकते हैं, यदि कर्म के बीज बचे रहते हैं, तो व्यक्ति फिर से अहंकारी पहचान में पड़ सकता है। कर्म या संस्कार का बोझ व्यक्ति को अहंकारी बनाता है क्योंकि वह उससे गहराई से जुड़ा होता है। असली काम संस्कारों को पूरी तरह से जलाना है, यह सुनिश्चित करना कि अज्ञानता की ओर कोई वापसी न हो। अभी, मेरा मानना है कि केवल कुंभक ही वह कुंजी है जो गायब है - यह गहरे कर्म के छापों को मिटाने का सबसे तेज़ तरीका लगता है, जो अवचेतन को खत्म करके शाश्वत चेतना को जागृत करता है, तथा निर्विकल्प समाधि और अंतिम मोक्ष की ओर ले जाता है।

मैं देखता हूँ कि केवल कुम्भक के बिना निर्विकल्प समाधि का पीछा करना लगभग असंभव लगता है - क्योंकि जब तक प्राण गतिमान रहता है, तब तक कुछ न कुछ मन की गतिविधि बनी रहती है, और जब तक मन गतिमान रहता है, तब तक कुछ न कुछ कर्म बने रहते हैं।

अंतिम विचार

यह यात्रा रहस्यमय अनुभवों या अस्थायी आनंद के बारे में नहीं है - यह अंतिम, अपरिवर्तनीय स्वतंत्रता के बारे में है। जागृति, ज्ञान, सत्य की झलक - यदि मन वापस लौटता है तो वे सभी अर्थ खो देते हैं। सच्ची मुक्ति तब होती है जब कुछ भी वापस नहीं आता - न अहंकार, न कर्म, यहाँ तक कि विचार की सूक्ष्मतम गति भी नहीं।

केवल कुम्भक उस अवस्था तक पहुँचने का सीधा तरीका प्रतीत होता है। मैं इसे प्राप्त कर पाऊँगा या नहीं, यह तो केवल समय और मेरा अभ्यास ही बताएगा - लेकिन दिशा स्पष्ट है।

अभी के लिए, मैं अपनी साधना जारी रखता हूँ, अपनी समझ और विधियों को परिष्कृत करता हूँ, जिसका लक्ष्य केवल झलकों से आगे बढ़कर स्थायी विलयन तक पहुँचना है।

कुछ लेखक अनुमोदित साहित्यिक पुस्तकें-

1) **Love story of a Yogi- what Patanjali says**
2) **Kundalini demystified- what Premyogi vajra says**
3) **कुण्डलिनी विज्ञान- एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान मतलब (पुस्तक 1,2,3 और 4)**
4) **The art of self publishing and website creation**
5) **स्वयंप्रकाशन व वैबसाईट निर्माण की कला**
6) **कुण्डलिनी रहस्योद्घाटित- प्रेमयोगी वज्र क्या कहता है**
7) **बहुतकनीकी जैविक खेती एवं वर्षाजल संग्रहण के मूलभूत आधारस्तम्भ- एक खुशहाल एवं विकासशील गाँव की कहानी, एक पर्यावरणप्रेमी योगी की जुबानी**
8) **ई-रीडर पर मेरी कुण्डलिनी वैबसाईट**
9) **My kundalini website on e-reader**
10) **शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)**
11) **श्रीकृष्णाज्ञाभिनन्दनम**
12) **सोलन की सर्वहित साधना**
13) **योगोपनिषदों में राजयोग**
14) **क्षेत्रपति बीजेश्वर महादेव**
15) **देवभूमि सोलन**
16) **मौलिक व्यक्तित्व के प्रेरक सूत्र**
17) **बघाटेश्वरी माँ शूलिनी**
18) **म्हारा बघाट**
19) **भाव सुमन: एक आधुनिक काव्यसुधा सरस**
20) **Kundalini science~a spiritual psychology मतलब (books 1,2,and 3,4)**

इन उपरोक्त पुस्तकों का वर्णन एमाजोन, ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट https://demystifyingkundalini.com/shop/ के वैबपेज “शॉप मतलब (लाईब्रेरी)” पर भी उपलब्ध है। साप्ताहिक रूप से नई पोस्ट मतलब (विशेषतः कुण्डलिनी से सम्बंधित) प्राप्त करने और नियमित संपर्क में बने रहने के लिए कृपया इस वैबसाईट,“https://demystifyingkundalini.com/ ” को निःशुल्क रूप में फोलो करें या इसकी सदस्यता लें।

सर्वत्रं शुभमस्तु